॥ ओ३म् ॥

भूमिका

पाश्चात्य वैज्ञानिकों की विकासवाद पर जो जो स्थापनाएँ हुई है उन को सामान्य रीति से और विशेष पारिभाषिक शब्दों को न प्रयुक्त करते हुए परिचय कराना इस पुस्तक * का मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य की बंदर से उत्पत्ति हुई, पूंछ के घिसते घिसते बंदर का मनुष्य बना इत्यादि भ्रामक, निर्मूलक, और मनघड़न्त बातें, जो विकासवाद के सम्बन्ध में कहीं कहीं प्रचलित हैं वे भी दूर हो जायंगी।

विज्ञान से यूरोप तथा अमरीका निवासी किस प्रकार उन्नति कर रहे हैं यह वे ही जान सकते हैं जिन्हें अँग्रेज़ी, फ्रांसीसी, जर्मन आदि भाषाओं द्वारा विज्ञान सम्बन्धी नई नई बातें ज्ञात होती रहती हैं।

रसायन वेत्ता नए नए सरल तत्वों (Elements) की खोज में लगे हुए हैं, और जीवन के लिये खाण्ड जैसे अत्यन्त आवश्यक पदार्थ किन उपायों द्वारा सुगम रीति से प्राप्त हो सकते हैं इस चिन्ता में अश्रांत परिश्रम कर रहे हैं। भौतिक शास्त्र के पारंगत विद्युत् संबंधी नई नई बातों का अन्वेषण करके व्यावहारिक संबंधों को सुगम कर रहे हैं: बेतार की तार द्वारा हज़ारों मील की दूरी पर संदेशा भेजते हैं, और पुष्पक विमान के सदृश हवाई जहाज़ों का निर्माण करके अंतरिक्ष की

---

*लेखक ने गुरुकुल (कांगड़ी हरिद्वार) की साहित्य परिषद् के एक अधिवेशन में विकास सिद्धान्त पर एक निबन्ध पढ़ा था जिसका संशोधित स्वरूप वर्तमान पुस्तक है।

सैर करते और करवाते हैं। वैद्यकशास्त्र के निष्णात, रसायन और भौतिक शास्त्र की सहायता से नये नये यन्त्रों और औषधियों द्वारा मनुष्य जीवन को अधिक सुख कर बनाने के उपाय सोच रहे हैं। कृषि विद्या विशारद अनुपज भूमि को उपजाऊ और उपजाऊ भूमि को अधिक फलदायक करने का दिन रात यत्न कर रहे हैं। वायुमण्डल विज्ञान वेत्ता (Meteorologists) आंधी, वर्षा, भूचाल, आदि प्राकृतिक घटनाओं के पहिले ही किस प्रकार अनुमान लगाये जा सकते हैं इस उद्यम में लगे हुए हैं। ज्योतिःशास्त्र पटु नए नए ग्रहों और तारों की खोज तथा अन्य ग्रहों सम्बन्धी ज्ञान बढ़ाने में अविश्रांत परिश्रम कर रहे हैं; इसी प्रकार शिल्प, यन्त्रालय, और अन्यान्य विभागों में उन्नति ही उन्नति दिखाई पड़ती है। एक ओर तो यह दृश्य और दूसरी ओर यदि तनिक दृष्टि भी भारत वासियों पर डाली जाय तो हम देखते हैं कि, आविष्कार तो क्या, अभी विज्ञान की ओर हमारी रुचि भी नहीं; भारत का विज्ञानाकाश "बोस" और "रे" प्रभृति कुछ एक चमकते हुए तारों को छोड़ कर बाकी सब प्रकाशहीन पड़ा हुआ है।

जिन नई नई बातों की खोज आज कल के वैज्ञानिक कर रहे हैं उनको हमारे माननीय पूर्वजों ने पहिले ही विचारा था कि नहीं, इस विवाद युक्त प्रश्न को न छोड़ते हुए यदि वर्तमान अवस्था पर विचारा जाय तो हमें यह अवश्य मालूम होता है कि भारतवासियों को पाश्चात्य विज्ञान से अवश्य परिचित रहना चाहिये; यदि वैज्ञानिक बातों में वहां के विद्वानों के आगे हम नहीं बढ़ सकते तो हमारे लिये इतना अत्यन्त आवश्यक है कि हम उनके आधुनिक सिद्धान्तों और स्थापनाओं से अज्ञ न रहें।

आज कल का ज़माना विज्ञानयुग का है। अंध परम्परा छुटती जा रही है; लोगों में गतानुगतिकता का भाव शिथिल हो रहा है; झूंठी श्रद्धा

के सहारे कोई ठहरना नहीं चाहता, और विज्ञान की उन्नति तथा सूक्ष्म दर्शक, दूरदर्शक और आलोक यन्त्र (Camera) की अनमोल सहायता के कारण लोगों के विचार शक्ति में बहुत कुछ परिवर्तन आया और आ रहा है।

इस लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि ये बातें भारतवर्ष में भी सर्वसाधारण हो जांय और ऐसा तब ही हो सकता है जब कि यहां की शिक्षा ऐसी भाषा में हो जो सब के लिये सुगम है। हिंदी भाषा को इसके लिये उपयुक्त समझ कर हमने उसी द्वारा कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्त बताने का यत्न किया है। हमारी इस पुस्तक का प्रयोजन विकासवाद को सूत्र रूपेण बताना है। हमारी जनता की भी इस विषय में रुचि उत्पन्न होने लगी है।

मनुष्य समाज अवनति की ओर जा रहा है या उन्नति की ओर, यह प्रश्न आज कल विचार शील लोगों के हृदयों को दोलायित कर रहा है। "भिन्न रुचि र्हि लोकः" इस उक्ति के अनुसार प्रत्येक विचारक अपनी रुचि और मति के अनुकूल इस प्रश्न का भिन्न भिन्न उत्तर देता है। कई विचारकों का मत है कि मनुष्य समाज वन्य अवस्था से छुट्टी पा कर बहुत कुछ उन्नति कर गया है और प्रति दिन उन्नति कर रहा है। दूसरी ओर ऐसे विचारक हैं कि जिनकी सम्मति में मनुष्य की उन्नति की लहर समाप्त हो कर अब वह उलटे रास्ते चल रही है। भारतवासियों के लिए यह विषय सर्वथा नवीन नहीं है। संसार के भिन्न भिन्न प्राणियों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इस प्रश्न की ओर बहुत पुरातन समय से हमारे दार्शनिकों और तत्ववेत्ताओं के मन आकर्षित हुए हैं और सामयिक ज्ञान भण्डार के अनुसार विद्वानों ने इस पर अपने अपने अनुमान भी प्रकट किये हैं।

धार्मिक और पाराणिक पुस्तकों में भी इस पर विचार किया गया है। ऋग्वेद में यह मंत्र है—*

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यः त्रियुगं पुरा।
मनौ नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ (८-५-८-१)

यहा औषधियों का मनुष्यों से तीन युग पहले होना बतलाया गया है; बीच के तीन युगों के क्रम के बारे में कुछ नहीं कहा गया है; सम्भव है कि ये तीन युग मनुष्यों और औषधियों को मिलाने वाली कड़ियां [Links] हों। आज कल के विचारकों के अनुसार इनके बीच जलचर, स्थलचर और उभयचरों को रखना चाहिये; इसी प्रकार की या ये ही कड़ियां इस मंत्र में अभिप्रेत हों परन्तु इसके लिये हमारे पास कोई निश्चित प्रमाण नहीं।

अथर्व वेद में निम्न प्रकार का एक और मंत्र † है:—

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्या
स्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ॥
तवेमे पृथिवि पंच मानवा
येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य
उद्यन्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥
अथर्व० १२। १५।

इस मंत्र में मनुष्य को पृथ्वी से उत्पन्न हुआ बतलाया है, स से क्रमिक उन्नति की थोड़ी सी झलक प्रतीत होती है।

---

*अर्थ—जो औषधिया देवों (मनुष्य) की अपेक्षा तीन युग र्व निर्मित हुई, उन के एक सौ सात प्रकार मै मानता हूं।

†अर्थः—हे पृथिवी ! ये मनुष्य तुझ से उत्पन्न हुए है और झ पर भ्रमण करते है। ये पांच प्रकार के मनुष्य तेरे ही है जिनको पने किरणों से सूर्य, प्रकाश और अमृत देता है।

वृहद्विष्णु पुराण में इस विषय के निम्न लिखित श्लोक * पाये जाते हैः—

"स्थावरं विंशते र्लक्षं जलजं नवलक्षकम् ।
कूर्माश्च नव लक्षंच दशलक्षंच पक्षिणः ॥
त्रिंशल्लक्षं पशूनां च दशलक्षं च वानराः ।
ततो मनुष्यतां प्राप्य ततः कर्माणि साधयेत् ॥
एतेषु भ्रमणं कृत्वा द्विजत्वमुपजायते ।
सर्व योनिपरित्यागात् ब्रह्मयोनिं ततोऽभ्यगात् ॥

तथा रामायण की टीका में भी यह लिखा है कि पहले अश्वों के पंख होते थे । संभव है कि जिस ने यह वचन पहिले कहा होगा उस के मन में क्रमिक उन्नति का ख्याल हो ।

पुरुष सूक्त की कुछ ऋचाओं से पशु,पक्षी,ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य शूद्र इत्यादिकों की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है । मच्छली, कछुआ वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, कलंकी के क्रम से संसार में प्राणियों की उत्पत्ति बतलाने वालों को भी पहले जलचर, फिर उभयचर, फिर स्थलचर, पश्चात् भयानक वन्य मनुष्य, फिर छोटे छोटे विकसित होने वाले मनुष्य प्राणी, फिर अर्द्ध सभ्य लोगों की न्याई

---

* बीस लाख वृक्षों की, नौ लाख पानी में पैदा हुए जन्तुओं की, नौ लाख कूर्मों तथा दश लक्ष पक्षियों की, तीस लाख पशुओं तथा दश लक्ष वानरों की योनियों में से गुज़र कर और तत्पश्चात् मनुष्य योनि को प्राप्त होकर कर्मों को करे । इन सब योनियों में भ्रमण करके द्विज बनता है । सब योनियों से जब छुट्टी मिलती है तब ब्रह्म योनि को प्राप्त होता है ।

लड़ाई से जीवन व्यतीत करने हारे प्राणी, फिर पूरे सभ्य लोग, इस प्रकार की विकास शृंखला का अवश्य ,ख्याल होगा । इस से हमने यह बता दिया कि भारतीय पुरातन विद्वानों का इस विषय की ओर विचार झुका था और उसके वे विचार आज कल के विकास सिद्धान्ति के मेल जोली ही हैं । परन्तु तद्विषयक विशेष पुस्तकों के अभाव के कारण उन के इस विषय में परिपुष्ट विचार क्या थे इस का बहुत कुछ निवेचन करना अशक्य है ।

विकासवाद के दो मुख्य अंग हैं, एक शारीरिक और दूसरा मानसिक । शारीरिक विकासवाद का सविस्तर तथा यथाशक्ति संपूर्ण विवेचन इस पुस्तक में किया हुआ है । अर्थात् इस पुस्तक में डार्विन; वोरेस,हक्सले, हेकल, वाईजमन, डीव्हाइज प्रभृति वैज्ञानिकों की विचार प्रणाली संक्षेप और सुग्रथित रूप में पाठकों को देने का यत्न हुआ है । इस प्रकार की पुस्तक के पढ़ने में दो कठनाइयाँ उपस्थित होंगी; प्रथम, यह कि इस विषय पर किसी ने भी पहिले आर्य भाषा में पुस्तक नहीं लिखी; अत: हमारे इस प्रथम यत्न में सर्व-साधारणको कहीं कहीं ऐसी परिभाषा का साम्हना करना पड़ेगा जो उनके लिये नितान्त नई है, जिससे सम्भव है कि इस विषय को वे एक दम ठीक प्रकार न समझ सकें; और दूसरी कठिनाई यह होगी कि इस विषय को पूरी तौर पर प्रमाणित करने के लियें पाश्चात्य विद्वानों ने जितने प्रमाण दिये हैं वे सब इस छोटी जैसी पुस्तक में नहीं दिये गए हैं। हमने यथाशक्ति मुख्य और स्थूल प्रमाणों को ही दिया है। अतः पाठकों को इस के पढ़ने में पूरा संतोष न होना युक्ति युक्त है। यदि हिन्दी के प्रेमियों से प्रोत्साहन मिला तो इसके उत्तरार्ध मनुष्य का मानसिक, सामाजिक और आत्मिक विकास–पर हम अन्य ग्रंथ लिखने की आशा रखते हैं ।

ग्रंथ लेखक की मातृ भाषा हिंदी न होने के कारण सम्भव है कि ग्रंथ में कई स्थानों पर भाषा बेमुहाविरा प्रतीत होगी, और लेखन शैली के अन्य अन्य दोष भी कहीं कहीं प्रतीत होंगे। अतः लेखक को आशा है कि इस अपूर्णता के लिये पाठक क्षमा करेंगे।

गुरुकुल, हरद्वार
फाल्गुन, १९७०.
फरवरी, १९१४.

वि० ग० साठे०

निम्नलिखित ग्रन्थों के मुख्य आधार पर प्रस्तुत पुस्तक लिखी गयी है।

१—CLODD, E– " Story of Creation " 1888
२— " – " Pioneers of Evolution ' 1897
३—DARWIN, CHARLES–"Origin of Species' 1859.
" " Variation of Animals and Plants under domestication' (1868),
" " "Descent of man"(1871,)
४—HAECKEL. Eranst– "Evolution of man " 2 vols.
५— " – "Riddle of the Universe"
६— " – "Wonders of life"
७—HUXLEY, T. H.–Man's Place in Nature'
८—HIRD, Dennis –"Picture] Book of Evolution " 2 vols.
९—WALLACE, ALFRED RUSSEL –' Darwinism"1889.
१०–CRAMPTON –"The Doctrine of Evolution" 1911
११–DRUMMONTED, HENRY –"The Ascent of Man"
१२–CHURCHWARD –"The Origin and evolution of Primitive Man" 1912.
१३–LAING, SAMUEL,–,'Human Origins "
१४–VRIES, H. DE –" The Mutation Theory " 1910.
१५–WEISMANN, A –"The Germ Plasm" 1910
६–THOMSON, J. ARTHUR –" Heredity" 1909

॥ विषयानुक्रमणिका ॥

प्रथम खण्ड (पृष्ट १ से ४४ तक)

जीवन युक्त संसार ।

द्वितीय खंड (पृष्ठ ४५ से पृष्ठ ६६ तक)
विकास के प्रमाण।

भिन्न भिन्न प्राणियों की शरीर रचनाओं का तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने से विकास के प्रमाण प्राप्त होते है- कुत्ते, लोमडी, भेडिया और शृगाल का वर्णन— बिल्ली, चीता, व्याघ्र और सिंह का वर्णन— एक ही प्रारम्भिक प्राणी से इनकी उत्पत्ति— भालू तथा अन्य मांस भक्षक प्राणी—व्हेल मच्छली की अन्य मांसाहारियों के साथ तुलना प्रत्येक प्राणी में अपनी अपनी श्रेणी के विशिष्ट चिन्ह उपस्थित होते हैं— स्तनधारियों का विचार— तीक्ष्ण दंतियों (चूहा, छछूंदर, घूस, शशक) का विचार— उडनी गिल्हरी, चिमगादड़— सुमवाले जन्तु (गौ, अश्व, हाथी, उंट, आदि)— कें-गरु और ओपोसम— प्राणियों की यन्त्रों के साथ तुलना ठीक है— पक्षीवर्ग--पेंग्विन— शतुर्मुर्ग सर्प वर्ग—मंडूक वर्ग—मंडूकों की वृद्धि का इतिहास— मत्स्यवर्ग रीढ़ की हड्डी रहित प्राणी— बिच्छु, तीतरी, भौंरा, कानखजूरा, गिडोया, हेडा, अमीबा—

गर्भवृद्धि शास्त्र और उसमे विकास की प्रत्यक्षता— गर्भ शास्त्र के प्रमाण बलवान हैं— मण्डूक की प्रारम्भिक अवस्था का इतिहास- यह इतिहास बताता है कि प्रत्येक प्राणी को अपनी उन्नति का पूरा चक्र घूमना पड़ता है— मुरगी के इतिहास द्वारा उपरोक्त बात की पुष्टि—मनुष्य तक की गर्भज अवस्था में ऐसा ही इतिहास पाया जाता है-- इस इतिहास से भिन्न भिन्न प्राणियों के विकास के क्रम ज्ञात होते हैं— तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र और गर्भ वृद्धि शास्त्र के प्रमाण एक ही परिणाम पर पहुचने हैं— प्राणियों की प्रारम्भिक गर्भस्थ अवस्था का सविस्तर वर्णन— प्राणियों की प्रारम्भिक अवस्था

उनका उद्गम स्थान बताती है— प्रत्यक्ष प्रमाणित होने के कारण गर्भ वृद्धि शास्त्र के सिद्धान्तों पर हमारा अविश्वास नहीं हो सकता।

तृतीय खण्ड (पृष्ठ १०३ से १५३ तक)

लुप्त-जन्तु-शास्त्र तथा प्राणि-भौगोलिक-विभाग-शास्त्र से प्राप्त होने वाले विकास के प्रमाण

चतुर्थ खंड (पृष्ठ १५३ से २०३)

विकास एक प्राकृतिक घटना है।

पञ्चम खंड (पृष्ठ २०३ से अन्त तक)

मानव जाति का शारीरिक विकास ।

चित्रों की सूची।

शुद्धि पत्र।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	यह आकांक्षा	यही आकांक्षा
६–	१२	सरसता	सस्वरता
२३–	१	अपने की अवयवों	अपने अवयवों की
३२–	१८	हस्ति	हस्ति नष्ट नहीं होती
३३–	४	पदाथा	पदार्थों
४९–	२	कुल मेल	कुछ मेल
१९०–	९	चित्र सं २०	चित्र सं १४
१९५–	१९	Germ Plasin	Germ Plasm
२०८–	अन्तिम पंक्ति	(पृ०)	(पृ० २४)

पुस्तक में प्रयुक्त किये हुए पारिभाषिक शब्दों की सूची:—

Adaptation, अनुकूलन, १५८.
Affirmative, विधायक ८७.
Albumen, अंडे की सफेदी, ८६
Alimentary Canal, अन्ननालिका, २४१.
Alimentary System, पोषण संस्थान, २४.
Alternative Inheritance, एकान्तर संक्रमण, १६७
Amoeba, अमीबा, ७३.
Amphibians, मण्डूक श्रेणी, ४१.
Anthropology, मनुष्यशास्त्र, २४६.
Appendage, पंछाला, ७१.
Archaeic Rocks, अत्यन्त प्राचीन चट्टान, १२४
Artificial Selection, कृत्रिम चुनाव, १८६.
Azoic Rocks, जीवन रहित चट्टान, १२४
Biological, प्राणिविषयक, ११४.
Blood System, रक्तवाहक संस्थान, २५.
Cainozoic, अर्वाचीन, १२७.
Canine teeth, मांसछेदक दांत,
Carbon, कर्बन, २६.
Carnivorous, मांस भक्षक,
Cell, कोष्ठ, २७.
Cerebrum, भेजा,
Chlorine, हरिण गैस, २६
Class, श्रेणी, ४०.
Classification, वर्गीकरण, ३७.
Comparative Anatomy, तुलनात्मक शरीर रचनाशास्त्र, ३७
Complex, संकीर्ण,
Congenital or Hereditary Influences, पैत्रिक संस्कार, १६४.

Correspondence, सहयोगिता,
Crystalline, स्फटिकमय, १२३
Element, मूलतत्व,
Embryology, गर्भवृद्धि शास्त्र, ४३.
Environment, परिस्थिति, १६२
Eocene, आरम्भ खण्ड, १३३
Excretory System, मल मूत्र वाहक संस्थान, २५
Family, वंश ४०
Fossil, फौसील, प्रस्तरी भूत प्राणी, १०६.
Function, कार्य १६३.
Gastrula Stage, उदरारम्भक अवस्था, ६६
Genus, जाति, ४०
Geographical Distribution of Animals, भौगोलि
प्राणियों का विभाग १४४.
Geology, भूगर्भ शास्त्र
Germ Plasm Theory, उत्पादक बीज सिद्धान्त, १६४.
Gills, गलफड़
Heredity, आनुवंशिक परम्परा १६४
Hydrogen, उद्रजन, २६.
Inheritance, परंपरा प्राप्ति, १५८.
Invertebrate, रीढ़ की हड्डी रहित प्राणी, पृष्ठवंशविह
प्राणी, ४१.
Joints, जोड़, ६३.
Kingdom, वर्ग, ४०.
Sub-Kingdom, विभाग, ४०,
Mammal, स्तन धारी प्राणी, ४१.
Marsupial, थैली-वाले प्राणी, १४८.
Mesozoic, माध्यमिक, १२५.
Metamorphic Rocks, रूपान्तरित चट्टान, १२५.
Method, विधि, १५३.
Microscope, सूक्ष्म दर्शक यन्त्र,

Miocene, मध्यमखण्ड, १२५.
Missing Link, लुप्त कड़ , १२७.
Motor system, प्रेरक संस्थान २५
Mummy, ममी, १२१.
Muscle, स्नायु,
Mutation, परिवर्तन १५६.
Natural Selection प्राकृतिक चुनाव १६६,१८६
Negative, निषेधात्मक,८७.
Nervous system, ज्ञान तन्तु संस्थान २५.
Nitrogen नत्रजन २६.
Nucleus, कोष्ठ केन्द्र बिन्दु, २७
Order, पक्ष, ४०.
Organic, ऐन्द्रियिक,
Over production, अत्युत्पादन, १७४.
Oxygen, ओषजन, २६.
Palaeontology, लुप्त जन्तु शास्त्र, ४३, १०३
Palaeozoic, प्राथमिक, १२७.
Phosphorus, प्रस्फुरक, २६.
Physicist, भौतिक विज्ञान वेत्ता
Physiology, शरीर व्यापार संस्थान शास्त्र
Plasticity, संस्कार ग्रहण शक्ति
Pliocene, अग्रखण्ड, १२५
Pouched Animals, थैली वाले जन्तु १४८.
Primary, प्राथमिक, १२५
Protoplasm, जीवन तत्व, प्रोटो प्लाज्म, २७.
Quaternary, चतुर्थ कोटिस्थ, १२५
Recent Rocks, आधुनिक चट्टान, १२५
Reproductive System, प्रसव संस्थान, २६
Respiratory System, श्वासोच्छ्वास संस्थान २५.
Reversion, प्रतिनिवर्तन, १६७.
Rudimentary organs, अवशिष्ट अवयव, २२६.

प्रथम खंड

जीवन युक्त संसार ।

विकासवाद की व्याख्या और क्षेत्र—विकासवाद विज्ञान पर निर्भर है, अतः उसका परिशीलन कठिन नहीं है--क्या विकासवाद केवल वैज्ञानिकों तथा दार्शनिकों के लिये है ?--क्या विकासवाद में पाखंड है ? -- विकासवाद से सांसारिक लाभ-- पक्षपात रहित विचार की आवश्यकता— विज्ञान का प्रारम्भ— विज्ञान क्या है ? — वैज्ञानिक तत्वों का स्वरूप– वैज्ञानिक सूत्र विश्वसनीय और लाभकारी होते हैं– विशिष्टोत्पत्ति वादियों तथा विकासवादियों की स्थापनाएँ– जीवन की उत्पत्ति के मानकर ही विकासवाद का विषय प्रस्तुत होता है— बाईसिकल तथा समय निदर्शक घड़ी के दृष्टान्तों द्वारा विकास का अर्थ अधिक स्पष्ट होता है--मोटर साईकल-- समयदर्शक जेबी घड़ियों के भिन्न भिन्न नमूने—विकास किस का नाम है ?— दो आक्षेप-— प्रथम आक्षेप पर विचार—जीवित पदार्थों की तीन सामान्य बातें— (१) रसायन शास्त्र की दृष्टि से सब प्राणियों की शरीर रचना एक जैसी है-- (२) अपनी नष्ट हुई शक्ति के प्राणी पुनः प्राप्त कर सकते हैं-- (३) उत्पादन शक्ति--प्राणियों की शरीर रचना— आठ प्रकार के शारीरिक संस्थान— १ पोषण संस्थान (Alimentary System) २—श्वासोच्छ्वास संस्थान (Respiratory System) ३— मल मूत्र वाहक संस्थान (Excretory System) ४— रक्त वाहक संस्थान (Blood System) ५--प्रेरक संस्थान (Motor System) ६--आधार संस्थान (System

of Support) ७--- ज्ञान तंतु संस्थान (Nervous System) और प्रसव संस्थान (Reproductive System)--कोष्ठ और उसकी अन्तर्रचना--- प्राणियों का शरीर कोष्ठ समूहों की शक्ति पर निर्भर है-- भिन्न भिन्न कोष्ठ समूह भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य करते है-कोष्ठों की चेतनता पर सब कुछ निर्भर है---प्रोटोप्लाज्म पर सविस्तर विचार-- जड़ और चेतन पदार्थों में कोई अन्तर नहीं है-- जीवन क्या है ?---विकास के प्रमाणों के पांच विभाग १--- जाति विभाग (Classification) २--तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र (Comparative Anatomy) ३-- गर्भ वृद्धि शास्त्र (Embryology) ४-- लुप्त जन्तु शास्त्र (Palaeontology) और ५ प्राणियों के भौगोलिक विभाग का शास्त्र (Geographical Distribution of Animals) ।

विकासवाद

खण्ड १
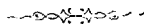
जीवन युक्त संसार।

संसार में इतने जड़ और चेतन पदार्थ है और उन में इतनी भिन्नता प्रतीत होती है कि एक बार देखने पर किसी का यह कहने का साहस नहीं पड़ता कि उन में कोई नियम वा सिलसिला उपस्थित होगा। तथापि विज्ञान की रीति से प्राकृतिक घटनाओं का विचार करने वालों की यह आकांक्षा है। पदार्थों की पहली अवस्था क्या थी और अब उनको किस प्रकार की अवस्था प्राप्त हुई है इत्यादि विषयों की चर्चा तथा आन्दोलन ये महानुभाव करते हैं। वैज्ञानिक यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि जिस प्रकार आज कल प्राकृतिक नियमों से जड़ और चेतन पदार्थों में परिवर्तन हो रहे हैं ठीक उसी प्रकार पूर्व समय में उन वस्तुओं में परिवर्तन हुए थे। इसी का नाम **विकासवाद** है और यही उस का मुख्य उद्देश्य है। इस संसार के सब जड़ और चेतन पदार्थ विकासवाद के क्षेत्र हैं। विकासवादी यह भी दर्शाने का प्रयत्न करते हैं कि जितने भिन्न भिन्न रूपधारी पदार्थ आज कल विद्यमान हैं उन सब का मूल कारण प्राकृतिक नियम है।

इस प्रकार के गम्भीर विषय का प्रारम्भ किस प्रकार से किया जाय यह एक बड़ी कठिन समस्या है। साधारणतया देखा जाय तो "विकास" एक उस प्रकार की सामान्य घटना है जिस प्रकार की घटनाएं वैज्ञानिक विषयों में प्राय पाई जाती है; कठिनता यदि कोई है तो यह कि क्लिष्ट से क्लिष्ट बातें जो मनुष्य के विचार में आती हैं, इस विषय में

सम्मिलित हैं। विचार करने से यह प्रतीत होगा कि यद्यपि विकासवाद स्वयंस्पष्ट है, तथापि इसका अन्तिम निश्चय कराना बहुत सुगम नहीं है।

विज्ञान के बहुत से विभाग है; और उन में से किसी एक विभाग को भी यदि मनुष्य हस्तगत करना चाहे तो उस में पारंगत होने के लिये उस को कठिनता प्रतीत होती है; फिर सब विभागों पर पूर्णतया दृष्टि डालना तो दूर रहा; विकासवाद में तो सम्पूर्ण विज्ञान की ही समालोचना करनी है। यदि मनुष्य सौ वर्ष भी जी सके तो सम्भव है कि वह किसी एक विभाग की प्रारम्भिक बातों की पूरी विवेचना कर सके; और यदि मनुष्य की आयु अनन्त काल तक की मानी जाय तो भी उस का कार्य पूरा नहीं होगा क्योंकि जैसा जैसा मनुष्य विचार करता जायगा वैसे वैसे उस के विचार में नई नई बातें आती जायंगी।

यदि यह ठीक है तो सन्देह यह उठता है कि क्या विकासवाद को दो वा तीन सौ पृष्ठों की पुस्तक द्वारा समझ लेना एक अजेय दुर्ग पर चढ़ाई करने के समान तो नहीं है? जब तक हम विज्ञान के सब विभागों को हस्तगत न कर लें तब तक विकासवाद के विषय में हम सचमुच क्या कर सकते हैं? संदेह तो ठीक है परन्तु देखना चाहिए कि क्या यह दुर्ग सचमुच अजेय है? इस प्रकार की शंका ठीक तब होती और विकासवाद का समझना अशक्य तब होता जब विज्ञान के भिन्न भिन्न विभागों की वह दशा न होती जो आज कल विद्यमान है। विज्ञान को बहुत विभागों में विभक्त किया गया है और उन विभागों की इस प्रकार की छान बीन की गई है कि यदि हम प्रत्येक विभाग के स्थूल स्थूल सिद्धान्तों को जानना चाहें तो हम उन को सुगमतया जान सकते हैं।

विकासवाद को सिद्ध करना है। और विज्ञान की रीति वास्तव में हमारे निरीक्षण में आने वाली प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्ध रखती है।

प्राकृतिक नियमों को समझना तथा सर्वत्र प्रचलित तत्वों को जान लेना कितना आवश्यक है इस बात का हमें अभी अनुभव नहीं है। विकास से और विज्ञान से हम को कौनसा मोक्ष प्राप्त हो जावेगा? क्या हमारी अपनी निज की बातें विचार के लिये थोड़ी है जिस से हम ऐसी दूर दूर की निष्प्रयोजन बातों को सोचने रहें? इस प्रकार के प्रश्न बहुतों के मन में उठते होंगे। वे समझते होंगे कि जीवन सम्बन्धी ज्ञान हस्तगत करना और वनस्पति और प्राणि विषयक बातों का समझना मनोरञ्जन के लिये और बुद्धि सामर्थ्य बढ़ाने के लिये तो निस्सन्देह उपयोगी है, परन्तु उन का सांसारिक बातों में कुछ भी लाभ नहीं है। मनुष्य की निज सम्बन्धी बातों तथा अन्य मानुषिक घटनाओं की अन्वेषणा करने से अधिक से अधिक यदि तनिक लाभ होता होगा तो इन की सम्मति में यही है कि इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्य जाति की वर्तमान अवस्था और पूर्व इतिहास प्रतीत होते हैं। परन्तु ऐसे पुरुषों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि इस प्रकार के विज्ञान का मूल्य इस से बहुत अधिक है। विज्ञान और विकासवाद के द्वारा प्राकृतिक नियमों का सविस्तर वर्णन और मानुषिक व्यवहार, घटना और जीवन का बोध हो जाता है; इस प्रकार के विज्ञान से प्राकृतिक शक्ति वर्तमान समय में किस प्रकार कार्य्य कर रही है और पूर्व समय में उस ने क्या क्या कार्य किया था इस का बोध होजाता है। साथ ही साथ इस से यह भी लाभ वाली बात है कि हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि भविष्यत् में हम अपने जीवन को किन किन विघातक बातों से बचाए रखें और

बहुत से मनुष्यों का कदाचित् यह विचार होगा कि इस विकासवाद में हम को क्या लेना है हमारे जो दैनिक व्यवहार हैं उन के साथ इन का कोई सम्बन्ध नहीं है। विकासवाद पर विचार करना वैज्ञानिकों का तथा दार्शनिकों का काम है। कतिपय मनुष्य यह भी विचारते होंगे कि कहीं विकासवाद में धर्मतत्त्व के विरोध की, पाखंडियों के पाखंड की, नास्तिकों की नास्तिकता की बातें सन्निहित न हों जिस से विकासवाद का पढ़ना भी कहीं एक अधर्म न हो जाय। इस प्रकार के विचारकों की यह एक कल्पना मात्र है।

विज्ञानका सम्बन्ध उन बातों से है जिन को हम प्रमाणों द्वारा सिद्ध कर सकते हैं। विज्ञान का दार्शनिक तर्कों के साथ अत्यन्त न्यून सम्बन्ध है। यह बात दूसरी है कि वैज्ञानिकों को दार्शनिक बातों पर तथा तत्वज्ञान की बातों पर भी कभी कभी विचार करने की आवश्यकता पड़ जाय। विकास वाद विज्ञान का विषय है; विकास वाद में शरीर रचना के सम्बन्ध में बहुत सी घटनाएं (Facts) दी जायंगी और ज्ञानतन्तुसंस्थान (Nervous System) की कार्यवाही पर ध्यान देना पड़ेगा। अब शरीर रचना और ज्ञानतन्तुसंस्थान के सम्बन्ध में जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र है, इस प्रकार के दार्शनिक विचार भी उपस्थित हो सकते हैं। मन का विकास क्या है, मन और जड़ पदार्थों का आपस में किस प्रकार का सम्बन्ध है इसका भी विकासवाद में विचार होगा। इस सम्बन्ध में यह भी प्रसंगोपात्त दार्शनिक विचार उठ सकता है कि प्राणियों में आत्मा है वा नहीं और यदि है तो वह अमर है वा नहीं। परन्तु यह तथा इन प्रकार के अन्य दार्शनिक विचार विकासवाद के अन्तर्गत नहीं हैं क्योंकि हमारा उद्देश्य विज्ञान की गति पर

विकासवाद को सिद्ध करना है। और विज्ञान की रीति वास्तव में हमारे निरीक्षण में आने वाली प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्ध रखती है।

प्राकृतिक नियमों को समझना तथा सर्वत्र प्रचलित तत्वों को जान लेना कितना आवश्यक है इस बात का हमें अभी अनुभव नहीं है। विकास से और विज्ञान से हम को कौनसा मोक्ष प्राप्त हो जावेगा? क्या हमारी अपनी निज की बातें विचार के लिये थोड़ी हैं जिस मे हम ऐसी दूर दूर की निष्प्रयोजन बातों को सोचते रहें? इस प्रकार के प्रश्न बहुतों के मन में उठते होंगे। वे समझते होंगे कि जीवन सम्बन्धी ज्ञान हस्तगत करना और वनस्पति और प्राणि विषयक बातों का समझना मनोरञ्जन के लिये और बुद्धि सामर्थ्य बढ़ाने के लिये तो निस्सन्देह उपयोगी है, परन्तु उन का सासारिक बातों में कुछ भी लाभ नहीं है। मनुष्य की निज सम्बन्धी बाधाओं तथा अन्य मानुषिक घटनाओं की अन्वेषणा करने से अधिक से अधिक यदि तनिक लाभ होता होगा तो इन की सम्मति में यही है कि इस प्रकार के ज्ञान से मनुष्य जाति की वर्तमान अवस्था और पूर्व इतिहास प्रतीत होते हैं। परन्तु ऐसे पुरुषों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि इस प्रकार के विज्ञान का मूल्य इन से बहुत अधिक है। विज्ञान और विकासवाद के द्वारा प्राकृतिक नियमों का सविस्तर वर्णन और मानुषिक व्यवहार, घटना और जीवन का बोध हो जाता है; इस प्रकार के विज्ञान से प्राकृतिक शक्ति वर्तमान समय में किस प्रकार कार्य्य कर रही है और पूर्व समय में उस ने क्या क्या कार्य किया था इस का बोध होजाता है। साथ ही साथ इस से यह भी लाभ वाली बात है कि हमें यह ज्ञान प्राप्त होता है कि भविष्यत् में हम अपने जीवन को किन किन विघातक बातों से बचाए रखें और

किन किन नियमों पर चलाए जिस से हमारा जीवन अधिक सुखकर हो सके। इस विषय की अन्तिम अवधि तक पहुचने पर ही पाठकगण इस बात को भली प्रकार समझ सकेंगे। अभी यदि इतना ही माना जाय कि विकासवाद के द्वारा हमको सृष्टि नियमों का तथा प्राणियो के परस्पर व्यवहारों का बोध हो जाता है तो भी यह बात क्या अल्प मूल्य की है? प्रकृति के सर्व व्यापी राज्य में यदि मनुष्य अपना स्थान कौन सा है यह ठीक प्रकार समझ जाय, यदि उसको अपने मनो धर्म, तथा सामाजिक सम्बन्ध अच्छी प्रकार ज्ञात हो जाय, यदि वह वास्तविक और अवास्तविक बातों मे भेद कर सके, सत्य और असत्य की भली प्रकार जाच करने लग जाय, और यदि वह अपना कर्त्तव्य क्या है इस को पूर्णतया समझने लगे तो क्या यह कम लाभ की बात है? जैसा जैसा इस विश्व के अटल नियमों की ओर इस विश्व की सम्मता (Harmony) को मनुष्य समझने लगे जायगा ठीक उसी अनुपात में उसका अपना जीवन अधिक सुखमय, अधिक फलदायक और अधिक मनोहर होता जायगा।

इस प्रकार की मनोभावना से हम को इस विषय में पदार्पण करना चाहिए। इस में कोई सन्देह नहीं कि हमको बहुतसी कठिनाइयों का सम्मुख करना पड़ेगा। इन कठिनाईयो में से एक बड़ी भारी दुस्तर कठिनाई तो हमारा अपना मनुष्य स्वभाव ही है, क्योंकि इस विकासवाद में जब हमारे अपने मनुष्य जाति के विषयो का सम्बन्ध आता है तब अपने आप को भूल कर पक्षपात रहित दृष्टि से वास्तविक बात का विचार करना बहुत कठिन प्रतीत होता है। विकासवाद के अनुसार मनुष्य जाति को कौनसा स्थान मिलना चाहिये इस प्रकार की बातों का विकार रहित बुद्धि से सोचना दुर्गम हो जाता है। मनोविकार और स्वार्थ सच मुच बुद्धिविकास

के विघातक तथा बुद्धि के विकास को उलटे मार्ग पर लेजाने वाले शत्रु हैं। मनुष्य जाति का स्थान सब से उच्च है, मनुष्य में और अन्य जन्तुओं में आकाश पाताल का अन्तर है, कोई जन्तु मनुष्य की समानता नहीं कर सकता, इस प्रकार के जो संस्कार हमारे रोम रोम में घसे हुए हैं उनको कुछ समय के लिये तिलाञ्जली देकर हमको विकासवाद पर विचार करना चाहिये और विकासवाद के अनुसार मनुष्य जाति का जो वास्तविक स्थान है, उसका निर्णय करने के लिये प्रस्तुत होना चाहिये। अन्य प्राणियों से मनुष्य के उच्च अधिकार हैं वा नहीं इसका अन्त में हम विचार करेंगे। विकासवाद का क्या अर्थ है, जीवित वस्तु किसका नाम है और उसका क्या लक्षण है, एक प्रकार की जाति से दूसरे प्रकार की जाति किन किन नियमों से उद्भूत होती है और इसके लिये निश्चयात्मक प्रमाण कौन कौन से हैं, इत्यादि बातों पर पहले विचार करना चाहिये। इस विचार के पश्चात् ही जिस मनुष्य जाति के हम घटक हैं और जिसके साथ हमारा बहुत गूढ़ सम्बन्ध है, तत्सम्बन्धी प्रश्नों पर आंदोलन करना योग्य है और तदनुसार हम भी करेंगे।

यह संसार क्या है और इसकी रचना कैसी है इत्यादि प्रश्न जिज्ञासु के मन में बार बार उठते रहते हैं, और इन प्रश्नों का उत्तर बड़े उत्साह से वह सोचने लगता है। इतिहास बताता है कि मनुष्य जाति के असभ्य से असभ्य लोगों की विचार परम्परा में भी इस प्रकार के प्रश्न उठते हैं। उदर पूर्ति की चिन्ता से अन्न की खोज में घूमना, रहने के लिये झोंपड़ी बनाना और आपस में लड़ना झगड़ना यह उन की नित्य की दिन चर्या होती है। परन्तु इतिहासज्ञ तथा अन्वेषकों को ऐसे प्रमाण प्राप्त हुए हैं कि उन के आधार पर

वे यह कहते हैं कि असभ्य मनुष्य भी उस शक्ति के विषय में सोचा विचारा करते हैं जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ। ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि जिन के आधार पर ये अन्वेषक यह कह सकते हैं कि जितनी वस्तुएं इन असभ्य मनुष्यों की दृष्टिगोचर होती हैं उन को भिन्न भिन्न श्रेणियों में बाटने की शक्ति उनमें होती है। आज कल की उन्नति के समय उन के वे विचार और उनका वह पदार्थों का वर्गीकरण (Classification) चाहे बहुत भद्दा तथा निःसार प्रतीत क्यों न होता हो, तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि इस प्रकार की बातें शास्त्रीय विज्ञान के प्रारम्भ को बतलाती है। जैसे जैसे उन असभ्य लोगों को स्थिर बैठकर विचार करने का अवसर मिलता गया वैसे वैसे उनका विज्ञान भी उन्नति के मार्ग पर चलता गया; पुरा कालीन समय जैसा जैसा व्यतीत होता गया और विचारशील लोगों ने लड़ने झगड़ने से छुट्टी पाई वैसे वैसे विज्ञान की दशा उन्नत होती गई; विज्ञान का विस्तार होने लगा और मनुष्य की उन्नति दिन दूनी रात चौगुनी होने लगी। मनुष्य के विचार की उन्नति का इतिहास विकासवाद का एक दृढ़ प्रमाण है। असभ्य मनुष्य के प्रश्नों की परिधि क्या और क्यूं से प्रारम्भ होकर आज कल के विज्ञान तक पहुंच गई है।

विज्ञान क्या है इस बात पर भी हम को थोड़ासा विचार करना है। विज्ञान का नाम सुनते ही कई मनुष्यों के मन में कुछ घृणायुक्त भाव उठने लगते है। प्रतिदिन की सांसारिक बातों से पृथक तथा स्वतन्त्र रीति से विचार करने में बाधक, रूखी सूखी, और व्यर्थ बातें विज्ञान में भरी हुई है—इस प्रकार के भावों ने कई पुरुषों के मस्तिष्क में अपना घर कर लिया है। वस्तुतः देखा जाय

तो उनके इस प्रकार के विचार निर्मूल है । पाश्चात्य वैज्ञानिकों में से **कार्ल पिअरसन** (Carl Pearson) और **हक्सले** (Huxley) महाशय विज्ञान की इस प्रकार व्याख्या करते है । महाशय कार्लपिअरसन कहते हैं कि " विज्ञान नियम बद्ध (व्यवस्थित) ज्ञान का नाम है "* और हक्सले महाशय कहते हैं कि " नियमवद्ध सामान्य ज्ञान ही विज्ञान है "† ये दोनों परिभाषाएं एक ही अर्थ की द्योतक है; इन का आशय यह है कि यदि हम किसी विषय का विश्वास युक्त तथा प्रमाणपूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो यह अवश्य है कि प्रमेयों की सत्यता और वास्तविकता प्रमाणो द्वारा स्थिर की जाय और साथ साथ यह भी निश्चित किया जाय कि वास्तविक, अवास्तविक तथा सम्भव और असम्भव बातों में क्या भेद है; इस प्रकार किसी विषय की प्रमाणपूर्ण जितनी सामग्री एकत्रित हो जाय उसमें फिर विभाग करके उस सामग्री को नियमवद्ध स्वरूप दिया जाय इत्यादि को वैज्ञानिक रीति पर ज्ञान को व्यवस्थित करना कहते है और अन्त में इस सबका निचोड़ सूत्रस्वरूप परिभाषा में हो जाताहै। किसी उदाहरण से वैज्ञानिक तत्वोंका स्वरूप अधिक स्पष्टतया विदित हो जायगा। गुरुत्वाकर्षण का उदाहरण लीजिये। गुरुत्वाकर्षणका नियम यह है कि दो पदार्थ आपस में एक दूसरे को अपने पिंड (Mass) के सरल (direct) अनुपात से और अपनी दूरी के विषम (inverse) अनुपातसे आकर्षण करते हैं। यह तत्व जो सूत्र स्वरूप में दिया गया है इसमें पदार्थों के परस्पर आकर्षण का नियम है, परन्तु यह नियम भिन्न भिन्न प्रकार के पिंडों की भिन्न भिन्न दूरी पर परीक्षा करने से जो परिणाम हस्तगत हुआ उसके आधार पर बनाया गया है । गुरुत्वाकर्षण का यह

---

* "Science is organized Knowledge" Karl Pearson.

† " Science is organized Common Sense" Huxley

नियम अबाधित तब ही सिद्ध हो सकता है जब कि जिस सामग्री के आधार पर यह बनाया गया है उस सामग्री की सत्यता में कोई संदेह न हो और उस सामग्री के प्रमेयों के परस्पर सम्बन्ध देखने पर जो अनुमान लगाये गये हो वे अयुक्त न हो। इस प्रकार के सूत्र-स्वरूप नियम सब प्रकार के मनुष्यो. छोटे वा बड़े, कम पढ़े हुवे वा अधिक पढ़े हुये, बुद्धिमान वा मूर्ख के लिये अटल और सत्य हैं; इसी लिये हक्सले महाशय विज्ञान को सामान्य बुद्धिज्ञान कहते हैं: अर्थात् विज्ञान एक ऐसी सामान्य बात है कि जिन को सब विचारवान पुरुष बुद्धिग्राह्य तथा युक्तियुक्त और इन्द्रियग्राह्य पाते है। इस प्रकार की सूत्रस्वरूप परिभाषाओं से वैज्ञानिक रीति का ठीक प्रकार से ज्ञान हो जाता है।

वैज्ञानिक सूत्र प्राकृतिक पदार्थो पर किये हुवे परीक्षणों और समीक्षणों के सार है परन्तु उन सूत्रों के विषय में केवल इतना कथन ही पर्याप्त नहीं है। ये सूत्र अटल और सर्वव्यापी होने चाहिये; केवल प्रमाण रहित अनुमान से और प्रतिभा के आधार पर जो कार्य किये जाते हैं उनकी अपेक्षा से वैज्ञानिक आधार पर निश्चित किये हुए कार्य अधिक विश्वसनीय और अधिक निश्चित होते है। गुरुत्वाकर्षण सूत्र की सत्यता से जिस प्रकार पुल बनाने वाले और अन्य शिल्पकार लाभ उठाते है उसी प्रकार यदि विकासवाद को शास्त्रीय आधार पर रक्खा जाय तो जीवन में भिन्न भिन्न घटनाओं का किस प्रकार सामुख्य करना चाहिये इसका भी हमको सुलभ बोध हो जायगा।

विकासवाद का उसी प्रकार का आधार है जिस प्रकार का अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों का हुआ करता है। पारसपत्थर के अन्वेषण

करने में जो बहुत सी निर्मूल बातें प्रचलित थीं उनको निकाल कर जो शेष रह गई हैं वे ही आज कल के रसायन शास्त्र का आधार हैं। मनुष्य के जीवन पर अन्तरिक्ष के नक्षत्रों और ग्रहों का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है, इस प्रकार की जो प्रमाण रहित कल्पनाएं फलित ज्योतिष में हैं उन्हें यदि हटा दिया जाय तो शेष प्रमाण युक्त बातें, अर्थात्, तारों और ग्रहों आदिकों के आपस के सम्बन्ध और तत्सम्बन्धी गणितीय बातें ज्योतिःशास्त्र का क्षेत्र हैं। जैसे रसायन शास्त्र और ज्योतिः शास्त्र भिन्न भिन्न अवस्थाओं में से होकर वर्तमान अवस्था को पहुंचे हुए हैं, इसी प्रकार जीवन शास्त्र भी बहुत परिवर्तनों में से होकर वर्तमान अवस्था को प्राप्त हुआ है। हम पहले कह आए हैं कि विज्ञान कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं होता है क्योंकि हम किसी विभाग को पूर्ण तब तक नहीं समझ सकते जब तक कि उस विषय के सम्बन्ध में जितना कुछ जानना चाहिए उतना हम ज्ञात न कर लें। कोई शास्त्र भी पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकता जब तक ज्ञान और काल की समाप्ति न हो। विज्ञान में जो कुछ कहा जाता है उसकी सत्यता के विषय में वैज्ञानिकों को पूर्ण विश्वास होता है और उस विश्वास के आधार पर वे अपनी स्थापनाओं का निश्चय पूर्वक प्रति पादन करते हैं। निरक्षर और अज्ञानी मनुष्य वैज्ञानिकों के विषय में यह कल्पना करने लगते हैं कि वैज्ञानिक लोग अपने अपने विभागों को संपूर्ण समझते हैं; वास्तव में बात तो यह है कि सब से पूर्व वैज्ञानिक ही यह कहने का साहस करते हैं कि किसी विषय में हठ करना ठीक नहीं अथवा दुराग्रह रखना योग्य नहीं जब तक किसी विषय के पूरे पूरे प्रमाणों से परिचय न हो जाय और तब तक यह निश्चय भी कभी नहीं कर लेना चाहिए कि उस विषय के विरोधियों का मत सर्वथा निर्मूल है; वैज्ञानिकों को

सत्यान्वेषण की लालसा है। इस बात को वे पूर्णतया अपने हृदय में रखते हैं कि समय की प्रगति के साथ और नए नए अन्वेषणों के अनुसार सम्भव है कि उन्हें अपने विचारों में कुछ परिवर्तन भी करना पड़े।

जीवन और जीवधारी प्राणियों के विषय में विज्ञान की इतनी उन्नति हुई है और वैज्ञानिकों ने जीवन के संबंध में इतना ज्ञान प्राप्त कर लिया है, उन्होंने एतद्विषयक इतने प्रमाण संग्रहित कर लिये हैं और वे अपनी बातो का प्रतिपादन ऐसे विश्वास से करते है कि इनके सामने इनके विरोधी खड़े नहीं हो सकते। इस बात का एक प्रमाण भी है। "शेषं कोपने पूरयेत" इस कहावत के अनुसार इन के विरोधियों को जब अपना काम कुछ न बनता हुआ दिखाई पड़ने लगता है तब वे वैज्ञानिकों की बातों को युक्तिनिरपेक्ष, दुराग्रह और हठोक्ति के नाम से पुकारने लगते है।

विकास की स्थापना क्या है? अब इसका उत्तर देना आवश्यक प्रतीत होता है। संसार में जो जड़ और चेतन पदार्थ देखने में आते हैं उन का विचार हम को किस प्रकार करना चाहिये। क्या ये नित्य है, वा अनित्य है? विनाशी हैं वा अविनाशी? परिवर्तन शील है वा परिवर्तन रहित? क्या इस विश्व का कोई कर्त्ता है वा प्राकृतिक शक्तियों से ही इसका प्रादुर्भाव हुआ है? **विशिष्टोत्पत्तिवाद** (Special Creation Theory) का समर्थन करने वाले कहते हैं कि जीवन की उत्पत्ति अगम्य, अतर्क्य, अदृष्ट शक्ति से हुई है, चाहें वह शक्ति सगुण वा निर्गुण रूप में प्रकट हुई हो; और वे यह भी मानते है कि वर्तमान में जिस शक्ति के कारण प्राकृतिक घटनाएं होती हैं और हो रहीं हैं, वह शक्ति उस प्रारंभिक शक्ति के स्वरूप से भिन्न है।

दूसरी ओर **विकासवादी** कहते हैं कि जिस प्रकार आजकल परिवर्तन हो रहे हैं उसी प्रकार पूर्व समय में परिवर्तन हुए थे। और उन्हीं परिवर्तनों के कारण सृष्टि की आजकल की दशा दृष्टि गोचर हो रही है।

विकासवाद का स्वरूप इतने लघु वाक्य से ही बतलाया जासक्ता है। यतः विकासवाद की स्थापना वैज्ञानिकरीति पर कीगई है इस लिये वर्तमान संसार का कारण कोई प्रारंभिक अद्भुत शक्ति मानने की आवश्यकता नहीं रही। इस संसार में विभिन्नता के सीधे सीधे वही कारण हैं जिनसे कि वर्तमान में प्रति दिन परिवर्तन होते हुए दिखाई देते हैं। जहां कहीं भी देखा जाय प्रकृति में निरंतर परिवर्तन होने के प्रमाण पाये जाते हैं। प्रत्येक वर्षा ऊंचे ऊंचे पर्वतों पर से मिट्टी को बहाकर निम्न भूमि में लाती है और नदियों द्वारा उसको समुद्र में ले जाती है, वायु का प्रत्येक झोका पृथिवी के धरातल पर कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य उत्पन्न करता है, समुद्र की तरंगें जो किनारे पर प्रहार करती हैं उनसे तथा प्रत्येक ज्वार भाटे से कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होते हैं। भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ता बतलाते हैं कि इन प्राकृतिक घटनाओं से इस पृथ्वी के धरातल का स्वरूप बहुत परिवर्तित हो गया है। भूगर्भ-शास्त्र-वेत्ता, ज्योतिष शास्त्रवेत्ता और भौतिक विज्ञान वेत्ता कहते है कि इस पृथ्वी का धरातल आजकल जैसा ठोस प्रतीत होता है वैसा पहिले न था, वह अति उष्ण था और उसका स्वरूप उस प्रकार का था जैसा कि शहद वा पिघले हुए मोम या कोल्टार (*Coal Tar*) का होता है। इस अवस्था के पूर्व की, अवस्था पर विचार किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि तब की अवस्था इससे भिन्न थी; तब धरातल और भी अधिक उष्ण था जिसके कारण पृथ्वी द्रवरूप थी। उसके और भी पूर्व पृथ्वी की दशा

पर विचार किया जाय तो वह एक तप्त अंगार का पिंड था और उसके भी पूर्व का विचार किया जाय तो पृथ्वी सूर्य पिंड से पृथक् न थी प्रत्युत उसी तप्त पिंड के अन्तर्गत थी; जब वह तप्त पिंड ठंडा होने लगा तब उसके कई भाग हो गए और उन्हीं के नाम वर्तमान में पृथ्वी, मंगल, बृहस्पति, शुक्र आदि ग्रह पड गए हैं; परन्तु सूर्य वैसे का वैसा ही तप्त रूप में सब के मध्य में स्थित है। इस प्रकार सूर्य मंडल की उत्पत्ति और जगत की उत्पत्ति बतलाई जाती है। यह जगद्विकाश इस पृथ्वी पर के विकाश से अधिक बड़ा तथा अधिक व्यापी है।

इस अपनी पृथ्वी के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का यह विचार है कि जब उस तप्त पिंड से यह पृथ्वी पृथक् हो गई और इसका धरातल शनैः शनैः ठंडा होने लगा तब इसकी आकृति ठोस रूप में परिणत होने लगी। और फिर जब इस पर जीवन की उत्पत्ति होने के लिये अनुकूल स्थिति प्राप्त होगई तब इस पृथ्वी पर जीवन का प्रारंभ हुआ। प्रथम क्षुद्र जन्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार जीवन का प्रारंभ होने के पश्चात् शनैः शनैः और भी विकाश होने लगा और इसी का परिणाम आजकल का विचित्र संसार दिखाई दे रहा है। इसी बात का विस्तार रूप से वर्णन तथा निरूपण करना इस पुस्तक का आशय है। पाठकों को इससे यह ज्ञात हो सकेगा कि जीवन का विकाश एक बड़े भारी जगदुत्पत्ति के विकाश का एक भाग है। जीवन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, कौन कौन से कारण संगठित हुए जिनसे जीवन का प्रकाश हो सका इन बात के साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। जीवन के प्रारंभ के साथ साथ इस हमारे विषय का भी प्रारंभ है और जीवन में किस प्रकार भेद वा भिन्नता उत्पन्न हुई,

किस प्रकार भिन्न भिन्न जातियां उत्पन्न हुई इसका विचार इस विषय में हमको करना है। विकासवाद पर विचार करते हुए जीवन की उत्पत्ति के कारणों पर विचार करना एक प्रसंगोपात्त बात है : परन्तु विकासवाद का यह वास्तविक विषय नहीं है। विकासवाद में जीवन की उत्पत्ति को मानकर वनस्पतियों और प्राणियों के परस्पर के संबंध और उनकी विशिष्टताओं पर ही विचार करना होता है। *

---

* जीवन का आरंभ कैसे हुआ इस पर वैज्ञानिकों को अब तक कुछ ज्ञान नहीं हुआ है। वैज्ञानिक इस प्रश्न का सीधा सादा उत्तर देते हैं कि "हम इस बात को नहीं जानते"।

इस विषय पर जो एक वा दो कल्पनाएं वैज्ञानिकों को सूझी हैं वे निम्न प्रकार की हैं।

(१)—एक कल्पना यह है कि पृथ्वी पर गिरने वाले तारकाओं (Meteorites) द्वारा जीवन का बीज हमारे यहां पहुँचा। रिक्टर (Richter), हेल्महोल्ज़ (Helmholtz), और लार्ड केल्विन (Lord Kelvin) का यह मत है। इस पर यह शंका हो सकती है कि क्या प्रोटोप्लाज्म में इतनी शक्ति है कि गिरनेवाले तारकाओं द्वारा पृथ्वी पर पहुँचने तक उसमें जीवन अवशिष्ट रह सकता हो!

(२) दूसरी कल्पना यह है कि असंख्य वर्षों से पहले अनुकूल स्थिति पाने पर जीवन का एकदम प्रादुर्भाव (Spontaneons Generation) हुआ। फ्लुजर (Pfluger) [१८७५] नाम के शरीर संस्थानवेत्ता (Physiologist) के सहायता से वेरवोर्न, (Verworn) ने यह अनुमान लगाया है कि सायनोजिन मूलक (Cyanogen Radical) से प्रोटोप्लाज्म के बनने का प्रारंभ हुआ है। यदि नैट्रोजन(Nitrogen) के समास उपस्थित हों और ताप मान का अत्यन्त आधिक्य हो तो ही सायनोजिन और उसके अन्य समास बनते हैं; अतः सम्भव है कि पृथ्वी जब तप्त पिंड थी तब सायनोजन की उत्पत्ति हुई हो, और पृथ्वी के ठंडे हो जाने पर जब जल का प्रादुर्भाव हुआ तब उसके तथा अन्य

हम ऊपर कह आए हैं कि जीवन के विकास का अर्थ प्राकृतिक परिवर्तन है परन्तु इतने मात्र पर हमको संतोष नहीं होता । सविस्तर में विकास क्या है और विकास में किन किन बातों का साहचर्य

पदार्थों के साथ मिलकर जीवन को उत्पन्न कर दिया हो। इस कल्पना के साथ निम्न बातों का भी स्मरण रखना चाहिए।

(१) यूरिआ (Urea), मद्यार्क (Alcohol) अंगूरीखाण्ड (Grape Sugar), नील (Indigo), ओक्जालिक अम्ल (Oxalic Acid), तातारिक अम्ल (Tartaric Acid) इत्यादि प्रकृतिजन्य ऐन्द्रियिक (Organic) पदार्थों को यद्यपि रसायन वेत्ताओं ने रसायन शाला (Laboratory) में सरल तत्वों (Elements) से बनाया है तथापि अब तक उन से प्रोटीड पदार्थ जो प्रोटोप्लाज़म के मुख्य अंगभूत हैं, नहीं बनने पाए हैं। (२) जिस प्रकार रसायन शालाओं में रसायनज्ञ आवश्यक वस्तुओं को इकट्ठा करके मिलाता है उस प्रकार अब तक ज्ञात नहीं हुआ कि प्रकृति में कौनसी शक्तियां इनको एकत्रित करती हैं। (३) निर्जीव ऐन्द्रियिक पदार्थों को बनाना और सजीव ऐन्द्रियिक पदार्थों-अर्थात् जीवन-को बनाना एक जैसी बात नहीं है। इन दो बातों में महदंतर है।

इससे यह स्पष्ट है कि निर्जीव से सजीव की उत्पत्ति को निःशंक और प्रमाणपूर्ण मन से यद्यपि अब तक हम मान नहीं सकते तथापि इतना निःसंदेह है कि विकास स्थापना की अन्य कल्पनाओं के साथ इसका मेल भली भांति होता है। यदि भविष्यत् में ऐसे प्रमाण मिल जांय जिनसे यह कल्पना पूर्णतया ठीक सिद्ध हो तब भी जीवधारी प्राणियों के अथवा हमारे जीवन की कीमत न्यून नहीं हो जायगी। पृथ्वी के परमाणुओं और सूर्य प्रकाश से यदि स्वभावतः जीवन की उत्पत्ति हुई हो और सचमुच यदि प्राणी पृथ्वी की मिट्टी से पैदा हुए हों तो जड़ और चेतन की शृङ्खला अधिक सरल और समर्थक होती है और प्रोफेसर जगदीश चन्द्र बोस का कथन कि पत्थर और धातुओं में भी परिस्थिति के साथ अनुकूलन करने की शक्ति है अधिक भले प्रकार समझ में आता है।

है इस का वर्णन भी आवश्यक प्रतीत होता है। हम अनुमान करते हैं कि किसी दृष्टान्त के द्वारा इस विषय का भली भांति बोध हो सक्ता है। दृष्टान्त भी हम उन पदार्थों में से लेवेंगे जिन के साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है; मनुष्य जाति अथवा अन्य प्राणी की अपेक्षा जिस से पशु पक्षी अथवा किसी वृक्ष का विकास सुगमता से ज्ञात हो जाय। ऐसी निर्जीव वस्तु को उदाहरण लेना अधिक योग्य है। बाईसिकल (Bicycle) का उदाहरण लीजिये बाईसिकल को निकले लगभग ५० वर्ष हुए। आरम्भ में इस की रचना वर्त्तमान रचना से बहुत विचित्र थी। इस का अगला पहिया बहुत ऊंचा था, उस की लगभग ५४ इन्च की ऊंचाई होती थी, और, पिछला पहिया बहुत छोटा कोई १५ इंच की ऊंचाई का होता था। आज कल जो बाईसिकलें प्रचलित हैं उन के दोनों, अर्थात् अगले और पिछले, पहिये समान ऊंचाई के होते हैं; बाईसिकल बनाने वालों ने देखा कि अगले पहिये को पुराने पहिये के सदृश बेडौल बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है दोनों पहियों को समान ऊंचा रखना अधिक सुगम, अधिक सुंदर तथा अधिक लाभ दायक है। पुराने बाईसिकलों के पहिये लकड़ी के थे; पीछे लोहे के बनने लगे। इन पहियों पर पहिले पहिले लोहे का आवेष्टन था। सन् १८८५ के लगभग इस लोहे के आवेष्टन का स्थान रबड़ के ठोस आवेष्टन ने लिया। सन् १८९० से इन पहियों पर रबड़ के ठोस आवेष्टन के स्थान में रबड़ की नाली चढ़ाई जाने लगी जिसमें हवा भरने पर पुराने ठोस आवेष्टनों की अपेक्षा अधिक अच्छा आवेष्टन बन गया और बाईसिकल की गति भी अधिक शीघ्र होगई और सवारी करने वालों को अधिक सुगमता प्रतीत होने लगी। बाईसिकल का विकास यहां पर ही नहीं रुक गया। पुराने प्रकार की बाईसिकलों के पहिये ऐसे होते थे कि एक पहिये

चलाने पर दूसरा पहिया संकल (chain) द्वारा चलता था और जब पहिला पहिया थम जाता था तब दूसरा परतंत्र पहिया भी ठहर जाता था। ऐसे बाईसिकल को स्थायी पहिये (Fixed wheel) की बाईसिकल कहते थे। दस या बारह साल से इन पहियों का विकाश हुआ है। अब खुले पहिये (Free-wheel) की साईकल बनने लगी है यानी ऐसी साईकलें बनती हैं जिनके पहिये ऐसे होते हैं कि जिन में यह आवश्यक नहीं कि एक पहिये को जब तक गति रहे दूसरे पहिये की गति भी तभी तक रहे, परन्तु एक पहिये के चलाने से दूसरे को गति मिलती है और पहिले को रोक देने पर भी दूसरा चलता रहता है। बाईसिकल पर चढ़ने वालों को कितना आराम का साधन हुआ! पैरों को न चलाने पर भी बाईसिकल चलती ही रहती है। इस प्रकार अन्यान्य बीसियों विकास इस में हुए हैं; जैसे, बाईसिकल को ढलवान् पर चलाने के समय बाईसिकल की गति मंद करके उस को स्वाधीन रखने के लिये प्रबन्ध, चढ़ाई पर ले जाने के लिये थोड़े से परिश्रम से पहियों को अधिक गति मिलने के साधन, इत्यादि, इत्यादि।

पेट्रोल (Petrol) एञ्जिनों का जब प्रचार शुरू हुआ तब उन एञ्जिनों का असर इन बाईसिकलों पर भी पड़ा। बाईसिकल के साथ पेट्रोल एञ्जिन जोड़ने की कल्पना १०-१२ वर्ष से निकली और अब ऐसे बाईसिकल भी बनते हैं जिनके पहिये पेट्रोल एञ्जिन द्वारा घुमाये जाते है; इनका नाम (Motor Cycles) है प्रारम्भ में केवल पहियों को गति देनी पड़ती है, पश्चात् बैठने वाले को पैर हिलाने की भी कोई आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रकार के बाईसिकल के विकास में हम क्या देखते है? बाईसिकल जाति तो एक ही है परन्तु उसकी उपजातियें बहुतसी नई नई पैदा हुई है और भिन्न भिन्न उपजातियों

में जो जो विशेषताएं हैं वे विशेष परिस्थित्यनुकूल कार्य्य कर रही हैं। समय दर्शक घड़ियों का हम एक अन्य उदाहरण देते हैं। समय दर्शक यन्त्रों का इतिहास तब से प्रारम्भ हुआ जब से ठीक ठीक समय की कीमत लोगों को अधिकाधिक प्रतीत होने लगी और उसका मान बढ़ने लगा। घटिका यन्त्र के पूर्व धूप में खड़े होकर अपनी छाया की लम्बाई के अनुसार लोग दिन में समय का अनुमान करते थे और तारा तथा नक्षत्रों के समूह को देखकर रात्रि में समय का अनुमान करते थे। उसके पश्चात् धूप घड़ी, जल यन्त्र घड़ी और वालुका यन्त्र घड़ी की कल्पना हुई और उसके पश्चात् आज कल की विद्यमान घड़ियों की कल्पना निकली; आज कल की घड़ियों में भी बहुत वैचित्र्य है, जेबी घड़ी और मेज़ पर रखने की तथा दीवार पर लटकाने की घड़ी-इस प्रकार ये तो प्रथम दो बड़े विभाग हुए; अब जेबी घड़ियों में भी बहुत भिन्नता पाई जाती है; कईयों के आकार छोटे, कईयों के आकार बड़े; कईयों में केवल मिन्ट और घंटे की दो ही सुईयां, तो कईयों में मिन्ट और घंटे की सुईयों के साथ सेकंड की तीसरी सुई; यदि कईयों में कुन्जी देने का स्थान घड़ी के भीतर तो कईयों में घड़ी के ऊपर; कईयों को प्रतिदिन कुन्जी देनी पड़ती है तो कईयों को प्रति सप्ताह और कईयों को तो प्रतिमास कुन्जी देनी पर्य्याप्त होती है; कईयों की सुईयां साधारण धातु की बनी हुई होती हैं परन्तु कईयों की तो ऐसी होती है कि जिन पर बिजली घरमें चले जाने पर भी कोई असर नहीं होता। पहरे दारों को चुस्त रखने के लिये भी एक जेबी घड़ी ऐसी बनी है जिसमें पहरे दारों के नाक में दम आया है; उसको हर एक घंटे में चाबी देनी पड़ती है और चाबी देने के चिन्ह उस घड़ी पर अंकित हो जाते हैं।

अब मेज़ पर रखने की या दीवार पर लटकाने की घड़ी का हाल

सुनिये; कईयों में दो सुईयां होती है कईयों में तीन और कईयों में तिथि दिखलाने वाली चौथी सुई भी मौजूद होती है; कईओं को प्रति दिन कुन्जी देनी पड़ती है तो कईओ को प्रति सप्ताह अथवा प्रति मास कुन्जी देना पर्य्याप्त होता है। कईयों में प्रत्येक घंटे के पूरा होजाने पर घड़ियाल वजने लग पड़ता है; कईयों में प्रत्येक घण्टा, प्रत्येक आध घण्टा, और प्रत्येक चौथाई घण्टा भी वजता है; कईयों में इष्ट समय सूचक घण्टी (Alarm) है: कईयों में इष्ट समय पर ध्यान आकर्षित करने के लिये मनोहर और मन्जुल शब्द पन्द्रह मिनिट तक होता रहता है, कईयों में इष्ट समयसूचक घण्टी मिनिट वा आध मिनिट के लिये वज कर बन्द हो जाती है, कईयों में इष्ट समय पर घण्टी वजनी प्रारम्भ होकर आध आध मिनिट के पश्चात् बराबर घण्टी वजने का सिलसिला १५ मिनिटों तक जारी रहता है; कई घड़ियों के लटकन सादे होते हैं तो कईयों के घटने बढ़ने वाली वायु की उष्णता से प्रभावित नहीं होते। यदि बहुतों में उस देश के समय ज्ञात होने का साधन है कि जिस देश में वह घड़ी है तो कईयों में भिन्न भिन्न देशों में क्या समय है उस का तुलनात्मक चित्र सदा दीख पड़ने का प्रबन्ध विद्यमान है। ऊपर दिए हुए वर्णन से हम ने देखा कि घड़ी की जाति तो एक ही है परन्तु भिन्न भिन्न कार्यों के लिये और भिन्न भिन्न परिस्थिति के अनुसार घड़ी की बहुतसी उपजातियां पैदा हुई हैं।

परिस्थिति के अनुकूल भिन्नता की उत्पत्ति का यह एक बड़ा रोचक उदाहरण है। विकास किसका नाम है ? **परिस्थित्यनुकूल परिवर्त्तन युक्त उत्पत्ति–विकास का अर्थ है।** ऊपर दिये हुए विवेचन से पाठकों को यह बात स्पष्ट प्रतीत हो गई होगी। अब देखना चाहिये

ऐसी परिवर्त्तनयुक्त उत्पत्ति प्राणियों में भी दिखाई देती है वा नहीं और यदि दिखाई देती है तो यह भी देखना चाहिये कि किस प्रकार उस उत्पत्ति को और उस उत्पत्ति के नियमों को दर्शावें कि जिस से यह स्पष्ट प्रतीत हो कि प्रकृति में जितना प्राणिवैचित्र्य दीखता है वह परिस्थित्यनुकूल ही उत्पन्न हुआ है।

ऊपर के कथन पर दो आक्षेप एक साथ उठाये जा सकते हैं। **प्रथम आक्षेप** यह हो सकता है कि क्या निर्जीव और सजीव पदार्थों की भी समानता की जा सकती है।? कहां निर्जीव साईकल और कहां सजीव प्राणी! जो नियम बाईसिकलों और घड़ियों पर ठीक प्रतीत होता है क्या वही नियम गौ, बैल, घोड़ा, और कुत्ते आदि के लिये ठीक हो सकता है? क्या सजीव प्राणियों को कोई कभी निर्जीव यन्त्रों के तुल्य समझ सकता है? दूसरा आक्षेप यह किया जा सकता है कि मनुष्य के बुद्धिवैभव और चातुर्य के कारण बाईसिकलों और घड़ियों में आवश्यकता के अनुसार जिस प्रकार अधिक लाभ दायक और सुखदायक परिवर्त्तन किये गये हैं क्या वैसे ही परिवर्त्तन हम सजीव प्राणियों में मान सकते हैं? क्या ऐसा समझना उचित होगा? इस दूसरे आक्षेप में कुछ थोड़ासा सार अवश्य प्रतीत होता है और यह कहना भी ठीक प्रतीत होता है कि जिस प्रकार निर्जीव वस्तुओं में हम परिवर्त्तन कर सकते हैं उसी प्रकार सजीव प्राणियों में हम परिवर्त्तन नहीं ला सकते; न्यून से न्यून इतना तो हम को मानना ही पड़ता है कि वैज्ञानिकों ने अब तक ऐसी कोई रीति आविष्कृत नहीं की कि जिस से इन परिवर्त्तनों को वे परिक्षणों द्वारा सिद्ध कर सकें और न ही उन को अब तक यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार के परिवर्त्तन के नियम क्या हैं। परिवर्त्तन के सब नियम अब तक उन को ज्ञात नहीं हुए हैं। आगे चल कर यह सविस्तर

दिखलाया जायगा कि जिस प्रकार मनुष्य अपनी बुद्धिमता से आवश्य-कतानुसार यन्त्र रचना में परिवर्त्तन करके नए नए प्रकार के यन्त्र बनाता है ठीक उसी प्रकार प्रकृति में जीवन का परिवर्त्तन होकर परिस्थिति के अनुसार नई नई जातियों के प्राणी बनते रहते हैं। इस प्रकार का वर्णन हम आगे उचित स्थान पर करेंगे।

"सजीव प्राणियों की निर्जीव वस्तुओं से तुलना नहीं करनी चाहिये" इस पहिले आक्षेप पर विचार करना अत्यावश्यक प्रतीत होता है क्योंकि प्रारम्भ में ही यदि हम यह अच्छे प्रकार समझ लें कि प्राणियों की शरीर रचना यान्त्रिक रचना के समान है और उन का अपनी परिस्थिति के साथ बहुत कुछ सम्बन्ध रहता है तो विकास-वाद के अन्य प्रमाण समझने के लिये कुछ कठिनता प्रतीत न होगी। अतः हमारा पहिला कर्तव्य यह है कि जीवन (Life) और जीवित प्राणियों के विषय में अर्थात् उनकी मुख्य और आधार भूत बातों पर हम विचार कर लें।

सब जीवित पदार्थों की सामान्य बातें तीन हैं जो केवल जीवित प्राणियों में पाई जाती हैं और किसी अन्य संस्थान (System) में उन का नाम मात्र भी नहीं मिलता।

(१) पहिली बात यह है कि रसायन शास्त्र की दृष्टि से इन सब के शरीर की रचना एक ही प्रकार की है; यह नहीं कि मनुष्य का शरीर जिन सरल पदार्थों के संयोग से बना है, मच्छलियों का उनसे भिन्न किन्हीं अन्य सरल पदार्थों के समूह से बना हो तथा अमीबा A maeba) जो अत्यन्त सादा और एक कोष्ठधारी (One-celled प्राणी है उसका किन्हीं और ही विभिन्न तत्वों के समूह से बना हो।

(२) दूसरी सामान्य बात यह है कि सब जीवधारी पदार्थ

अपने की अवयवों शक्ति को जो प्रतिदिन के व्यवसायों से नष्ट होती रहती है फिर से प्राप्त कर सकते हैं जिससे उन के शरीर पुष्ट होकर वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं।

(३) तीसरी बात जिससे प्राण धारियों की निर्जीव पदार्थों से भिन्नता है वह बहुत स्पष्ट है और हमारी बहुत परिचित है; यह बात इतनी परिचित है कि हम उसे भूलते से प्रतीत होते हैं। एक घड़ी से दूसरी घड़ी का अथवा एक बाईसिकल से दूसरी बाईसिकल का उत्पन्न होना जितना विचित्र और असम्भव प्रतीत होता है उतना ही विचित्र परन्तु सर्वथैव सम्भव वह बात है। और वह बात एक प्राणी से दूसरे प्राणी की उत्पत्ति है। एंजिन, कल, तथा यन्त्र की यदि सामान्य परिभाषा की जाय तो उस परिभाषा में सजीव पदार्थ अवश्य अन्तर्गत हो जाते हैं। यन्त्र अथवा कल किस वस्तु का नाम है? यन्त्र उसका नाम है? जिससे हम कार्य को करने के लिये शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। क्या जीवित प्राणियों का इस अंश में निर्जीव यन्त्रों के साथ पूरा पूरा सादृश्य नहीं है? शरीर--धर्म--विज्ञान के वेत्ता यदि किसी बड़े से बड़े पाठ को सिखलाते हैं तो यह है कि सर्व जीवित प्राण धारियों के व्यापार यान्त्रिक व्यापारों के सामान होते हैं और जब तक कोई बाह्य रुकावटें नहीं उत्पन्न होतीं तब तक उन व्यापारों का क्रम पूर्णतया चलता रहता है। जीव धारी प्राणी प्रति दिन अपने भोजन के लिये नए नए पदार्थ अपने शरीर के भीतर ग्रहण करके आमाशय (पेट) द्वारा पचन क्रिया से शरीर में मिला देते हैं और उस से जो शक्ति उन्हें प्राप्त होती है उस से वे अपने लिये आवश्यक शरीरव्यापार करने में तथा प्रति दिन नष्ट होने वाली शक्तिको परिपूर्ण करने में

समर्थ होते हैं । जीवधारियों के जीवन रक्षक कौन कौन से कार्य हैं उन को बतलाने के पूर्व हम उन के शरीर रचना का विस्तार पूर्वक विचार करना आवश्यक समझते हैं क्योंकि इस से उन की यन्त्रों के साथ समानता पूर्णतया ज्ञात होजायगी ।

प्राणियों की शरीर रचना ।

(१) जीव धारियों में सब से अधिक महत्व की बात उन की रासायनिक रचना है । रसायन शास्त्र वेत्ताओं ने लग भग ८० वा इस से भी अधिक मूल तत्व [Elements] अब तक ज्ञात किये हैं । इन में केवल ६ से १६ तक के मूल तत्वों के संयोग से प्राणियों के शरीर बने हुए हैं । निर्जीव पदार्थों की रासायनिक बनावट देखी जाय तो उन मे एकता प्रतीत नहीं होती सब प्रकार के मूल तत्व उन की रचना मे सम्मिलित हुए हैं ।

(२) जीव धारियों के शरीर भिन्न भिन्न अवयवों से बने हुए हैं, और उन अवयवो द्वारा उन के सारे शारीरिक संस्थान (System) नियत होते है, यह संस्थान आठ प्रकार के हैं ।

प्रथम पोषण संस्थान (Alimentary System) इस के तीन कार्य है, (१) बाहिर से शरीर के अन्दर भोज्य पदार्थ प्रवेश कराना,(२)अन्दर प्रविष्ट किए हुए भोज्य पदार्थों का भिन्न २ रासायनिक क्रियाओं द्वारा रस बना देना, और(३)इस प्रकार बने हुए रस को अन्दर जज्ब करके शरीर के भिन्न भिन्न भागों में उस रसको भेज देना । यह बतलाना आवश्यक नहीं कि भोज्य पदार्थ मुख के द्वारा अन्दर लिये जाते है, पेट में उनका रस बनता है और आतड़ियों में जज़्ब होने की क्रिया हो जाती है ।

द्वितीय श्वासोच्छ्वाससंस्थान (Respiratory System) इस से शरीर में प्राण धारक वायु–ओषजन (oxygen) का संचार कराने और कर्बनिक अम्ल गैस जैसे बेकार वायु को बाहिर निकालने का कार्य होता है। इस प्रबन्ध के अवयव फेंफड़े और श्वास नलिका हैं। फेंफड़े दो प्रकार के होते हैं एक उन प्राणियों के जो ज़मीन पर रहते हैं और दूसरे उन प्राणियों के जो पानी में रहते हैं। भोज्य पदार्थ शरीर के लिये जितने आवश्यक हैं उतनी ही आवश्यक प्राण पोषक वायु है।

तृतीय मलमूत्र वाहक संस्थान (Excretory System) इस से शरीर में जितनी गन्दगी इकट्ठी होती है उस को बाहिर फेंक दिया जाता है।

चतुर्थ रक्त वाहक संस्थान (Blood System) इस का कार्य सब शरीर में खून को स्थान स्थान पर पहुंचाने का है धमनी, शिरा, और हृदय द्वारा इस का कार्य होता है। कभी कभी हृदय के बिना भी धमनी और शिराओं द्वारा इस का कार्य चलता है। यहां तक के चार संस्थान प्राण धारण के हुवे।

पञ्चम प्रेरक संस्थान (Motor System):—

इस में शरीर के अन्दर के अवयवों की गति तथा प्राणी की चलने फिरने की गति का सम्बन्ध है।

षष्ठ आधार संस्थान(System of Support) इससे अस्थि आदि द्वारा कोमल अथवा सूक्ष्म अवयवों की रक्षा की जाती है।

सप्तम ज्ञानतंतु संस्थान(Nervous System) यह सब से अधिक महत्व का है। इस के द्वारा शरीरके सब अवयवों का आपस में संघटन होता है तथा बाह्य संसार का और बाह्य परिस्थिति का

ज्ञानतन्तु द्वारा उद्‌दीपन होता है जिस से परिस्थिति के अनुसार प्राणी वर्ताव करते हैं ।

अष्टम प्रसव संस्थान (Reproductive System) पहिले दिये हुए सात प्रबन्धों से यह भिन्न है; इससे व्यक्ति की अपेक्षा जाति को अधिक लाभ पहुंचता है; इस का नाम प्रसव संस्थान है। कोई भी जाति नष्ट न हो यह प्रकृति का एक नियम प्रतीत होता है और इस नियम के अनुसार यह प्रबन्ध है । प्रकृति में जो कार्य होते रहते हैं उनका यदि सूक्ष्मतया अवलोकन किया जाय और जो घटनायें होती हैं उन पर यदि विचारा जाय तो यह ज्ञात होगा कि क्षुद्र स्वार्थ के आगे उच्च परमार्थ को श्रेष्ठ आसन दिया गया है; इसी असूल पर प्रकृति में कार्य होता रहता है और जो व्यक्ति अथवा जो जाति इस नियम के विरुद्ध कार्य करती है वह कभी भी उठने नहीं पाती प्रत्युत नष्ट हो जाती है ।

प्रत्येक जीवित पदार्थ को चाहे वह क्षुद्र से क्षुद्र अमीबा हो, चाहे वह उच्च दर्जे का वृक्ष हो या उच्च दर्जे का स्तनधारियों में से कोई प्राणी हो । उनमें से प्रत्येक को इन आठों में से हरएक प्रबन्ध को पूरा करना पड़ता है । इस प्रकार की सामान्यता जो जीवन युक्त पदार्थों में दीखती हैं सचमुच आश्चर्य जनक है। जीवित प्राणियों की एक विशेषता, जिसका आगे हम सविस्तर वर्णन करेंगे, यह है कि ये प्राणी अपने को सर्वथा परिस्थिति के अनुकूल रखने की चेष्टा करते हैं; उनके अन्दर शनैः शनैः इस प्रकार के परिवर्तन आते जाते हैं कि वे परिवर्तनों द्वारा अपनी २ परिस्थिति में जीवन निर्वाह कर सकते हैं । इस विशेषता को उन आठ प्रबन्धों की दृष्टि से हम अच्छे प्रकार समझ सकते हैं । जैसे कि ऊपर बतलाया है कि कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता यदि वह इन आठ प्रकार के कार्यों

का पूरा न करे। यदि कालचक्र के फेर से उसकी परिस्थिति ब
जावे तो दो ही मार्ग उसके लिये खुले हैं या तो वह अपने आप
परिस्थिति के अनुकूल बनाले या इस नश्वर संसार से जाना स्वीक
कर ले।

प्राणियों की शरीर रचना का विचार करते हुये जैसे भिन्न
अवयवों का विचार करना पड़ा है उसी प्रकार यदि प्रत्येक अवय
की रचना का विचार कर लिया जावे तो मालूम होगा कि ये अ
यव भी कोष्टों के समूह से बने हुवे हैं। ये कोष्ट समूह भी पु
अवयवों की न्याई भिन्न भिन्न प्रकार में विभक्त हैं; उदाहरण के तो
पर अश्व के पांव को यदि चीर फाड़ के देखें तो क्या प्रतीत होत
है ? पांव के ऊपर का आवेष्टन चमड़ी (Skin) का है, उस के नीचे
स्नायु (Muscles) और खून के कोष्ठ समूह हैं और मध्यमें आधार
वाहक हड्डी के कोष्ठ समूह हैं। अवयवों की न्याई इन कोष्ट
समूहों की भी भिन्न जातियां हैं और प्रत्येक समूह के भिन्न भिन्न
कार्य हैं।

अन्त में जिन कोष्ठों से ये कोष्ठ समूह बने है उन कोष्ठों का
विचार किया जावे तो प्रतीत होता है कि प्रत्येक कोष्ठ एक कमरा
है और उसके भीतर मुख्यतया प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) अथवा
चेतनकण अपने कोष्ठ केन्द्र (Nucleus) सहित विद्यमान रहता है
यह प्रोटोप्लाज्म एक प्रकार का शहद जैसा तरल पदार्थ है। इन
कोष्ठों के भीतर जिस प्रकार की चीज़ें विद्यमान होती हैं उनके
अनुसार इन कोष्टों की भी भिन्नता होती है; जैसे,चमड़ी के कोष्ठ,
हड्डी के कोष्ठ, खून के कोष्ठ अपनी अपनी सामग्री और अपने २
कार्य के अनुसार से भिन्न भिन्न आकार और भिन्न भिन्न मुटाई के होते
हैं। इस प्रकार प्राणी की शरीर रचना के विवेचन से यह सिद्ध

हुआ कि प्रत्येक प्राणी कोष्ठ समूहों का बना हुआ एक पेचीदा पुतला है। शरीर रचना के इस प्रकार के विवेचन से अब प्राणियों का केवल यान्त्रिक रचना के साथ ही हम को साम्य प्रतीत नहीं होता प्रत्युत यह भी हम कह सकते हैं कि जीवित पदार्थों की जितनी कुछ शक्ति या सामर्थ्य है वह सब शक्ति जुदे जुदे कोष्ठों के सामर्थ्य का एकीकरण है, यदि एक एक कोष्ठ का हम नाश करने लग जांय तो उस के साथ उस प्राणी की शक्ति का नाश होता जायगा और अन्तिम कोष्ठ का नाश करने पर उस प्राणी का अस्तित्व नहीं रहेगा। हम प्रति दिन जो कुछ कार्य करते हैं वह सारा इन कोष्ठ समूहों से बने हुए स्नायु, नाड़ी, शिरा, आदि के शक्ति संघ के बल का परिणाम है। हमारी ज़िंदगी उन कोष्ठों की ज़िंदगियों का संचय है, जिस प्रकार कोई राष्ट्र मनुष्यों के समूह से बनता है और उस राष्ट्र की शक्ति उस राष्ट्र के जो भिन्न भिन्न मनुष्य हैं उन की शक्ति का संचय है, उस प्रकार हमारा शरीर एक राष्ट्र है और उसका बल उस के भिन्न भिन्न कोष्ठों के बल का संचय है।

राष्ट्र में किसान. बढ़ई, लोहार, तरखान, सिपाही, शिल्पकार और वैज्ञानिक ये सब एक ही प्रकार का कार्य नहीं करते अपनी शारीरिक रचना के अनुसार अपने से जो सब से उत्तम काम बन सकता है उसी को करते हैं; इसी प्रकार भिन्न भिन्न कोष्ठ समूहों का हाल है। कई कोष्ठ समूह रक्षण करने का, कई पोषण करने का और कई अपनी शारीरिक उन्नति का कार्य करते हैं। जिस अर्थ में राष्ट्र के साथ श्रम विभाग की कल्पना है, उसी अर्थ में प्राणी के साथ भिन्न भिन्न कार्य करने वाले कोष्ठ समूहों की कल्पना है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि चेतन सृष्टि में कोष्ठ की चेतनता सब कुछ है महान् से महान् प्राणी से लेकर

सूक्ष्म से सूक्ष्म "**अमीबा**" तक, इस बात की सत्यता प्रतीत होती है। अमीबा अपनी उत्पत्ति से अन्त तक एक ही कोष्ठ धारी प्राणी रहता है परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि उच्च दर्जे के प्राणी भी अपना जीवन एक कोष्ठ से प्रारम्भ करते हैं अर्थात् उन की उत्पत्ति का प्रारम्भ एक कोष्ठ से होता है जिस की वृद्धि से अन्त में उन को असंख्य कोष्ठ युक्त शरीर प्राप्त हो जाता है; यह किस प्रकार होता है इस का आगे विचार किया जायगा; यहां इतने महत्व के जो ये कोष्ठ हैं उन का अधिक सविस्तर विचार करना उचित है।

कोष्ठ के भीतर जो यह तरल पदार्थ (प्रोटोप्लाज्म) है वह भौतिक शास्त्र की दृष्टि से जीवन का मुख्य आधार है। इसी लिये इस पदार्थ का नाम चेतनोत्पादक रस रक्खा गया है रासायनिक रीति से यदि इसका विश्लेषण करने पर इस की बनावट में कर्बन, (Carbon), उद्रजन (Hydrogen), नत्रजन, (Nitrogen) गन्धक, (Sulphur), प्रस्फुरक, (Phosphorus), अम्लजन (Oxygen) सोडियम, (Sodium), हरिण, (Chlorine) मैग्निशियम, (Magnesium), पोटासियम, (Potassium), और दो चार अन्य सरल पदार्थ मिले हुए पाये जाते हैं; इस प्रकार मुख्यतः बारह पदार्थों का प्रोटोप्लाज्म बना हुआ है। हम पहिले भी कह चुके हैं कि लग भग अस्सी सरलों में से केवल बारह सरल पदार्थ ही चेतनायुक्त पदार्थों के बनाने में प्रयुक्त होते हैं। यदि जड़ पदार्थों के बनाने वाले अस्सी सरलों के साथ इन का मुकाबला किया जावे तो यह संख्या कितनी न्यून प्रतीत होती है! इन प्रोटोप्लाज्म का बहुत कुछ रासायनिक वर्णन यहां देना हम उचित

नहीं समझते इतना कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार बन्दूक के बारूद में अथवा घड़ी (Spring) में शक्ति भरी रहती है उसी प्रकार इस प्रोटोप्लाज्म् में शक्ति भरी हुई है और जिस प्रकार बन्दूक के चलाने पर शक्ति प्रकट हो जाती है उसी प्रकार प्राणियों की क्रियाओं द्वारा प्रतिक्षण प्रोटोप्लाज्म् की शक्ति भी प्रकट होती रहती है। प्रोटोप्लाज्म् के विश्लेषण करने पर एक और बात भी बहुत स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि प्रोटोप्लाज्म् में सम्मिलित हुआ हुआ ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो केवल चेतन पदार्थों की बनावट में ही खास प्रयुक्त किया जाता है। इस को बनाने वाले वे ही पदार्थ हैं जो जड़ सृष्टि के बनाने में प्रयुक्त होते हैं। दृष्टान्त के लिये यदि कर्बन पर विचार किया जावे तो हम देखते हैं कि चाहे वह मनुष्य के मस्तिष्क की बनावट में प्रयुक्त किया गया हो, वा कोयले की बनावट में अथवा चमकीले हीरे की रचना में प्रयुक्त किया हुआ हो वा वह अत्यन्त तप्त सूर्य के गैसमय गोले का भाग हो, कर्बन कर्बन ही है; उसकी भिन्न २ अवस्थाओं में भिन्न २ गुण नहीं होते। उद्रजन का उदाहरण लीजिए। उद्रजन (Hydrogen) का भी चाहे वह पानी का एक घटक अवयव हो, चाहे जीवित स्नायु का कोई भाग हो, वह सब जगह एक ही गुण वाला होता है। अन्य सरलों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है । इस प्रकार की अन्वेषणा से यह स्पष्ट है कि चेतन पदार्थ भी इन्हीं पदार्थों के मेल से ही उत्पन्न हुए हैं और वे कोई विशेष प्रकार का मेल नहीं रखते परन्तु वह सरल पदार्थों का एक अस्थायी समूह है और ये सरल पदार्थ शरीर के अन्दर होने वाले भोज्य जड़ पदार्थों के विश्लेषणों द्वारा ही चेतन शरीर प्राप्त कर लेते हैं। यह प्रोटोप्लाज्म् भी कोई नित्य और [illegible] हीं है, भंगुर और अनित्य है। प्रत्येक उच्छ्वास से हम

एक प्रकार की कर्बनिक अम्ल गैस Carbonic Acid Gas शरीर से बाहिर निकालते रहते हैं। यह गैस कहां से आ गई ? यह गैस उन सरल घटकावयवों से पैदा हुई जो घटकअवयव पूर्व क्षणमें हमारे चेतन शरीर का एक भाग थे। उस चेतन शरीर से वे पृथक् होकर फिर से उनके अन्य प्रकार के मिलान से यह जड़ कर्बनिक अम्ल गैस बन गई। हमारी प्रत्येक क्रिया तथा चेष्टा से हमारे शरीर का क्षय होता रहता है और इस क्षय द्वारा प्रोटोप्लाज्म् के सरल पदार्थ उस से वियुक्त होकर फिर जड़ सृष्टि में प्रविष्ट होते हैं। प्रत्येक ऋतु में वृक्षों के पत्ते सूक कर गिर जाते हैं और प्रत्येक वर्ष में एक वार मोर के पंख और हिरण तथा बारा सिंगों के सींग गिर पड़ते है। सांप अपनी कन्चली और स्तन धारी प्राणी अपने नाखून प्रत्येक वर्ष में एक बार छोड़ते हैं, मनुष्यों को अपने नाखून तो प्रति सप्ताह कटवाने पड़ते हैं। कई प्राणियों के शरीर का बहुत सा भाग मृत हुआ होता है। बिल्ली का ही उदाहरण लीजिए। उसके शरीर का भाग होते हुए भी बाल, नाखून और हड्डियां मृतवत् होती हैं। जीवित प्रोटोप्लाज्म् अपने आपको नष्ट कराकर इनको बना देता है, जीवित शरीर से पृथक् न होते हुए भी ये पदार्थ बाल, नाखून आदि जीवन युक्त अवस्था से जड़ अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। चेतना रहित भोज्य पदार्थों के टुकड़ों से हमारा शरीर निरन्तर बनता रहता है। जड़ पदार्थ चेतनायुक्त पदार्थों में परिवर्तन हो जाते हैं। जड़ और चेतन पदार्थों में जो एक अन्तर प्रतीत होता है वह केवल कल्पनामात्र ही है उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि शरीर से नाखून पैदा होते है. परन्तु नाखूनों के उत्पादक द्रव्यों तथा शरीर के उत्पादक द्रव्यों में कोई भेद नहीं; अर्थात नाखूनों के बनाने वाले जो सरल पदार्थ

हैं, उन्हीं सरल पदार्थों से शरीर की उत्पत्ति हुई है; अर्थात् शरीर तथा नाखूनों में आकाश पाताल का अन्तर नहीं है, ये दोनों एक ही कोटि के पदार्थ हैं। चेतन और अचेतन वस्तुओं में भी कोई तेरह, इक्कीस का अन्तर नहीं, जिस द्वारा शरीर में चेतनता प्रतीत होती है, वह प्रोटोप्लाज्म् भी उन्हीं सरल द्रव्यों से बना हुआ है, जिन सरल द्रव्यों से मट्टी, पत्थर, लकड़ी, खाण्ड, आदि पदार्थ बने हुए हैं। भिन्न २ वस्तुओं में यदि अन्तर है तो केवल सरल पदार्थों की संख्या की कमोवेशी के कारण ही है, अर्थात् जैसे पत्थर, और लकड़ी एक नहीं, यद्यपि जड़ दोनों हैं इसी प्रकार चेतन और अचेतन एक नहीं यद्यपि दोनों उत्पन्न होने वाले हैं, दोनों विनश्वर हैं, और दोनों एक प्रकार के ही सरल द्रव्यों से पैदा हुए हैं। परिणाम यह है कि चेतना युक्त द्रव्य भी प्राकृतिक ही है, वह एक अपूर्व अप्राकृतिक शक्ति नहीं है। **हक्सले** महाशय ने चेतन पदार्थों का लक्षण किया है वह इस दृष्टि से बड़ा मनोरंजक है। वे कहते है कि **चेतन पदार्थ दीपक की ज्योति के समान अथवा पानी के भंवर के समान यद्यपि नित्य प्रतीत होता है तथापि वास्तव में प्रतिक्षण बदलनेवाली व्यक्ति है।** जब दीपक जलता है तो उस की ज्वाला एक स्थिर वस्तु प्रतीत होती है; ज्वाला की हस्ति नष्ट परन्तु तनिक भी ख्याल किया जाय तो यह प्रतीत होता है कि निरन्तर अटूट दीखने वाली ज्वाला प्रतिक्षण में नष्ट होकर अन्य पदार्थों से फिर से पैदा होती रहती है। नदी में जो भंवर चक्कर रहते है उनका चक्करत्व नष्ट नहीं होता परन्तु चक्कर को अस्तित्व में लाने वाला पानी प्रतिक्षण नया होता है। इसी प्रकार चेतनायुक्त प्राणी में प्रतिक्षण नाश तथा नयी उत्पत्ति होती रहती है—जड़ से चेतन में और चेतन से जड़ में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। यह

कहना कि चेतन प्राणी बिल्कुल स्वतन्त्र हैं केवल मूल मात्र है। जब कि हमारा जड़ पदार्थों के साथ इतना गाढ़ा सम्बन्ध है तब हम यह कैसे कह सकते हैं कि परिस्थिति का हम पर कोई प्रभाव नहीं हो सकता; हमारा जीवन और हमारे जीवन की स्थिति इन जड़ पदार्थों पर निर्भर है। परिस्थिति की यदि हम पर्वाह नहीं करेंगे तो इस मर्त्य संसार में नष्ट होना आवश्यक होगा।

अब तक जो कुछ विवेचन हुआ उससे यह स्पष्ट है कि जीवधारी पदार्थों की तुलना यान्त्रिक रचना के साथ हम भले प्रकार कर सकते हैं। चेतना युक्त पदार्थ कोष्ठ, कोष्ठसमूह, और अवयवों से बने हुए हैं। जब तक विघातक परिस्थिति का उन पर प्रभाव नहीं होता तब तक इन कोष्ठसमूहों का अबाधित यन्त्रों की न्याई कार्य होता रहता है; जड़ सृष्टि के साथ जीवन सृष्टि का अटूट सम्बन्ध है और जीवन युक्त पदार्थों की सब जीवन सामग्री जड़ सृष्टि से प्राप्त होती है और यह सामग्री सर्वथा यन्त्रों की तरह चेतनायुक्तपदार्थों में परिवर्तित होती है। इस में कोई सन्देह नहीं कि जीवन युक्त प्राणियों के शरीर यन्त्रों की अपेक्षा अधिक क्लिष्ट हैं; तथापि प्राणियों का विकास हम को अच्छे प्रकार ज्ञात हो जायगा यदि शरीर की यन्त्रों के साथ तुलना का चित्र हम सदा अपने सामने रख दें।

जीवन क्या है?

जीवन किस का नाम है इस पर थोड़ा सा विचार करना चाहिये जीवन के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के भिन्न भिन्न विचार हैं। कुछ वैज्ञानिक जीवन को कर्बन, उद्जन, अम्लजन आदि मौलिक सरल पदार्थों की एक विशेष रचना मात्र ही मानते हैं। जिस ५

उद्रजन और अम्लजन की विशेष रचना से जल बनता है (जल का रासायनिक संकेत उ२अ) तथा कर्बन, उद्रजन और अम्लजन को विशेष प्रमाण में मिलाने से गन्ने की खाण्ड (रासायनिक संकेत-क१२उ२२अ११) बनती है, उसी प्रकार जीवन का मूल पदार्थ जो चेतनोत्पादक रस वा प्रोटोप्लाज्म है, वह कर्बन, अम्लजन, उद्रजन, प्रस्फुरक, पोटाशियम आदि सोलह सरल पदार्थों की एक बनावट है। वैज्ञानिकों के आजकल इस दिशा में प्रयत्न हो रहे हैं कि प्रोटोप्लाज्म कृत्रिम उपायों से बन जाये। कैम्ब्रिज के एक प्रसिद्ध लेबोरेटरी में बट्लरबर्क नाम के महाशय ने एक वा दो वर्ष के पूर्व ऐसे सूक्ष्म सूक्ष्म दाने कृत्रिम उपायों से बना दिये कि उन का प्रोटोप्लाज्म के साथ बहुत कुछ मेल दीख पड़ा; फ्रान्स में डुबोईस (DuBois) महाशय ने भी इस प्रकार के दाने तैय्यार किये हैं और जर्मनी के अति प्रसिद्ध रसायनज्ञ, प्रोफेसर ओस्ट वल्ड (Prof.Ostwald), बहुत से परीक्षणों द्वारा घोषणा करते हैं कि कृत्रिम उपायों से जीवन का बनाना अब थोड़े दिन की बात है। प्रोफेसर शाफेर (Schaffer) ने हाल (सितम्बर १९१२) में ही ब्रिटिश एसोसियेसन के सामने इसी प्रकार की उद्घोषणा की है। इन वैज्ञानिकों के अतिरिक्त कुछ अन्य वैज्ञानिक ऐसा मानते हैं कि जीवन इन सोलह तत्त्वों का केवल एक रासायनिक मेल नहीं है परन्तु उसके बनाने में कोई अन्य अवर्णनीय तथा अतर्क्य शक्ति काम करती है जिस के द्वारा ही प्रोटोप्लाज्म की उत्पत्ति के पश्चात् उसकी वृद्धि, उस से अन्य प्रोटोप्लाज्म की बनावट आदि कार्य की नियन्त्रणा होती है। इस प्रकार के विचार इन वैज्ञानिकों को क्यों सूझ पड़े, ये वैज्ञानिक जीवन को कुछ पदार्थों के केवल रासायनिक और भौतिक मेल क्यों मानते हैं, इत्यादि बातों का कथन

हमारे विषय के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता। जीवन की उत्पत्ति किस प्रकार हुई इस के साथ इस का सम्बन्ध है; अतः इस बात पर हम यहां विचार नहीं करेंगे। इस पुस्तक का विषय समझने के लिये इस बात को कभी भूलना नहीं चाहिये कि सचेत पदार्थ स्वतन्त्र नहीं हैं परन्तु उनका अपनी परिस्थिति के साथ बहुत गाढ़ा सम्बन्ध है। इस बात को हम फिर दोहराना चाहते हैं कि बनस्पतियों और प्राणियों की एक बहुत भारी यह विशेषता है कि परिस्थिति के अनुकूल अपने आप को बनाने का वे सर्वदा प्रयत्न करते रहते हैं।

आगामी पृष्ठों में अब हम को इन सजीवों का इतिहास देखना है और यह भी देखना है कि परिस्थिति के अनुकूल किस प्रकार से ये प्राणी बन जाते हैं। इस कार्य के लिये यह आवश्यक है कि वर्तमान समय में विद्यमान प्राणियों का सब बातों में अन्वेषण करके विकास को सिद्ध करने के लिये सब सामग्री एकत्रित हो और यह भी आवश्यक है कि जिस प्रकार बाईसिकल और घड़ी की वर्तमान दशा के कारणों को हम ने ज्ञात किया था उसी प्रकार चेतन पदार्थों की वर्तमान दशा के कारणों को हम ज्ञात कर लें।

इस खण्ड में हम ने यह दिखलाया कि वर्त्तमान समय के भिन्न भिन्न प्राणियों का एक ही उत्पत्ति स्थान है जिस को सिद्ध करना विकास वाद का अन्तिम हेतु है; इस के साथ हम ने यह भी दिखलाया कि सजीव प्राणियों और निर्जीव यन्त्रों की बहुत अंशों में तुलना भले प्रकार की जा सक्ती है। अब जीवन सृष्टि से उन प्रमेयों (Facts) को हम को दिखलाना है जिन से

विकासवाद की सत्यता निश्चित प्रतीत होती है और जिन से विकास को प्रभावित करने वाली प्राकृतिक शक्ति का ठीक ठीक बोध हो जाता है। यहां यह बतला देना भी आवश्यक प्रतीत होता है कि प्रमेयों को जान लेना एक बात है और प्रमेयों द्वारा विकास की रीति (Method) को ज्ञात करना अन्य बात है। जैसे, मान लीजिये कि हमारे सामने पाच भिन्न भिन्न जाति के जन्तु उपस्थित हैं और इन पांचों के मस्तिष्कों (Brains) की तुलना किये जाने पर हम यह देखते हैं कि मस्तिष्क का मुख्य भाग भेजा वा सेरीब्रम (Cerebrum) पांचों में बराबर विकसित होता गया है क्योंकि एक जन्तु का भेजा बहुत छोटा, दूसरे का उस से बड़ा, तीसरे का उस से, इस प्रकार पांचवें का सब से अधिक बड़ा पाया जाता है। यह तो हुई प्रमेयों की बात। अब ये जो साक्षात् प्रमाण हम को प्राप्त हुए हैं इन साक्षात् प्रमाणों द्वारा यह आन्दोलन करना कि इस प्रकार की उन्नति क्यों हुई, क्या क्या कारण हुए जिन से यह उन्नति हो सकी इत्यादि अन्य बातें हैं और इन का नाम विकास की रीति है। अगले पृष्ठों में वनस्पतियों को छोड़ कर केवल भिन्न भिन्न जन्तुओं के ही प्रमाण हम देना चाहते हैं। वनस्पतियों के प्रमाण इसलिये नहीं देना चाहते कि वनस्पति शास्त्र में बहुत थोड़ी खोज हुई है, और प्राणियों के प्रमाण इसलिये देना चाहते हैं कि प्राणी शास्त्र की बहुत कुछ उन्नति हुई है। प्राणी शास्त्र के प्रमाण देने में इस लिये भी हमारा विशेष आग्रह है कि मनुष्य का स्थान प्राणी विभाग में सब से श्रेष्ठ है और अन्त में हम को मनुष्य के विकास तक पहुंचना है। विकास को सिद्ध करने के लिये प्राणियों के जो प्रमाण प्रस्तुत किये जाते हैं उन के साधारणत: पांच निम्न प्रकार के अंग हैं :—

(१) जाति विभाग (Classification)

(२) तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र (Comparative Anatomy)

(३) तुलनात्मक संवर्धन शास्त्र वा गर्भवृद्धि शास्त्र(Embryology or Science of Comparative Development)

(४) लुप्त जन्तु शास्त्र (Palaeontology) अर्थात् पुरा काल में पृथिवी के अन्दर दब जाने के कारण प्रस्तर हुए हुए वनस्पतियों और प्राणियों के सम्बन्ध का विज्ञान ।

और

(५) प्राणियों का भौगोलिक विभाग शास्त्र (Geographical Distribution) ।

इन पांच विभागों में से प्रत्येक का एक एक शास्त्र है। प्रत्येक शास्त्र में अपने अपने लक्ष्य के अनुसार सब प्राणियों के वर्णन दिये गये हैं तथा उन के अवयवों पर, अवयवों की रचना पर, और भिन्न भिन्न प्राणियों के अवयवों के साधर्म्य और वैधर्म्य पर सविस्तर रीति से विचार करके अन्त में उन विचारों को साधारण नियमों में डाल दिया है । ये ही नियम अलग अलग और इकट्ठे मिल कर विकास के प्रभाव शाली प्रमाण बन गये हैं । इन पांच शास्त्रों में से प्रत्येक का हम अति संक्षेप में वर्णन देना चाहते हैं क्यूं कि इन के पढ़ने से विकास वाद के समझने में बहुत सुगमता होगी ।

१-जातिविभाग (Classification) शास्त्र :- समस्त चेतन पदार्थों का उनके साधर्म्य और वैधर्म्य के अनुसार उन को बड़ी या छोटी जाति में बांट देना इस शास्त्र का उद्देश्य है । इस प्रकार का जाति विभाग बहुत प्रकार की दृष्टि से हो सकता है, जैसे बाह्य

आकारों की समानता पर जाति विभाग किया जा सकता है, प्राणियों की अन्तरीय शरीर रचना के साम्य पर भी जाति विभाग हो सकता है, अथवा प्राणियों के रहन सहन की समानता पर भी यह जाति विभाग किया जा सकता है; उदाहरणार्थः—सब पक्ष धारी और वायु में उड़ने वाले प्राणियों को उन के बाह्य आकारों की समानता होने के कारण एक ही विभाग में रक्खा जा सकता है, अथवा रहन सहन के विचार से प्राणियों के जाति विभाग करने हों तो जलचरों का एक विभाग और स्थलचरों का एक विभाग हो सकता है। परन्तु वैज्ञानिकों ने यह सम्मति स्थिर करली है कि प्राणियों की अन्तः शरीर रचना पर ही वर्गीकरण करना युक्ति युक्त और लाभदायक है।

वैज्ञानिकों ने समस्त चेतन पदार्थों के दो मुख्य वर्ग (Kingdoms) किये हैं; एक वनस्पति वर्ग* और दूसरा प्राणिवर्ग। वनस्पति वर्ग के साथ हमारा बहुत कम सम्बन्ध होने के कारण उस का विचार छोड़ कर केवल प्राणिवर्ग का ही हम विचार करेंगे। प्राणि वर्ग के दो विभाग (*Sub-Kingdoms*) किये गये हैं। एक पृष्ठवंशधारी विभाग (रीड की हड्डी वाले जन्तु (Vertebrates)और दूसरा पृष्ठ वंश विहीन विभाग(रीडकी हड्डी रहित जन्तुInvertebrates)।

---

* वृक्षों में जीव है या नहीं इस बात पर विवाद व्यर्थ है क्योंकि विज्ञान ने वृक्षों की सजीवता भले प्रकार सिद्ध कर दी है। सूक्ष्म (वीक्षण यन्त्र (Microscope) की सहायता से वेलेस्नेरिया (Valesnaria) नाम की जल में पैदा होने वाली घास को देखा जाय,अथवा ट्राडेस्कान्शिया (Tradescantia) नामक पौदे के फूल के भीतरी तन्तुओं को देखा जाय तो जिस प्रकार प्राणियों के शरीर में खून की धारा बहती है उसी प्रकार इन वनस्पतियों के अन्दर चेतनोत्पादक प्रोटोप्लाज्म की धारा बहती हुई प्रत्यक्ष दिखलाई देती है।

इन में से प्रत्येक विभाग कई श्रेणियों (Classes) में, श्रेणियां कई कक्षाओं (Orders) में, कक्षायें वंशों (Families) में, वंश कई जातियों (Genera) में, और जातियां कई उपजातियों (species) में विभक्त की गई हैं, जिनका सविस्तर वर्णन पाठकों के सौलभ्यार्थ पृथक् पृष्ठ पर वृक्षाकार में दिया गया है। उपजातियों से वर्गों तक प्रत्येक का संक्षिप्त वर्णन निम्न लिखित है।

उपजाति (Species) :—जिस को साधारण भाषा में हम जाति कहते हैं वह वैज्ञानिक परिभाषा में उपजाति है, जैसे कव्वे, चिड़ियां, गिलेहरियां अथवा कुत्ते, इन प्राणियों को साधारणतया हम कव्वा—चिड़ी गिलेहरी—कुत्ता जाति के नाम से पुकारते हैं, परन्तु इन्हीं को वैज्ञानिक परिभाषा में कव्वा चिड़ी-गिलेहरी-कुत्ता उपजाति कहते हैं।

जाति(Genera):—बहुतसी समान प्रकार की उपजातियां मिलकर एक जाति बनती हैं जैसे कुत्ते, भेड़िये, लोमड़ी आदि उपजाति की एक जाति बनती है।

वंश (Family):—बहुत सी जातियां मिल कर एक वंश बनता है जैसे श्वा जाति और शृगाल जाति मिल कर एक वंश बनता है।

कक्षा (Order):—बहुत से वंश मिल कर एक कक्षा बनती है, जैसे श्वा वंश, मार्जार वंश, इत्यादि मिलकर एक मांस भक्षक कक्षा बनती है।

श्रेणी (Class)—:बहुत सी कक्षाएं मिल कर एक श्रेणी बनती है; जैसे, मांस भक्षक कक्षा, तीक्ष्ण दन्तियों (Rodents) की कक्षा, रोमन्थ (जुगाली) करने वालों (Ruminants) की कक्षा इत्यादि मिल कर एक स्तन धारियों (Mammals) की श्रेणी बनती है।

विभाग (Sub-Kingdom):—बहुत सी श्रेणियां मिल कर एक विभाग बनता है; जैसे स्तन धारियों, पक्षियों, सर्पों, इत्यादि, श्रेणियों से एक पृष्ठ वंश धारियों का विभाग बनता है।

वर्ग (Kingdom)·—पृष्ठ वंश धारियों और पृष्ठ वंश विहीन जन्तुओं का विभाग मिल कर एक वर्ग कहलाता है।

ऊपर लिखित वर्गीकरण—शास्त्र के अनुसार घरेलु कुत्ते का, वर्गीकरण में, निम्न प्रकार का स्थानहै। प्राणी वर्ग (Kingdom) के पृष्ट वंशधारी विभाग (Sub-Kingdom) में जो स्तन धारी श्रेणी (Class) है, और उस श्रेणी में जो मांस भक्षियों की कक्षा (Order) है, उस कक्षा का जो श्वावंश (Family) है और श्वावंश की जो श्वा जाति (Genus)है उस श्वा जाति की एक उपजाति (Species) में घरेलू कुत्ते का स्थान है। इसी बात को संक्षेप में निम्न प्रकार लिखते हैं; घरेलू कुत्ते का संक्षिप्त वर्गीकरण:—

वर्ग (Kingdom) ......प्राणीवर्ग (Animal Kingdom)
विभाग(Sub-Kingdom)पृष्ट वंशधारी(VertebrateSub-Kingdom)
श्रेणी(Class). .स्तनधारी...............(Mammalia Class)
कक्षा (Order) . .मांसभक्षी (Carnivorous Order)
वंश (Family) .. ...श्वा वंश (Canidae Family)
जाति (Genus).. .. ..श्वा जाति (Canis Genus)
उपजाति (Species) .. ..कुत्ता(Canis Familiaris)

कुत्ते के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्गी करण शास्त्र अल्प शब्दों में बहुत कुछ बतलाता है! इस वर्गीकरण शास्त्र को यहां समाप्त करके अब तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र का हम थोड़ा सा विचार करेंगे।

वृक्षाकार वर्गीकरण ।
चेतनपदार्थ (दो वर्गों Kingdoms में)
वनस्पतिवर्ग
(VegetableKingdom)
प्राणी वर्ग (Animal Kingdom)
दो विभागों (Sub-Kingdoms) में
पृष्ठवंशविहीन विभाग
(Invertebrate)
पृष्ठवंशधारी विभाग
(Vertebrate)
पांच श्रेणियों (Classes) में
(१) (Protozoa)
(२) (Coelen-terata)
(३) (Echino-dermata)
(४) (Annelida)
(५) (Mollusca)
५ श्रेणियों (Classes) में
(१) मत्स्य श्रे० (Fishes)
(२) मंडूक श्रे० (Amphi-bians)
(३) सर्प श्रे० (Reptiles)
(४) पक्षी श्रे० (Birds)
(५) स्तनधारी श्रे० (Mam-mals)
आगे प्रत्येक श्रेणी कक्षाओं में, प्रत्येक कक्षा वंशों में, प्रत्येक वंश जातियों में और प्रत्येक जाति उपजातियों में विभक्त की गई है इत्यादि।
आगे प्रत्येक श्रेणी कक्षाओं में, प्रत्येक कक्षा वंशों में, प्रत्येक वंश जातियों में और प्रत्येक जाति उपजातियों में, विभक्त की गई है इत्यादि।

विभाग (Sub-Kingdom):–बहुत सी श्रेणियां मिल कर एक विभाग बनता है; जैसे स्तन धारियों, पक्षियों, सर्पो, इत्यादि, श्रेणियों से एक पृष्ठ वंश धारियों का विभाग बनता है ।

वर्ग (Kingdom):–पृष्ठ वंश धारियों और पृष्ठ वंश विहीन जन्तुओं का विभाग मिल कर एक वर्ग कहलाता है ।

ऊपर लिखित वर्गीकरण–शास्त्र के अनुसार घरेलु कुत्ते का, वर्गीकरण में, निम्न प्रकार का स्थान है। प्राणी वर्ग (Kingdom) के पृष्ठ वंशधारी विभाग (Sub-Kingdom) में जो स्तन धारी श्रेणी (Class) है, और उस श्रेणी में जो मांस भक्षियों की कक्षा (Order) है, उस कक्षा का जो श्वावंश (Family) है और श्वावंश की जो श्वा जाति (Genus)है उस श्वा जाति की एक उपजाति (Species) में घरेलू कुत्ते का स्थान है । इसी बात को संक्षेप में निम्न प्रकार लिखते हैं; घरेलू कुत्ते का संक्षिप्त वर्गीकरणः–

वर्ग (Kingdom) .. ..प्राणीवर्ग (Animal Kingdom)
विभाग(Sub-Kingdom)पृष्ट वंशधारी(VertebrateSub-Kingdom)
श्रेणी(Class). . .स्तनधारी...............(Mammalia Class)
कक्षा (Order) ... ..मांसभक्षी (Carnivorous Order)
वंश (Family). . ...श्वा वंश (Canidae Family)
जाति (Genus).... .. .. श्वा जाति (Canis Genus)
उपजाति (Species) ....कुत्ता(Canis Familiaris)

कुत्ते के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्गी करण शास्त्र अल्प शब्दों में बहुत कुछ बतलाता है! इस वर्गीकरण शास्त्र को यहां समाप्त करके अब तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र का हम थोड़ा सा विचार करेंगे ।

वृक्षाकार वर्गीकरण।
चेतनपदार्थ (दो वर्गों Kingdoms में)
वनस्पतिवर्ग
(Vegetable Kingdom)
प्राणि वर्ग (Animal Kingdom)
दो विभागों (Sub-Kingdoms) में
पृष्ठवंशविहीन विभाग
(Invertebrate)
पृष्ठवंशधारी विभाग
(Vertebrate)
पांच श्रेणियों (Classes) में
(१) (Protozoa)
(२) (Coelen- terata)
(३) (Echino- dermata)
(४) (Annelida)
(५) (Mollusca)
५ श्रेणियों (Classes) में
(१) मत्स्य श्रे० (Fishes)
(२) मंडूक श्रे० (Amphi- bians)
(३) सर्प श्रे० (Reptiles)
(४) पक्षी श्रे० (Birds)
(५) स्तनधारी श्रे० (Mam- mals)
आगे प्रत्येक श्रेणी कक्षाओं में, प्रत्येक कक्षा वंशों में, प्रत्येक वंश जातियों में और प्रत्येक जाति उपजातियों में विभक्त की गई है इत्यादि।
आगे प्रत्येक श्रेणी कक्षाओं में, प्रत्येक कक्षा वंशों में, प्रत्येक वंश जातियों में और प्रत्येक जाति उपजातियों में, विभक्त की गई है इत्यादि।

२–तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र :–अपने नाम से ही इस के विषय का वोध होजाता है। इस में समस्त प्राणियों के आकारों तथा शरीर रचनाओं का विचार किया जाता है। भिन्न भिन्न श्रेणियों के प्राणियोंका परस्पर कहां तक साधर्म्य है इस का भी विचार इस में किया जाता है। वर्गीकरण निश्चित करने के लिये इस शास्त्र से बहुत कुछ सामग्री प्राप्त होती है; जैसे, बाह्य रूप में अत्यन्त भिन्न होने पर भी कई प्राणियों का जाति-विभाग-शास्त्र ने एक ही वर्ग में समावेश किया है, क्योंकि इन की आन्तरीय शरीर रचना बहुत अँशों में समान पाई जाती है। उदाहरण द्वारा इस हमारे कथन का भली भांति वोध हो जायगा। पृष्ठ वंशधारियों की जो पांच श्रेणियां की गई हैं उन में स्तन धारियों की एक श्रेणी है; इस एक ही श्रेणी में (१) चिमगादड़ (Bat) (२) व्हेल (Whale) तथा सील (Seal) मच्छली और (३) गौ इन तीन प्रकार के प्राणियों का समावेश है; अब विचार किया जाय तो पंख वाले चिमगादड़, पानी में रहने वाली व्हेल मच्छली, और चतुष्पाद गौ, में बाह्य रूप से कुछ भी सादृश्य नहीं है; तिस पर भी तुलनात्मक आकृतिविज्ञान शास्त्र हम को यह दर्शाता है कि आन्तरीय शरीर रचना की दृष्टि से इन तीनों प्रकार के प्राणियों में पूरा पूरा सादृश्य है और इसी लिये इन तीनों का एक ही श्रेणी में समावेश कर दिया गया है, जैसा कि होना चाहिये।

यद्यपि पंख वाली तितलियों और पंख वाले पक्षियों में बाह्यत: कुछ साधर्म्य है तथापि हम इन को एक ही श्रेणी में नहीं रख सकते, क्योंकि तुलनात्मक शरीर-रचना-शास्त्र हमें यह बतलाता है कि इन की आन्तरीय शरीर रचना नितान्त भिन्न है। इस प्रकार अन्य भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिन से यह ज्ञात हो सकता है कि इस शास्त्र ने वर्गी करण करने में बहुत कुछ सहायता दी है

इस शास्त्र में कुल प्राणियों की शरीर रचना की तुलना की गई है; अतः इस शास्त्र के जो साधारण सिद्धान्त बन गये हैं वे विकासवाद की स्थापना के लिये बहुत लाभकारी हैं। आगे चल कर हम को इस बात की सत्यता प्रतीत होगी।

३–तुलनात्मक संवर्धन–शास्त्र (Science of comparative Development) **या गर्भशास्त्र** (Embryology):- गर्भधारणा से प्रारम्भ होकर जन्म होने तक,तथा जन्म से लेकर पूर्णवस्था को प्राप्त होने तक, प्राणियों की शरीर-रचना के जितने परिवर्त्तन होते हैं उन का बोध हमें इस शास्त्र द्वारा होता है। इस का कुल प्राणियों के साथ सम्बन्ध है अतः तुलनात्मक-आकृति-विज्ञान-शास्त्र की न्याईं इस से भी विकास वाद को बहुत कुछ सहायता प्राप्त होती है।

४-लुप्त–जन्तु–शास्त्र (Palaeontology) :— पृथ्वी के तहों में लुप्त होकर पत्थरमय हुए हुए प्राणियों की खोज करके उन के द्वारा वर्तमान समय में विद्यमान प्राणियों की एक शृंखला बनाने का कार्य्य इस शास्त्र द्वारा होता है। हम जानते हैं कि शृंखला बहुतसी कड़ियों की बनी हुई होती है, और यदि शृंखला में से कुछ कड़ियां लुप्त होजावें तो पूर्ण रूप में वह शृंखला प्रतीत नहीं हो सकती; परन्तु उस शृंखला के स्थान पर भिन्न भिन्न टुकड़े दिखलाई देते हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि शृंखला की न्याईं कुल प्राणियों का एक दूसरे से सम्बन्ध है; वर्त्तमान समय में जो प्राणी विद्यमान हैं उन से पूरी शृंखला नहीं बनती। वे कहते हैं कि शृंखला की कुछ कड़ियां लुप्त हो गई हैं; लुप्त क्यों होगई इस प्रश्न का यहां कोई सम्बन्ध नहीं। वैज्ञानिकों का यह मत है कि पुराने समय में कुछ प्राणी उपस्थित थे जो आज कल विद्यमान नहीं हैं और यदि

वे विद्यमान होते तो प्राणियों की यह शृखला पूर्ण रूप में दिखलाई पडती। कारण जो कुछ भी हुवे हों, यह निश्चित वात है कि शृखला पूर्ण करने वाले प्राणी आज विद्यमान नहीं हे, उनका लोप होगया है। इन प्राणियों की खोज करके शृखला को पूर्ण करना इस लुप्तजन्तुशास्त्र का कार्य है। उदाहरणार्थ, मनुष्य और वनमानुस इन का वहुत निकट सम्वन्ध प्रतीत होता है, तथापि वैज्ञानिकों का यह मत है कि मनुष्य और वनमानुस के वीच अन्य प्राणी पुराने जमाने में विद्यमान थे जिनका आज कल लोप होगया है। इस शास्त्र ने इस लुप्त कडी की वहुत कुछ खोज की हे और शास्त्रज्ञों को ऐसे प्रमाण मिले हैं जिन से यह सिद्ध होता हे कि इस प्रकार का एक मध्यवर्ती प्राणी अवश्य विद्यमान था। इस विषय की ओर भी अधिक खोज आज कल जारी है।

५-प्राणियों का भौगोलिक विभाग का शास्त्र (Geographical Distribution of Animals) –किस प्रकार के प्राणी कहा कहा विद्यमान थे और कहा कहा वर्तमान में विद्यमान हैं इसकी खोज करके साधारण सिद्धान्त वना देना इस शास्त्र का काम हे।

इस प्रकारके ये पाच शास्त्र हैं। अव हमारा यह कार्य है कि इन के जो सिद्धान्त हैं उनकी हम छानवीन करें और परिचित प्राणियों के सम्वन्ध में अथवा चिडिया घर में जाकर वहा के भिन्न भिन्न प्राणियों के विषय में जितना कुछ जानते हैं उसकी इस छानवीन के साथ सगति लगाए। अगले खन्ड में प्राणियों की शरीर रचना से विकास के जितने प्रमाण मिल सकते हैं उस पर विचार होगा।

द्वितीय खंड

विकास के प्रमाण।

भिन्न भिन्न प्राणियों की शरीर रचनाओं का तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने से विकास के प्रमाण प्राप्त होते है- कुत्ते, लोमड़ी, भेड़िया और शृगाल का वर्णन— बिल्ली, चीता, व्याघ्र और सिंह का वर्णन— एक ही प्रारम्भिक प्राणी से इनकी उत्पत्ति— भालू तथा अन्य मास भक्षक प्राणी—ह्वेल मच्छली की अन्य मासाहारियों के साथ तुलना— प्रत्येक प्राणी में अपनी अपनी श्रेणी के विशिष्ट चिन्ह उपस्थित होते है— स्तनधारियों का विचार— तीक्ष्ण दंतियों (चूहा, छछूंदर, घूंस, शशक) का विचार—उड़नी गिलहरी, चिमगादड़— सुमवाले जन्तु (गौ, अश्व, हाथी, ऊंट, आदि)— कैंगरू और ओपोसम— प्राणियों की यन्त्रों के साथ तुलना ठीक है— पक्षीवर्ग—पेंग्विन— शतुर्मुर्ग—सर्प वर्ग—मंडूक वर्ग—मंडूकों की वृद्धि का इतिहास— मत्स्यवर्ग रीढ़ की हड्डी रहित प्राणी— विच्छु, तीतरी, भौरा, कानखजूरा, गिंडोया, हैड्रा; अमीबा—

गर्भवृद्धि शास्त्र और उससे विकास की प्रत्यक्षता— गर्भ शास्त्र के प्रमाण बलवान हैं— मण्डूक की प्रारम्भिक अवस्था का इतिहास-यह इतिहास बताता है कि प्रत्येक प्राणी को अपनी उन्नति का पूरा चक्र घूमना पड़ता है— मुरगी के इतिहास द्वारा उपरोक्त बात की पुष्टि—मनुष्य तक की गर्भज अवस्था में ऐसा ही इतिहास पाया जाता

है-- इस इतिहास से भिन्न भिन्न प्राणियों के विकास के क्रम ज्ञात होते हैं--- तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र और गर्भ वृद्धि शास्त्र के प्रमाण एक ही परिणाम पर पहुंचते हैं--- प्राणियों की प्रारम्भिक गर्भस्थ अवस्था का सविस्तर वर्णन--- प्राणियों की प्रारम्भिक अवस्था उनका उद्‌गम स्थान बताती है--- प्रत्यक्ष प्रमाणित होने के कारण गर्भ वृद्धि शास्त्र के सिद्धान्तों पर हमारा अविश्वास नहीं हो सकता।

———

द्वितीय खण्ड।

विकास के प्रमाण

(१)

प्राणियों की शरीर रचना से विकास को सिद्ध करने वाले जो कतिपय प्रमाण प्राप्त होते हैं वे कौन कौन से हैं यह जानने के लिये आवश्यक नहीं कि इस संसार में जितने प्राणी विद्यमान हैं उन सब की शरीर रचना का हम विचार करें । शरीररचनाशास्त्र के वेत्ताओं ने यह सिद्ध कर दिया है कि शरीर रचना के आधार पर प्राणियों की जो समानता है, उस के तत्त्व सर्वव्यापी हैं; अर्थात्, प्राणियों के किसी एक समूह को लेकर उसमें जितने प्राणी हों उनकी शरीर रचना के परस्पर संबंध ज्ञात कर लिया जाय तो प्राणियों के अन्य समूहों में भी उसी प्रकार के संबंध प्रतीत होंगे।

हमारे परिचित जितने प्राणी है उनमेंसे ही उदाहरण के लिये कुछ प्राणी हम यहां चुन लेना चाहते हैं। ऐसा करने का मुख्य कारण यह है कि इन परिचित उदाहरणों द्वारा विकासवाद के विषय में हमारा यह विचार बना रहेगा कि विकास की शक्ति वर्तमान समय में भी कार्य कर रही है; यह नहीं कि विकास कहीं अज्ञात पुरातन समय में प्रचलित था और वर्तमान में उसका कोई चिन्ह अवशिष्ट नहीं है। मनुष्य से अतिपरिचित जन्तु कुत्ता है और प्रथम उस ही का हम उदाहरण देते हैं।

कुत्ते और उसकी जाति के अन्य मांस-भक्षक प्राणियों को हममें-से लगभग सब ही जानते हैं। इतना ही नहीं परंतु हम यह भी जा-

नते हैं कि कुत्तों की बहुत सी उप जातियां हैं। किसी नगर में यदि हम घन्टा दो घंटे भ्रमण करें तो अनेक प्रकार के कुत्ते दृष्टिगोचर होंगे। सब एक जैसे न होंगे; कइयों के आकार भिन्न होंगे, कइयों के रंग भिन्न होंगे, कइयों के बाल छोटे होंगे, कइयों के बाल छोटे और मृदु होंगे, कई शरीर में बहुत पतले परंतु ऊँचे होंगे और कई मोटे परन्तु छोटे आकार के होंगे; इस प्रकार कुत्तों के बहुत से भेद दिखाई पड़ेंगे परन्तु तिस पर भी हम इन सब की कुत्ते की ही जाति में गणना करेंगे क्योंकि इन भिन्नताओं को छोड़कर उनमें अन्य समानताएं इतनी हैं कि उन समानताओं के कारण उनको कुत्तों की जाति में समझना ही ठीक होगा। समीप समीप की दो चार गलियों के कुत्तों के सम्बन्ध में यह विचार करना कि ये यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तथापि कुछ वर्ष के पूर्व की एक ही कुतिया की संतति और अनुसंतति हैं असमञ्जस न होगा। हम यहा तक तो देखते हैं कि कुतिया के एक ही समय उत्पन्न हुए पिल्लों में समानता नहीं मिलती; उनमें से किन्हीं दो में भी रंग, आकार, और आवाज़ आदि की पूरी समानता नहीं मिलती और नहीं उन पिल्लों में से किसी की अपने माता पिता के साथ पूरी समानता रहती है। प्रति दिन का हमारा यह अनुभव है कि अत्यंत निकट संबंधियों में पूरा पूरा मेल दिखाई नहीं देता। इस अनुभव के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि शरीरसंबंध की सहयोगिता (Correspondence) आकृति साम्य के साथ नहीं है; अत्यन्त निकट संबंधियों में रूपभिन्नता का अस्तित्त्व प्रतीत होना कोई विरोध सूचक बात नहीं है। यदि हम अधिक विस्तारपूर्वक कुत्तों का निरीक्षण करें और भिन्न भिन्न नगर के कुत्तों की समानता पर अपने विचारों को दौड़ाएँ तो ऊपर बतलाई हुई भिन्नताओं से अधिक भिन्नताएँ हम को दिखाई देंगी। किसी नगर के कुत्ते शिकार के लिये

अधिक योग्य होंगे, और किसी के पहरा देने के लिये अधिक लाभकारी होंगे, और किसी स्थान के कुत्ते वर्फ में दबे हुए यात्रियों की खोज करने में अधिक चतुर पाये जायेंगे। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के भेद भिन्न भिन्न स्थान के कुत्तों में पाये जायंगे तथापि यह कौन कह सकेगा कि उन कुत्तों में अपनी अपनी अवान्तर जातीय विशेषताओं के होते हुए भी वे सामान्य गुण नहीं हैं जिन से हम उन को श्वा जाति के मानने में सामर्थ न हों ? चाहे भिन्न भिन्न स्थान के कुत्ते क्यों न हों, उन में ऐसी कुछ न कुछ श्वा-जाति की विशेषतायें अवश्य मिलेंगी जिन से हम उन सब की श्वा-जाति में गणना करने में समर्थ हो जाँय। हमारा अनुभव भी यह बतलाता है कि जिन प्राणियों में अधिक सादृश्य होता है उन प्राणियों के परस्पर सम्बन्ध बहुत निकट के होते हैं। एक ही माता पिता के पुत्र पुत्रियों में जितना साधर्म्य रहता है उतना साधर्म्य दो भिन्न कुल के मनुष्यों में नहीं होता। यह हमारी प्रति दिन की देखी हुई बात है। यदि दो प्राणियों में थोड़े भेदों के अतिरिक्त बहुत कुछ समानताएं पाई जावें तो ये समानताएं उन दो प्राणियों की एक स्थान से उत्पत्ति की सूचक होती हैं। प्रति दिन के अनुभव द्वारा निर्मित यह तुलनात्मक-शरीर-विज्ञान-शास्त्र का अत्यन्त महत्व का नियम है और वह प्रारम्भ में ही एक सर्व साधारण प्राणी के दृष्टांत से ठीक हृदयगम्य हो जाता है। अब तक तो हम ने केवल एक ही देश में रहने वाले कुत्तों के विषय में विचार किया। यदि अन्य देशों के कुत्तों का विचार किया जाय तो यह बात अधिक दृढ़ प्रतीत होगी। आयर्लेण्ड (Ireland) और रूस (Russia) के ग्रेहौण्ड (Greyhound) कुत्ते बड़े बलवान् किन्तु पतले और ऊंचे आकार के और थोड़े बालों वाले होते हैं। स्विट्ज़र्लेण्ड (Switzerland) के सेन्ट बर्नर्ड (Saint

Bernard) नाम के कुत्ते बड़े बड़े बालोंवाले होते हैं; इंग्लैंण्ड के बुलडोग (Bull dog) नामक कुत्तों को प्रायः बहुतों ने देखा होगा; इन की आकृति बड़ा भयावह होती है: उन का जबड़ा बड़ा होता है, कान प्रायः खड़े होते हैं, नाक बहुत छोटी और दांत बड़े बड़े बाहिर निकले हुए और तीक्ष्ण होते हैं। न्यूफौण्ड लण्ड (Newfoundland) नामक कुत्ते बहुत लम्बे आकार के और घने बालों वाले होते हैं। जापान के कुत्ते, जिनको शौकीन लोग केवल विनोदार्थ रखते है, और ही प्रकार के होते हैं–देखने में बड़े सुन्दर, छोटे आकार के, अच्छे नरम बालों वाले और स्वच्छताप्रिय होते हैं। चीन के कुत्ते भी जापान के कुत्तों के साथ कुछ मिलते जुलते हैं। अफ्रीका के कुत्तों का और हां वर्णन है। इन कुत्तों पर बालों का तो अभावसा ही है–केवल इनके पूंच्छ के अग्र भाग पर थोड़े से और सिर पर बहुत थोड़े बाल होते हैं। कुत्तों के इस वर्णन से हम देख सकते है। कि भिन्न २ देश के कुत्तों में कैसी विचित्रताएँ हैं। परन्तु इतनी भिन्नता होने पर भी इन में बहुत कुछ समानता है जिससे इन सब को हम श्वजाति में परिगणित करते हैं। इस प्रकार का इनमें जो श्वानत्व है और इनका जंगली कुत्तों के साथ जो बहुत कुछ मेल प्रतीत होता है उस के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इन कुत्तों की उत्पत्ति एक ही प्रकार के जंगली कुत्तों से हुई है; और इनका भिन्न भिन्न देशों में विस्तार हो जाने से स्थान स्थान के जल, वायु,के कारण इनमें वर्तमान समय की भिन्नता आई हुई है। ऐसा कहना युक्ति के विरुद्ध भी प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार की विचार परम्परा को आगे बढ़ाया जाय और लोमड़ी, भेड़िया तथा शृगाल को, जिनका कुत्तों के साथ बहुत कुछ सादृश्य स्पष्ट दीखता है, तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो हम पूर्ण विश्वास से यह कह सकेंगे कि ये प्राणी शरीर वृद्धि में ही ज़रा से

आगे बढ़े हुए हैं; अन्य बातों में इनमें और कुत्तों में लगभग बहुत कुल मेलही दीखता है । क्या हममें से कईओं का यह अनुभव नहीं है कि कुत्तों और शृगालों में कभी कभी इतनी सामान्यता होती है कि दूर से इन को पहचानने में प्रायः भ्रम हो जाता है ? अब भिन्न २ प्रकार के कुत्तों के विषय में जिस प्रकार हमने यह अनुमान किया था कि उनके पूर्वजों में ऐसी भिन्नताएँ न थीं जैसी वर्तमान में उन में पाई जाती हैं उसी प्रकार, कल्पना शक्ति का अधिक विस्तार करने पर, कुत्ते, लोमड़ी, भेड़िया, तथा शृगाल के विषय में हम ऐसाही युक्तियुक्त अनुमान लगा सकते हैं कि इन चारों प्राणियों की उत्पत्ति भी एकही प्रकार के प्राणियों से हुई होगी। यह हमारा अनुमान ठीक है वा नहीं इसका निश्चय करने के लिये जब हम इन चारों प्राणियों की शारीरिक रचना की तुलनात्मक दृष्टि से आलोचना करते है तो हम देखते हैं कि इन चारों की शारीरिक रचना सब अंशों में एक सी है। शारीरिक रचना के सब मौलिक नियम चारों में एक ही प्रकार के विद्यमान है ।

इन सब बातों का बुद्धि पुरःसर विचार किया जाय तो हमें अवश्य कहना पड़ेगा कि कुत्ता, लोमड़ी, भेड़िया, तथा शृगाल, इन सब का आरम्भ एक ही प्रकार के जन्तुओं से हुआ था; परन्तु काल तथा परिस्थिती के चक्र में उन प्राणियों की सन्तति का कुत्ते, लोमड़ी भेड़िया, तथा शृगाल के पृथक् पृथक् रूप में विकास होता गया ।

मांस भक्षक जानवरों में से बिल्ली भी जनपरिचित है । इसके सम्बन्ध में हम क्या देखते हैं ? हम यह देखते हैं कि बिल्लियों की भी कुत्तों के सदृश ठीक २ वैसी ही दशा है । जंगली तथा घरेलू कुत्तों की न्याई बिल्लियों के भी दो बड़े भेद हैं (१) जंगली तथा (२) घरेलू । घरेलू बिल्लियों में भी आकार, रूप, रंग और ऊंचाई में

वैसी ही भिन्नता दिखाई देती है जैसी कुत्तों में हम देख चुके हैं। एबिसीनिया, ईरान, इग्लैण्ड, अफ्रीका, तथा स्याम आदि अन्यान्य देशों की बिल्लियों का यदि सविस्तर वर्णन दिया जावे तो वह अवश्य ही रोचक होगा। परन्तु स्थान की न्यूनता तथा हमारे विषय के लिये बहुत उपयुक्त न होने के कारण हम यहा उसे नहीं देंगे। इन भिन्न२ देशों की बिल्लिया के बहुत भेद हैं। इनको देखकर हमारा यह अनुमान होना चाहिये कि इन सब बिल्लियों के पूर्वज एकही प्रकार के प्राणी थे। बिल्ली वंश के अन्य प्राणी चीता, व्याघ्र, तथा सिंह, बिल्ली के साथ बहुत कुछ समानता रखते हैं, भेद केवल इतना ही है कि चीता व्याघ्र तथा सिंह ऊँचाई में बिल्ली से बड़े होते हैं और साथ ही बिल्ली से अधिक हृष्ट पुष्ट होते हैं। इन चारों की आन्तरीय शरीर रचना में तो किसी प्रकार का भेद नहीं पाया जाता। इन बातों से हमको यह अनुमान करना चाहिए कि बिल्ली वंश के आरम्भिक प्राणी एक ही प्रकार के थे। उनमें किसी प्रकार का भेद न था, और बिल्ली, चीता, व्याघ्र, तथा सिंह का आजकल का भेद काल तथा परिस्थिति के कारणों से आया हुआ है। इस बातको पोषण करने में एक बड़ा प्रमाण आजकल भी हमारे पास उपस्थित है। इन भिन्न भिन्न प्राणियों के आपस में शारीरिक सम्बन्ध होसकते हैं और शारीरिक सम्बन्ध से सन्तति भी हो जाती है। सिंह तथा व्याघ्र के मेल से सतति हो जाती है। इस प्रकार की सन्तति के होनेका कारण यही हो सकता है कि इन दोनों का उद्गम-स्थान एक ही हो। यदि इन दोनों का उद्गम स्थान एक ही न होता तो इस प्रकार सतति की सम्भावना कभी भी न होती। भेडिये तथा कुत्ते के मेल से भी सन्तति हो जाती है; शिकारी लोग इस प्रकार से पैदा हुए कुत्तों को अधिक चाहते हैं क्योंकि इन कुत्तों में श्वा जाति की स्वामि-भक्ति के साथ भेडिये की शूरता भी आजाती है।

कुत्ता और बिल्ली वंश के प्राणियों को छोड़ अन्य मांस भक्षक प्राणियों का भी हम थोड़ा सा विचार यहां प्रस्तुत करते हैं।

तीसरा मांस भक्षक प्राणी भालू है। यह तलवों के बल चलने वाला जन्तु है; इसकी अन्तर्रचना देखी जावे तो, इसमें कोई संशय नहीं कि कुत्ता और बिल्ली की अन्तर्रचना से यह थोड़ी सी पृथक् है; परन्तु यदि यह देखा जाय कि कुल प्राणियों में से किस प्राणी की रचना के साथ इसकी रचना अधिक मिलती है तो यह ज्ञात हो जायगा कि श्वा और बिल्ली वंश के प्राणियों की रचना के साथ ही भालू की रचना का सबसे अधिक मेल बैठता है।

अन्य मांसहारी प्राणियों में से बिज्जु, नेवला, ऊदबिलाव, आदि प्राणियों को हम में से बहुतों ने प्रायः न देखा होगा और चूंकि इन प्राणियों के साथ हमारा विशेष परिचय नहीं इसलिये इनका हम विशेष वर्णन न देंगे।

मांस भक्षक प्राणियों में ह्वेल (दूध पिलाने वाली मच्छली) और सील मच्छलियां, जिनका उल्लेख पहले हम कर चुके है (पृ० २८), सम्मिलित हैं। ये जन्तु समुद्र के हैं अतः समुद्र किनारे पर के स्थान छोड़कर अन्यत्र रहने वालों को इनको देखने का अथवा इनका स्वभाव जानने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता है। ह्वेल मच्छली का नाम दूध पिलाने वाली मच्छली रखा हुआ है जिस से उसका अन्य मच्छलियों से भेद और स्तन धारी प्राणियों के साथ साम्य बहुत अच्छे प्रकार स्पष्ट हो जाता है। यदि सील और ह्वेल की रचना देखी जाय तो प्रतीत होगा कि मच्छलियों की शरीर रचना से इनकी शरीर रचना अत्यन्त पृथक है और बिल्ली कुत्ता इत्यादि मांस भक्षकों की रचना के साथ बहुत मिलती है। ह्वेल और अन्य मांस भक्षकों में

यदि कोई अन्तर है तो केवल इतना ही है कि हाथ और पांव की बाह्याकृति में ये निराले प्रतीत होते है । अजायब (Museum) में रखे हुए ह्वेल अथवा सील मच्छली को देखा जाये तो यह दीख पड़ेगा कि ह्वेल मच्छली के अगले पैरों का आकार लचकदार चप्पु के समान होता है, पिछले पैर अधिक पीछे हटे हुए प्रतीत होते हैं और उनका आकार नौका के पिछले डांडे (Paddle) के आकार के सदृश होता है । यद्यपि इनके अगले और पिछले पैरों का बाह्याकार मांस-भक्षक प्राणियों के अगले और पिछले पैरों के आकार के समान नहीं होता, तथापि इस बात का पूरा ध्यान रहे कि अगले और पिछले पैरों की अस्थियों की संख्या और उनका क्रम तथा रचना पूरी पूरी कुत्ते तथा विल्ली के अगले और पिछले पैरों की अस्थि संख्या तथा उनके क्रम और रचना के समान होती है । इनके श्वासोच्छ्वास की इन्द्रिया मच्छलियोंके श्वासोच्छ्वासकी इन्द्रियें, अर्थात् गलफड़ें (Gills), के समान नहीं है परन्तु मांस भक्षकों के फेफड़ों (Lungs) के समान हैं। ये मच्छलियों के समान अंडज नहीं अपितु मास भक्षकों के समान जेरज है; माता अपने पेट में गर्भ धारण कर निश्चित समय के पश्चात् बच्चे को जन्म देती है । मांसाहारी प्राणियों की न्याईं ये मछलियां भी अपने बच्चों को दूध पिलाकर उनका पोषण करती हैं । तात्पर्य यह है कि ह्वेल मच्छली स्तनधारी श्रेणी की मांसाहारी कक्षा में है और मत्स्य श्रेणी में नहीं है । इस कथन को प्रमाणित करने के लिये हमारे पास एक और प्रमाण हैः—ह्वेल और सील मछलियों के शरीर पर कुछ ऐसे अंग विद्यमान हैं जो इन के लिये निरुपयोगी प्रतीत होते हैं; उदाहरणार्थ, इन के नाखून और बाल, नाखून इनके पिछले पैरों पर स्पष्ट दिखाई देते हैं और बाल्यावस्था में तो शरीर बालों से अच्छे प्रकार ढका रहता है । अब विचार किया जाय तो इन पैरों पर के

नाखूनों से पानी में रहने वाली इन मच्छलियों को कुछ लाभ नहीं है और न ही इस वालोंवाले आच्छादन का सर्दी से अथवा वर्षा के जल से इन की रक्षा करना ही उद्देश्य हो सकता है । वैज्ञानिकों ने इस प्रकार के अंगों का नाम अवशिष्टांग (Rudimentary Organs) रखा हुआ है । इन मच्छलियों के इन अवशिष्टांगों के आधार पर यह अनुमान लगाया हुआ है कि एक समय में ये मच्छलियां ज़मीन पर रहने वाले प्राणियों में शामिल थीं परन्तु परिस्थिति के परिवर्त्तन के कारण उन को जल में रह कर वहां की मच्छलियों पर पेट भरना आवश्यक हुआ; जल में रहने के कारण इन के हाथों और पैरों का भी विकास हुआ और इस विकास से इन के हाथों और पैरों के आकार जल में कार्य करने हारे होगए । किन किन अवस्थाओं में से इन प्राणियों को गुजरना पड़ा इन का अब तक किसी ने निश्चय नहीं किया। ऊदबिलाव जैसे अर्द्ध जलचर-प्राणी आज कल जिस अवस्था में हैं उस अवस्था में से कदाचित् ये प्राणी गुज़रे होंगे । ऐसी कल्पना इन के विषय में आज कल की जाती है ।

अब तक जितने प्राणियों का विचार हुआ उन में से प्रत्येक में विकास को सिद्ध करने हारे प्रमाण पाये जाते हैं क्योंकि प्रत्येक प्रकार के प्राणी में अपनी कक्षा के विशिष्ट २ चिन्ह विद्यमान होते हुए भी अपनी श्रेणी के सामान्य लक्षण उपस्थित हैं; इन सामान्य लक्षणों द्वारा यह सूचित होता है कि जिन जिन प्राणियों में इस प्रकार के सामान्य लक्षण विद्यमान हैं उन सब की प्रारम्भिक उत्पत्ति एक ही प्रकार के प्राणियों से है और विशिष्ट चिन्हों से यह प्रतीत होता है कि इन का वर्त्तमान अवस्था का स्वरूप इन्हें काल तथा परिस्थिति के परिवर्त्तनों के कारण प्राप्त हुआ है । शरीर के अवयवों की रचना

समान होने के कारण तथा इधर उधर के अन्य प्रमाणों के द्वारा इन प्राणियों की एकता स्पष्ट प्रकार से सिद्ध होती है; इस अनुमान के अतिरिक्त कोई भी अन्य अनुमान सहेतुक और युक्ति पूर्ण प्रतीत नहीं होता; ह्वेल मच्छली पर के बालों के आच्छादन का तथा उसके हाथों और पैरों के नाखूनों का समर्थन विकास के सिलसिले को छोड़ कर किस अन्य रीति से हो सकता है ?

अब तक स्तन धारियों की केवल मास भक्षक शाखा का विचार हुआ और उस में जो विचित्रताएँ प्रतीत हुईं उन का विकासवाद के आधार पर बहुत अच्छे प्रकार समर्थन हुआ । स्तन धारियों की अन्य शाखाओं का भी विचार करके यह देखना योग्य है कि उन शाखाओं से जो कुछ अनुमान निकलते है वे भी इस समर्थन की पुष्टि करते हैं या उस का कोई विरोध करते है ।

स्तन धारियों में तीक्ष्णदन्तियों (Rodents) की एक अन्य कक्षा है और इस में जितने प्राणी हैं उन में से बहुतों के साथ हमारा परिचय भी है; इन में से एक को तो आबाल वृद्ध भले प्रकार जानते हैं और वह प्राणी चूहा है । इस की बहुत धूम धाम

और नीचे की ओर कुछ मुड़े होते है जिनसे ये प्राणी कुतरने और चबाने का कार्य कर सकते है । मांस भक्षकों के मांस छेदक दांत (Canine teeth) इनमें होते ही नहीं । शशकका मुंह खोलकर देखने से इस बात का अच्छे प्रकार बोध हो जायगा ।

इस कक्षा के प्राणियों, अर्थात चूहा, शशक, गिल्हरी आदि के दांतोंकी आन्तरिक रचना परस्पर बहुतसी मिलती है और अन्य विशेष विशेष बातों में इनकी परस्पर वैसी ही समानता पाई जाती है जैसी कि कुत्ता और बिल्ली की कक्षाओं के भिन्न भिन्न प्राणियों में हमको प्रतीत हुई है । इनकी उत्पत्ति का और वर्तमान अवस्था का वैसा ही अर्थ है जैसा कि मांसाहारी प्राणियों का बतलाया जा चुका है ।

इन कुतरने वाले जन्तुओं में ही उड़नी गिलहरी सम्मिलित है। गुच्छेदार पूंछ वाली तथा काली चमकीली आंखों वाली और सामान्यतः दीखने में बड़ी चंचल और फुर्तीली गिलेहरी से यह कुछ अंशों में पृथक है। चम्बा, सिमला, आदि ठण्डे स्थानों में यह (उड़न गिल्हरी) होती है; इसकी कई जातियां हैं । इससे हम इस लिये परिचित नहीं हैं कि यह रात्रिचर प्राणी है । सूर्यास्त के कई घण्टों के पश्चात् अपने घोंसलेसे यह बाहर निकलती है और सूर्योदय होने के पूर्व ही अपने घोंसले में चली जाती है । इसकी खाल अति कोमल होती है और बाल भी वैसेही कोमल होते हैं । पहलुओं के साथ साथ अगली और पिछली टांगों में एक प्रकार की झिल्ली मढ़ी होती है । जब यह बैठती है तो इसके बाल और त्वचा की सिलवट में मे केवल पंजे दिखाई देते हैं परन्तु जब छलांगें मारती है तब चारों पांओं खूब तन जाते हैं । यह छलांग बड़ी बड़ी मारती है और झिल्ली फैला कर एक शाखा से दूसरी शाखा पर इस भांति पवन में चक्कर लगाती है कि मानों एक

प्रकार का हवाई जहाज़ ही इधर से उधर भ्रमण कर रहा है । इसी कारण इसका नाम उड़नी गिल्हरी पड़ गया है; ठीक देखा जाय तो यह प्राणी पक्षियों की न्याई हवा में नहीं उड़ता, परन्तु अपनी फली हुई झिल्ली के आश्रय मे वायु में तैरता जाता है । जिस प्रकार ऊपर की ओर उछाला हुआ कागज़ एक बार ही धरती पर नहीं गिर पड़ता, प्रत्युत पवन में कुछ काल उड़ता फिरता रहता है इसी भाति छलागते समय उड़नी गिल्हरी के पांओं की झिल्ली के तन जाने के कारण वह भी पवन में तैरती जाती है, और इसे गिरने का डर नहीं होता । इसका चित्र (स० १) देखिए ।

इसको देखकर चिमगादड़ो की उत्पत्ति किस प्रकार हुई होगी इसकी कल्पना हो जाती है । चिमगादड़ और इस में बहुत साम्य है; उड़नी गिल्हरी झिल्ली के सहारे हवा में तैरती हुई छलागें मारती जाती है परन्तु चिमगादड़ का विकास इस से अगली कक्षा का है; वह हवा में अच्छे प्रकार उड़ सक्ता है । चिमगादड़ का थोड़ासा वर्णन देने से यह स्पष्ट हो जायगा ।

चिमगादड़ बहुत विचित्र प्राणी है । स्तनधारियों में यही केवल एक ऐसा प्राणी है जो पक्षियों की भाँति हवा में उड़ सक्ता है; चिमगादड़ पंख-हस्त जन्तु कहलाता है; कारण यह है कि इस के हाथ पक्षियों के पंख वा भुजाओं के से है । चित्र (सं० २) देखने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि यह बात कहां तक ठीक है; चित्र में देखिए उसकी उंगलियां कैसी बड़ी बड़ी हैं और छतरी की सीखों पर जिस प्रकार कपड़ा फला हुआ होता है उस प्रकार इस पर भी पतली झिल्ली कैसी फैली हुई है ! उड़नी गिल्हरी की झिल्ली पहलुओं के साथ साथ अगली और पिछली टांगों में ही मढ़ी रहती है,

(चित्र संख्या १)
उड़नी गिलहरी ।

(चित्र संख्या २)
चिमगादड़ ।   (पृ ५२ के सम्मुख)

परन्तु इसकी झिल्ली पहलुओं से छगली तक, टांगों से पूंछ तक और हाथों की उंगलियों पर भी फैली हुई है। हाथों की केवल पांचवीं उंगली, अर्थात अंगूठा, खुला हुआ है; इस में लम्बा मुड़ा हुआ कांटे के रूप का नख है, जिसके सहारे यह पेड़ों में लटक सकता है। चिमगादड़ को उड़ते देखो, ऐसा प्रतीत होता है कि कोई पक्षी है। इसका शरीर देखा जाय तो मूसे के शरीर से मिलता जुलता है। वैसी ही नुकीली थूथनिया, छोटी छोटी प्रकाशमान आंखें, गोल गोल कान, छोटी छोटी हड्डियां और इनके पिंजर भी चूहों से मिलते हुए होते हैं। यह तो बाहर के आकार का साम्य हुआ, परन्तु शरीर के अन्दर के अवयवों का भी इसी प्रकार का साम्य है। भुजा, पौंचे, तथा उंगलियों की अस्थियों की संख्या, तथा उनका परस्पर संबंध पूर्णतया वैसा ही है जैसा ज़मीन पर रहने वाले स्तनधारियों के अवयवों का होता है। चिमगादड़ के इस झिल्लीदार पंख की रचना सर्वांश में ज़मीन पर चलने वाले तथा वृक्षों पर चढ़ने वाले स्तन-धारियों के अगले पांओं की रचना के समान होती है। इसका क्या कारण बताया जा सकता है ? विकास को छोड़ कर इसका कोई भी अन्य युक्ति युक्त प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। क्या विकास का यह बहुत मनोरञ्जक उदाहरण नहीं है ? गिलहरी, उड़न गिल-हरी तथा चिमगादड़ों को तुलनात्मक दृष्टि से विकाशक्रम के बहुत अच्छे प्रमाण प्राप्त हो जाते हैं। आगे विकास की विधि शीर्षक खण्ड में हमने आस्ट्रेलिया के शशकों का वर्णन दिया है जिस से यह ज्ञात हो जायगा कि परिस्थिति के अनुसार वहां के शशकों में कैसा कैसा परिवर्तन आया हुआ है—शशकों की एक ऐसी अन्य जाति निर्माण हुई है कि शशकों के पाओं के पञ्जों पर नाखून आने लग गए हैं जिससे वृक्षों पर चढ़ने में वे समर्थ हो गए हैं। ऊपर वर्णित तीन प्राणियों के

साथ इन दोनों जातियों को रखा जाय तो विकास का कैसा हृदयंगम प्रमाण प्राप्त होता है,—शशक, आस्ट्रेलिया के वृक्षा पर चढ़ने वाले शशक, गिलहरी, उड़नी गिलहरी और चिमगादड़ ।

गौ, अश्व, हाथी, ऊंट, हिरन, गैंडा, शूकर, दर्यायी घोड़ा जिसको अंग्रेज़ी में हिपोपोटेमस (Hippopotamus) कहते हैं तथा अन्य सुम तथा खुरवाले स्तन धारियों का विचार करना इस सम्बन्धमें बहुत उपयोगी है । इनको सुमवाले जन्तु इस लिये कहते हैं कि इनकी उंगलियों में मोटे मोटे नख वा सुम चढ़े होते हैं जिससे पृथ्वी पर चलने से इन की उंगलिया घिस न जांय ।

इस समूह के जितने जानवर हमने ऊपर बतलाए है उनमें से बहुतो के साथ हम परिचित हैं और कइओं को अपने लाभ के लिये हम बड़े प्रेम से पालते है । इनके शरीर की अन्तरीय रचना के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि इन सब की यह रचना एक ही तत्व पर बनी हुई प्रतीत होती है; जो कुछ वैचित्र्य है वह उसी प्रकारका है जिस प्रकार का श्वा कक्षा में अथवा बिल्ली कक्षा में हम ने दिखाया है ।

इन प्राणियों का यदि खुर-सम्बन्धी विचार किया जाय तो बहुत विचित्रता प्रतीत होती है । हाथी की पांचों उंगलिया अपने अपने नाखुनों–खुरों सहित विद्यमान है । टापीर के पैरों की भी उंगलियां चार वा कहीं तीन भी प्रतीत होती हैं । इससे हम यह अनुमान लगा सकते है कि इसकी एक या दो उंगलियां नष्ट हो गई हैं यद्यपि इसके पूर्वजों में वे विद्यमान थीं ।

गेंड़े के पैरों की रचना हाथी के पैरों जैसी है परन्तु पांच उं-

(चित्र संख्या २)

ओपोसम

(पृ सं० ५९ के सम्मुख)

बाहर निकल कर चलने फिरने लग जाते हैं परन्तु जहा थोडा भय प्रतीत हुआ तुरन्त सब थैली में आ छुप जाते हैं । आस्ट्रेलिया के केगरू के समान उत्तर अमरिका में एक ओपोसम नाम का थैली वाला जन्तु होता है । यह जन्तु डील डोल में बडी बिल्ली के बराबर होता है, नाक से पूछ तक लम्बाई २२ इच के लगभग तथा केवल पूछ की लम्बाई १ ५ इच होती है, वृक्षों की एक शाखा से दूसरी शाखा पर छलांगें मारता है और क्योंकि पिछली टागो के पजो के अगूठे उगलियों के सन्मुख आ सकते हैं इस लिये प्रत्येक वस्तु को भली भाति दृढ पकड सकता है । इसकी पूछ में भी बडी पकडने की शक्ति होती है । यदि वृक्ष की शाखा में पूछ लपेट कर लटक जावे तो कभी नहीं गिरता (चित्र देखिए)। इन थैली वाले प्राणियों के पश्चात् आस्ट्रेलिया के और दो अन्य प्राणिया का वृत्तात देकर हम स्तनधारियों का वर्णन समाप्त करेंगे । इन दो प्राणियों में से एक का नाम डकबिल (Duckbill) है क्योंकि इस की चोच बत्तख के समान होती है और इस के पैरो की *अगुलिया बत्तख की अगुलियों की भाति झिल्लीदार होती है ।* दूसरे प्राणी का नाम इकिड्ना (Echidna) है । बाह्य आकार में सेह के साथ इस की पूरी समानता है इस के शरीर पर वैसे ही तीखे नुकीले काटे होते है । इन दो प्राणियों की यह विशेषता है कि यद्यपि अन्य गुणों में इन का स्तन धारियों के साथ पूरा मेल है तथापि सतति निर्माण होने में उन से इन का बडा भेद है । साप वा पक्षिया की भाति ये अडे देते हैं, इन की सतति जेरज नहीं है परन्तु बडी आश्चर्य की बात यह है कि साप वा पक्षिया की भाति अडो को सेहने के लिये इन को एक जगह बैठना नहीं पडता । ओपोसम तथा केंगरू की भाति इन के उदर के नीचे एक थैली सी बन जाती है जिस में ये अपने अडो को रख देते हैं और वहा

(चित्र सख्या ३ क)

"कगारू"

(पृ ६० के सम्मुख)

पड़े पड़े शरीर की उष्णता से वे सेहे जाते है और वहीं फूट कर बच्चे भी थैली में पलते हैं। संक्षेप से स्तन धारियों में कई तो पूर्णतया जेरज हैं, कैंगरू की भांति कई अर्ध जेरज हैं, और डकबिल की भांति कई अर्ध जेरज भी नहीं हैं परन्तु अंडज है। इस प्रकार ये शनैः शनैः होने वाले विकास के कैसे सुन्दर और रोचक प्रमाण है। कैंगरू और डकबिल के वर्णन को पढ़ कर इन को पक्षियों और स्तन-धारियों के मध्यवर्ति प्राणी कहना क्या युक्ति संगत नहीं ?

अब यदि स्तनधारियों का एक समूह की दृष्टि से विचार किया जाय तो हम क्या देखते हैं ? हम को यह ज्ञात होता है कि जिन प्राणियों का हम ने अन्तिम वर्णन किया है उन की रचना ऐसी स्पष्ट नहीं है जिस से हम उन को स्तनधारी श्रेणी के ही प्राणी समझ सकें। इन अंडे देने वाले तथा थैली धारण करने वाले प्राणियों को छोड़ कर अन्य प्राणियों में हम यह देख सकते हैं कि उन में भिन्न भिन्न प्रकार की उन्नति होती जा रही है और विकास की भिन्न २ मात्रा तक यह उन्नति पहुंची हुई है।

इन स्तनधारियों का इतिहास हमें यन्त्रों का स्मरण कराता है। यन्त्रों के साथ प्राणियों की प्रारम्भ में ही हमने जो तुलना की थी वह तुलना इन के इतिहास से और भी अधिक पुष्ट हो जाती है। जिस प्रकार समय समय पर होने वाले परिवर्तनों से हमको यन्त्रों के विकास का परिचय होता है उसी प्रकार इन प्राणियों में भी समय समय तथा आवश्यकता के अनुसार होने वाले परिवर्तनों से हमको इन के विकास का बोध होता है। यन्त्रों की न्याई इन के प्रारम्भिक पूर्वज एक ही प्रकार के प्राणी होते हुए भी बदलने वाली परिस्थिति के अनुकूल इन प्राणियों के आकार अपने पूर्वजों से भिन्न २ होते गये।

व्हेल के अवशिष्ट अवयवो का हमने जो वर्णन किया है उस से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है ।

पृष्ठवंशधारियो का दूसरा वर्ग पक्षियो का है । इन पक्षियो की शरीर रचना देखी जाय और उन शरीर रचनाओं का परस्पर मिलान किया जाय तो इन में उसी प्रकार के परस्पर सम्बन्ध प्रतीत होते हैं जिस प्रकार के सम्बन्ध चतुष्पाद प्राणियों की परस्पर तुलना करने से हमको प्रतीत हुए हैं। बगुल तथा गिद्ध की तुलना कीजिये । तुलना किये जाने पर हम देखते हैं कि बगुले के पाद लम्बे होते हैं और उस के पैरो की अगुलियों का विस्तार बहुत है जिस से वह दलदल के स्थानो में अपना शरीर पानी पर रख कर अच्छे प्रकार चल सक्ता है । उस की चोंच लम्बी और सडासी के आकार की मछलिया को पकड़ने के निमित्त अत्युपयोगी होती है । दूसरी ओर गिद्ध की क्या अवस्था है ? उस की चोच छोटी और मास फाडने के लिये नीचे की ओर अकड़े की न्याई अच्छी मुड़ी होती है, इस के पैर छोटे और पैरो की अगुलिया काटो के सदृश मुड़ी होती हैं जिन में वह शिकार को फसा कर अच्छे प्रकार उठा ले जा सक्ता है । बत्तख, मुर्गाबी लम्बढींग, आदि तैरने वाले पक्षियों के पैरों की अवस्था देखी जाय तो उन की रचना साधारणतया बगुले और गिद्ध के पैरों की जैसी ही है । अन्तर इतना ही है कि लम्बाई में उन के पैर छोटे होते हैं और पैरों की अगुलिया पृथक नहीं रहतीं परन्तु एक प्रकार की झिल्ली से आपस में मिली हुई होती हैं । इन अगुलियों का इस प्रकार चप्पु के समान बन जाने का कारण भी स्पष्ट है । इन प्राणियों का जीवन अधिक्तर जल पर तैर कर व्यतीत होता है और अगुलिया चप्पुदार

सकता है । पानी पर

तैरने में इन चप्पुदार अंगुलियों से इन को बड़ी सहायता मिलती है। पक्षियों के पंखों का विचार करने से प्रतीत होगा कि उनके ये अवयव परिस्थिति को पूर्णतया अनुकूल हैं। देखिए कौआ, चिड़िया, तोता, कोयल, चील, आदि अपने पंखों द्वारा वायु में कैसे अच्छे प्रकार उड़ सकते हैं। इन का जीवन ही ऐसा है कि यदि इन के पंखों में उड़ने की शक्ति न हो तो इन का अपने शत्रुओं से बड़ी कठिनता से छुटकारा होगा। जिन के पंख अब तक पूर्णतया वृद्धि को प्राप्त नहीं हुए होते, जिन को माताएं उड़ने का शनैः शनैः अभ्यास कराती रहती हैं ऐसे चिड़ियों के अथवा अन्य पक्षियों के बच्चों को दाव लगने पर कौआ कैसी निर्दयता से मारता है; यदि उन बच्चों के अच्छे पंख होते तो वे कौवे के हाथ कभी न आते। गृध्र, मयूर, मुर्गी आदि पक्षियों की अन्य पक्षियों के साथ तुलना करने पर हम यह देखते हैं कि ये पक्षी अन्य पक्षियों के समान तेज नहीं उड़ सकते यद्यपि इन के पंख अच्छे हृष्ट पुष्ट प्रतीत होते हैं। पंख अच्छे हृष्ट पुष्ट होने पर भी तेज उड़ने में असमर्थ होने का कारण यह है कि सदियों से दूर दूर और शीघ्र उड़ जाने का इन्हें अभ्यास नहीं रहा। अन्य उड़ने वाले पक्षियों से इन को भय बहुत कम रहा; इन को अपनी रक्षा के लिये केवल मनुष्यों और ज़मीन पर रहने वाले चतुष्पादों से ही अपना बचाव करना पड़ता है और इन से अपना बचाव करने लायक थोड़ी सी शक्ति यदि इन के पंखों में हो तो यह इन के लिये पर्याप्त होती है। अभ्यास न रहने से पंखों की उड़ने की शक्ति पूर्णतया कैसी नष्ट हो जाती है इसका परिचय पेंग्विन (Penguin) पक्षी का हाल जानने से अच्छी प्रकार हम को विदित हो जाता है।

पेंग्विन नाम का पक्षी आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका,

अफ्रीका और न्यूजीलेण्ड के समुद्री किनारे पर रहता है और सदियों से वहां हीं रहता आया है । वहां पंख वाला कोई अन्य जन्तु नहीं है जिस से पेंग्विन को अपनी रक्षा करनी पड़ती है । इसका परिणाम यह हुआ है कि इनके पंखों का उड़ने का अभ्यास टूट गया है और पंखों से उड़ने का सामर्थ्य विलकुल जाता रहा है। बात यहीं तक ही नहीं रही प्रत्युत इस प्रकार के जीवन का प्रभाव इस से भी दूर तक पहुंच गया है । पंखों की उड़ने की शक्ति के स्थान पर उनमें चप्पुओं के समान पानी काटने की शक्ति आगई है। साधारण तौर पर डुबकी लगाने वाले पक्षी जब पानी के अन्दर जाते है तब अपने पंख अपने शरीर के साथ लगाकर पैरों द्वारा पानी को काट लेते है; पेंग्विन पक्षी तो अपने भक्ष्य की खोज में जब पानी में बहुत गहरा चला जाता है तब अपने पंखों द्वारा पानी को चप्पु के समान काटता हुआ चला जाता है। चित्र में इस के पंख देखिए; उनकी आकृति विलकुल चप्पुओं की न्याई दीखती है । यद्यपि पंखों की अस्थियां और अन्तरीय बनावट अन्य पक्षियों के पंखों के समान है तथापि अपनी परिस्थिति के अनुसार कार्य करने के लिये इनकी आकृति कैसी विचित्र वन गई है! *परिस्थिति का कितना विलक्षण प्रभाव है यह इस पक्षी के पंखों के* परिवर्तन से बहुत स्पष्ट प्रतीत होता है। पेंग्विन को छोड़ शतुर्मुर्ग के पंखों की भी इसी प्रकार की अवस्था है ।

शतुर्मुर्ग आफ्रीका का पक्षी है और पक्षियों में इस से बड़ा कोई पक्षी नहीं । इसकी ऊँचाई साधारणतया ८ फुट होती है और तोल में यह लगभग ४ मन भारी होता है। इस के पंखों में उड़ने की शक्ति बिलकुल नहीं होती; अपने पंखों द्वारा ज़मीनसे थोड़ासा ऊपर भी यह उड़ नहीं सकता । इस का कारण स्पष्ट है—अपनी रक्षा करने के लिये इस को अन्य पक्षियों से बचने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अन्य

(चित्र संख्या ४)

"पेंग्विन" पक्षी ।

(पृ. ६४ के सम्मुख)
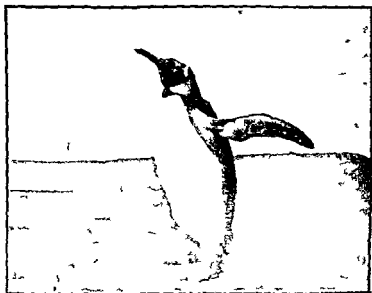
पक्षी ऐसे बलिष्ट पक्षी का कुछ भी कर नहीं सकते, अर्थात् हवा में उड़ने का इसको प्रयोजन न रहा और इसके पंखों की वह शक्ति नष्टप्राय हुई।

पक्षियों के सम्बन्ध का ऊपर का विवेचन स्पष्टतया बताता है कि पक्षियों के आपस के सम्बन्ध और आपस का भेद वैसा ही है जैसा स्तनधारियों में हमको प्रतीत हुआ।

पृष्ठ वंश धारियों का तीसरा वर्ग सर्पण शील प्राणियों का है। स्तनधारियों और पक्षियों के वर्ग में जिस प्रकार हमने देखा कि प्रत्येक वर्ग के प्रारंभिक प्राणी समान प्रकार के होते हैं और परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार उन प्राणियों की संतति भिन्न भिन्न प्रकार की हो जाती है उसी प्रकार इस वर्ग की भी व्यवस्था है। इस वर्ग में गोह, सांप, अजगर, नाक्रु, मगरमच्छ, कच्छुआ इत्यादि प्राणी सम्मिलित हैं। इनमें से गोह के विषय में वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि यह प्राणी इस वर्ग के प्रारंभिक प्राणी के बहुत निकटवर्ती है; गोह के अगले और पिछले पैर तथा उन पर की अंगुलियां भी स्पष्ट स्पष्ट दीखती हैं। गोह की इतनी भिन्न २ जातियां हैं और उन में इतनी भिन्नताएं हैं कि उनसे हमें विकास के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। देखिए, इनकी एक जाति ऐसी है कि उसके प्राणियों के अगले पैर बिलकुल नहीं हैं; दूसरी एक जाति ऐसी है कि उसमें अगले और पिछले पैरों का भी अभाव है। गोह को छोड़कर मन को आकर्षित करने वाला इस वर्ग का साप है। जो साम्य सील तथा ह्वेल का अपने वर्ग के अन्य प्राणियों के साथ है वैसा ही साम्य साप का सर्प वर्ग के अन्य प्राणियों के साथ है। इस वर्ग का और एक प्राणी मगरमच्छ है; मगरमच्छ और गोह में बहुत भेद नहीं है। इसी वर्ग का और एक अन्य प्राणी कछुआ है; यह भी बड़ा मनोरंजक तथा

विकास का एक खासा दृष्टांत है। भारत वर्ष में जो कछुए दीख प-ड़ते हैं उनका अन्यान्य देशों के कच्छुओं के साथ मिलान किया जाय तो उन में परिवर्त्तनों की एक अच्छी सीढ़ी दीख पड़ती है। कछुओं की विशेषता उनकी शरीर रक्षक ढालमें है। स्पेन, आस्ट्रेलिया, और अमरिकामें जो कछुए होते है उनमें से कईयों की निचली ढाल नहीं होती, कईयों की ऊपर वाली ढाल बहुत नर्म होती है, कईयों की ऊपरली और निचली ढाल केवल एक लचक दार चमड़ी से मिली रहती है। भारतवर्ष के कछुओं के तो ये सब भाग पूर्णता को प्राप्त हुए है। क्या यह शनैः शनैः उन्नति का उद्बोध कराने वाला अच्छा उदाहरण नहीं है?

पृष्ठ वंश धारियों का चौथा "मंडूक" वर्ग है। इस वर्ग में मंडूक और आग का कीड़ा (Salamander) ये दो प्राणी विशेष प्रसिद्ध हैं। अंडों में से निकल कर पूर्णता को प्राप्त होने तक मंडूकों में जो परिवर्तन होते हैं उन का इतिहास देखने से हम को भले प्रकार ज्ञात होता है कि एक वर्ग के प्राणी दूसरे वर्ग के प्राणियों में किस प्रकार परिवर्तित होते हैं। बाल्यावस्था में मंडूकों का मच्छलियों के साथ पूरा पूरा साम्य रहता है; जैसे जैसे ये बढ़ते हैं वैसे वैसे मच्छली वर्ग के विशेष अवयव उन में से नष्ट हो-कर मंडूक वर्ग के अवयव उन में उत्पन्न हो जाते हैं। नीचे दिए हुए विस्तृत वर्णन से पाठकों को इस बात का ठीक ठीक बोध होगा।

मंडूकों की वृद्धि का इतिहासः—मंडूकों की सारी बाल्यावस्था जल में गुजरती है; मंडूकी जल में अंडे देती है और वहीं फूट कर उन में से बच्चे भी निकल आते हैं। इस अवस्था में इन की बाह्य आकृति पूर्णतया मच्छली की आकृति के समान होती है और अन्दर की इन्द्रियें भी पूरी पूरी

मच्छली की इन्द्रियों के समान होती हैं। मच्छलियों की न्याई इन की श्वासोच्छ्वास की इन्द्रिय गलफड़ें (Gills)ही होते हैं। मेंडूकों की न्याई अभी तक इन में फेफड़ा या फुप्फुसों (Lungs) का नामोनिशान भी दिखाई नहीं देता; मच्छलियों की भांति इन गलफड़ों के द्वारा ही पानी में से घुली हुई हवा पृथक करके ये श्वासोच्छ्वास करते हैं; खाली वायु में ये श्वासोच्छ्वास नहीं कर सकते। पानी में से निकाल कर ज़मीन पर इन को रख दिया जाव तो मच्छलियों की न्याई ये तड़फ तड़फ कर मर जाते हैं। मच्छलियों के समान इन की पूंछ निकली हुई होती है। मंडूकों के समान इन के अगले और पिछले पैर नहीं होते परन्तु मच्छलियों के समान इन के पर (Fins) निकले हुए होते हैं। जलचर मच्छली में और इन में पूर्ण समानता रहती है।

इस अवस्था से पूर्ण चढ़े हुए मंडूक की अवस्था को पहुंचने तक इन में बहुत से परिवर्त्तन हो जाते हैं। प्रथम इन के गले के पास के गलफड़ों के छिद्र बन्द होने लगते हैं; पिछले पैर शरीर से बाहिर निकलने लग जाते हैं और कुछ काल के पश्चात् अगले पैर भी निकलने लग जाते हैं। पूंछ का शरीर से लोप हो जाता है और धीरे धीरे हवा में श्वासोच्छ्वास करने के लिये इन के शरीर के भीतर फेंफड़े बनने आरम्भ हो जाते हैं। इस प्रकार बनते बनते मछली का पूर्व रूप छोड़ कर ये अपनी जाति का रूप धारण करते हैं *।

आग का कीड़ा (Salamander) और मंडूक का आपस में इतना ही अन्तर है कि आग के कीड़े की पूंछ होती है और पिछले पैर मंडूक के पिछले पैरों के समान बहुत अच्छे प्रकार बढ़े हुए नहीं होते।

---

* आगे शरीर संवर्धन शास्त्र में इसी बात का संपूर्ण चित्र सहित दिया है।

पृष्ठ वंश धारियों का पांचवां और सब से निचला वर्ग मच्छलियों का है । मच्छलियों की बहुतसी जातियां तथा उपजातिया है परंतु हम उनका सविस्तर वर्णन करना यहां आवश्यक नहीं समझते; कारण यह है कि हम भारतवासी मच्छलियों की विविध जाति उपजातियों से परिचित नहीं है; अत: बहुत सम्भावना यह है कि हमारे पाठकों में से बहुतों को इस प्रकार का वर्णन अरोचक तथा रूखा प्रतीत होगा । मच्छलियों के संबंध में जितना कुछ ज्ञात किया गया है उसका सार यह है कि इस वर्ग में भी ऐसे पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते है जिन से यह सिद्ध होता है कि वे प्राणी जो प्रारम्भ में सम थे परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार बहुत भिन्न भिन्न होते गये ।

अब तक रीड की हड्डी वाले जन्तुओं की संक्षेप में समालोचना हुई । उससे यह ज्ञात हुआ कि प्राणियों के आपस के संबंध बहुत गूढ़ तथा व्यापक हैं । जिस प्रकार वृक्ष का एक मुख्य तना होता है, उस तने से शाखाएँ, शाखाओं से उपशाखाएं तथा उपशाखाओं से भी उपउपशाखाएँ और अन्त में उनसे भी फूल तथा पत्ते निकलते है उस प्रकार प्राणियों की बात है । प्रारम्भ में एक प्रकार के प्राणी होते हैं और पश्चात् परिस्थिति तथा आवश्यकता के अनुसार उनके वंशजों में परिवर्तन होकर भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी बन जाते है; और जिस प्रकार भिन्न भिन्न शाखाओं तथा उपशाखाओं का जीवनाधार तथा जीवन के तत्व एक ही हैं उसी प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों के जीवन के तत्व एक ही होते है ।

पृष्ठवंशधारियों को छोड़कर अब आगे हम पृष्ठ वंश विहीन प्राणियों की भी बहुत संक्षेप से समालोचना करेंगे। ये प्राणी प्राय: छोटे छोटे होते है और जहां तक हो सके इनका प्रयत्न दिन में पृथ्वी के गर्भ में [illegible] हमारा इनके साथ

उतना परिचय नहीं जितना कि रीढ की अस्थि वाले प्राणियों से है। इस में कोई सन्देह नहीं कि इन सूक्ष्म सूक्ष्म प्राणियों के सम्बन्ध का विचार, वैज्ञानिकों को छोड अन्य संसारी मनुष्यों के लिये बहुत मनोरंजक नहीं हो सकता, तथापि, विकास के तत्वों को जानने के लिये यह आवश्यक है कि हम इन के विषय में अपरिचित न रहें।

विकासवाद को प्रामाणिक ठहराने के लिये इन प्राणियों से हमें बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है और सम्भव है कि इन प्राणियों के द्वारा हम अधिक दृढ़ता पूर्वक यह बता सकें कि परिस्थिति के प्रभाव से प्राणियों की भिन्नता किस प्रकार होती है।

अस्थि रहित प्राणी कौन से हैं जिनसे हम परिचित हैं? इस प्रश्नका उत्तर जब हम सोचने लगते हैं तब हमारे मनमें साधारणतया कीड़ों का विचार उठता है और हमारी दृष्टि के सामने कानखजूरे केंचुए (Earthworms) तथा अन्य रींगने वाले कीटे उपस्थित होते हैं। इन कीडों की रचना को सूक्ष्म रीति से देखने पर यह ज्ञात होता है कि एक ही प्रकार के बहुत से जोडों (Joints) के एकत्रित होने से इनका शरीर बना है। कानखजूरे में यह बात बहुत अच्छे प्रकार स्पष्टतया दीखती है। इसका शरीर एक ही प्रकार के बहुत जोडों से बना है और इन जोडों में से प्रत्येक जोड में अन्ननालिका (Alimentry Canal) का एक टुकडा, मज्जातन्तु के दो खण्ड, और मल त्याग करने के लिये दो नालिकाएं तथा थोडीसी रक्तवाहिनी नालिकाएं होती हैं। प्रत्येक जोड के साथ दोनों ओर एक एक पैर लगा हुआ है।

बिच्छू को तो सबने ही देखा होगा और दौर्भाग्यवश कइयों को इसके तीक्ष्ण डंक द्वारा दुःसह कष्ट भी उठाना पडा होगा। बिच्छू का शरीर भी कानखजूरे की न्याईं समान प्रकार के जोडों के एकत्रित

होने से बना हुआ है; भेद केवल इतना ही है कि बिच्छू के कुछ जोड़ उतने स्पष्ट नहीं दीखते जितने कि कानखजूरे के दृष्टिगोचर होते हैं; जैसे, बिच्छू के मुख और छाती की ओर के जोड़ आपस में पूरे पूरे मिले होते है परन्तु पूंछ के जोड़ बिलकुल स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसमें और कानखजूरा में एक और भी अन्तर है; कानखजूरे के समान इसके प्रत्येक जोड़ के साथ पैर नहीं लगे होते । पैरों की संख्या बहुत कम होती है; प्रत्येक ओर केवल चार ही पैर होते हैं, यद्यपि पैरों की संख्या की यह कमी दूसरी ओर पूरी होजाती है । जितने पैर हैं उनमें विशिष्ठ प्रकार के साधन लगे हुए हैं, मुख के पास के पैर तो संड़ासी के आकार के होते है, और पूंछ के साथ एक विषसे भरा हुआ कांटे के समान तीक्ष्ण डंक भी लगा होता है । पूंछ और डंक के सम्बन्ध में मकड़ी का बिच्छू से थोड़ा ही भेद है; बाकी दोनों की दशा साधारणतया समान है । मकड़ी की पूंछ नहीं होती, न ही डंक होता है, परन्तु इस के बदले में अपने भोजनार्थ जाल फैलाने की और शिकार के जाल में फस जाने पर अपने मुख में से और तन्तु निकाल कर उसको बान्ध कर घसीट ले जाने की विचित्र शक्ति मकड़ी में पाई जाती है ।

तीतरी, भौरा, मक्खी, टिड्डा, ततय्या आदि प्रथम तो कानखजूरा बिच्छू और मकड़ी से बहुत भिन्न प्रतीत होते हैं परन्तु तनिक विचार करने पर यह अवश्य समझ में आजाता है कि इन में उनसे कोई विशेष भेद नहीं है । जोड़ों के विषय में तो ये और वे एक जैसे है । तीतरियों और टिड्डों के शरीर जोड़ों से युक्त होते है ; इन में विशेषता यह है कि इन के शरीर के तीन भाग (१) मुख, (२) छाती और (३) पेट-- बहुत स्पष्ट हैं; मुख का पूर्णतया अवलोकन करने से मूंछें कल्ले आदि टटोलने के अवयव पाये जाते

हैं; छाती के साथ दोनों ओर तीन तीन पैर और कभी कभी पंख लगे होते हैं; और पेट का भाग बिलकुल खाली रहता है, उस के साथ कोई पुंछाला (Appendage) लगा हुआ नहीं होता है। इस प्रकार चाहे किन्हीं भी कीड़ों की जातियों पर विचार किया जाय तो प्रत्येक में थोड़ी न थोड़ी विशेषता पाये जाने पर भी इस बात का हम को पूरा बोध हो जायगा कि इन जातियों में से प्रत्येक जाति की शरीर रचना कानखजूरों की शरीररचना के समान है वा, यह न हो तो इतना तो अवश्य है कि उन की शरीर की रचना के आधार पर न्यूनाधिकता करके बनाई गई है।

कानखजूरे गिंडोये, पेट के कीड़े, तीतरियां, टिड्डे आदि को छोड़ जब हम और भी निचली श्रेणी के कीड़ों का विचार करते हैं तो ऐसी निचली जाति के कीड़े भी हमारे देखे हुए हैं। नदियों में प्रायः ऐसे कीड़े पत्थरों के साथ चिपके हुए दिखाई देते हैं। ये बहुत छोटे छोटे और बेलन के आकार के होते हैं। इन का यह बेलन के आकार का शरीर एक ओर से खुला होता है और जिस ओर से वह पत्थर के साथ चिमड़ा होता है उस ओर से बन्द होता है। ये समूहों में रहते हैं और पत्थरों से इतनी दृढ़ता पूर्वक चिपके होते हैं कि बहुत तेज चलने वाले पानी से भी ये नहीं हिलते। जिन्होंने इन को कभी देखा है वे जानते होंगे कि यदि इन को हाथ लगाया जाय तो ये अपने छोटे छोटे झिल्लीदार टटोलने वाले मुख के समीप के अवयवों को एक साथ इकट्ठा कर लेते हैं तथा स्वयं भी सुकड़ जाते हैं। इन प्राणियों की शरीररचना ऊंचे दर्जे के प्राणियों की शरीर रचना के समान नहीं होती। छाती, पेट, पैर आदि पृथक् पृथक् प्रकार के अवयव इन के शरीर में नहीं होते, प्रत्युत इन का शरीर दो तहों से-एक अन्दर की और दूसरी बाहर की-बना हुआ होता

है। प्रत्येक तह बहुत से कोष्ठों की बनी होती है; इन दो तहों में एक खोखली जगह बनती है जिस को शरीर गर्त (Body Cavity) कहते है। इसी में अन्न को जज्ब करने के तथा अन्य शरीरपोषण के कार्य होते हैं। पेट, आमाशय, यकृत आदि सब कुछ यही है; अपने टटोलने वाले अवयवों (Tentacles) द्वारा पकड़ा हुआ भोजन भी इसी में डाला जाता है और यहा ही उस का रस बनता है। इन प्राणियों की शरीर की बनावट दो दृष्टान्तो द्वारा हम अधिक स्पष्ट करना चाहते हैं। मानिए कि एक ओर से खुली हुई थैली हमारे पास है; ऐसी थैली को, जिस ओर से वह खुली है उस ओर से अन्दर की ओर यदि आधे तक मोड़ दिया जाय तो जिस प्रकार उस की एक तह बाहर की ओर एक अन्दर की ओर बन जाती है और अन्दर का स्थान खुला रहता है, उस प्रकार इन के शरीर की अवस्था है। दवात के दृष्टान्त से यह और भी अधिक स्पष्ट होता है: कई काच की दवात ऐसी होती है कि उन को उलटाने पर भी उन के अन्दर की स्याही गिरने नहीं पाती; इन दवातों में जिस प्रकार बाहर की तथा भीतर की ओर तहें होती हैं और शेष स्थान रिक्त रहता है वैसी इन प्राणियों की शरीर की बनावट है। इन का नाम हाईड्रा (Hydra) है।

हाईड्रा का उपरोक्त संक्षिप्त वर्णन पढ़ कर हमारे पाठकों का शायद यह अनुमान हो कि इन प्राणियों की रचना अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है परन्तु कुछ ही सूक्ष्म विचार से इन में और उच्च प्राणियों में बहुत सी समानताएं तीत होती हैं। अन्य उच्च दर्जे के प्राणियों की भांति ये भी जीवन के लिये आवश्यक आठ प्रकार के कार्यों को पूर्ण करते हैं। और जैसे उच्च प्राणियों के भोजन का रस शरीर की खोखली जगह-पेट-में बनता है वैसे ही इन का

भोजन भी इन के शरीर की खोखली जगह (Body Cavity) में जाकर रस में परिणत हो जाता है । इन में और अन्य प्राणियों में और भी एक बहु मूल्य की समानता यह है कि जिस प्रकार अन्य प्राणियों का शरीर बीजकोष्ठों के समूहों से बना होता है उसी प्रकार इन का शरीर भी बीज कोठों के समूह से बना होता है । इन निचले दर्जे के प्राणियों में अत्यन्त सादा प्राणी "अमीबा" (Amœba) है । यह प्राणी बहुत ही सूक्ष्म, एक कोष्ठमय, और जल में रहने वाला है; बिना सूक्ष्म दर्शक यन्त्र की सहायता के हम इसको देख नहीं सकते। इसका कोष्ठ प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) या
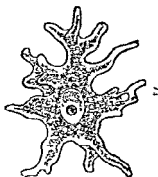
"अमीबा"
वास्तविक परिमाण से अत्यन्त अधिक बड़ा
चित्र सं० ५

चेतनोत्पादक तरल पदार्थ का एक अति सूक्ष्म पिंड है जिसका परिमाण सुई की नोक से भी अधिक सूक्ष्म होता है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा "अमीबा"

यह अपने भक्ष्य के पास पहुंच जाता है । अपने भक्ष्य को अपने अन्दर लेने की इसकी विचित्र रीति है; भक्ष्य के पास पहुंचने पर यह अपने शरीर के एक भाग से उसे ढांक लेता है, तत्काल इसके शरीरमें एक छिद्र बन पाता है और उसके द्वारा उसे अपने शरीर के अन्दर ले जाता है । अमीबा के मुख आंख, तथा नाकादि कोई भी अवयव नहीं होते । इसका सब कुछ प्रोटोप्लाज्म में सूक्ष्म पिंड के अन्दर सम्मिलित रहता है, यही अमीबा के जीवन का आधार है । इसके जीवन को देखकर हमारे मन में बहुतसी आशंकाएं उठती हैं; परन्तु यदि हम अधिक विचारें तो इन शंकाओं का भी समाधान होना कोई कठिन बात नहीं है । हाइड्रा के समान अमीबा भी उन आठ प्रकार के कार्य्यों को करता है और जिस कोष्ठका यह बना हुआ है उसी प्रकार के कोष्ठ समूहों से अन्य प्राणियों के शरीर बने हुए होते हैं; तथा जिस प्रकार के प्रोटोप्लाज्म का यह बना है अन्य प्राणी भी उसी प्रकार के प्रोटोप्लाज्म से बने हुए हैं अमीबा और अन्य प्राणियों में यदि भेद है तो केवल इतना कि अन्य प्राणियों के शरीर बहुत विस्तृत तथा असंख्य कोष्ठ समूहों से बने हुए हैं और अमीबा का शरीर केवल एक कोष्ठ से बना हुआ है । प्रोटोप्लाज्म की समानता दोनों में है और प्रोटोप्लाज्म के जो कार्य्य निश्चित हैं वे दोनों में एक ही हैं ।

अब तक कुल प्राणियों का सामूहिक दृष्टि से विचार हुआ; हाथी से लेकर "अमीबा" तक साधारणतया जितने मुख्य प्राणी है उनका वर्णन देकर उनके पारस्परिक सम्बन्धों का तुलनादृष्टि से भी हमने विचार किया । यदि आलंकारिक भाषा में कहना चाहें तो हम यूं कह सकते हैं कि प्राणियों का यह जो एक वृक्ष है उसकी चोटी से उतरते उतरते हम उसके तले तक आ पहुंचे हैं और अब हम यदि चाहें तो वृक्ष के सिरे से उसके तले तक उतरते हुए विकास के जितने प्रमाण मिले हुए

है उनकी समालोचना करके उनको इकट्ठा कर सकते है। जिस प्रकार एक ही वृक्ष की भिन्न २ शाखाओं में से कई शाखाए तले के पास, कई मध्य में, और कई सिरे पर होती है उसी प्रकार अब तक भिन्न भिन्न प्राणियों के समूहों के हमने जो उदाहरण दिये हैं उन में से कई-यो का स्थान नीचे, कईयों का मध्य में, और कईयों का सबसे ऊपर के दर्जे का है। कुल प्राणियों का हमने जो वर्गीकरण किया उसको यदि इकट्ठा विचार करें तो हम देखते हैं कि इस वर्गीकरण में सादे से सादे अमीबा से लेकर सकीर्णावयव (Complex) वाले हाथी तक सब प्राणियों का अंतर्भाव हुआ है। इन प्राणियों को यदि उनके अपने शरीर रचना के अनुसार रख दिया जाय तो प्रथम अमीबा, फिर हैड्रा, फिर कानखजूरे की जाति के कृमि, और तत्पश्चात् उन से भी अधिक सकीर्ण रचना के कीड़े, मकोड़े तथा केकड़े आदि प्राणियों का स्थान है। इन सब के पश्चात् रीढ की हड्डी वाले प्राणी हैं। जैसा कि हम बतला चुके हैं इन रीढ की हड्डी वाले प्राणियों के कई वर्ग हैं। मछली वर्ग से लेकर सर्प और पक्षियों में से होते हुए स्तनधारी चौपायों तक इनका विस्तार है। इन प्राणियों के शरीर की रचना के सम्बन्ध में हमनें यह नियम दिखाया है कि उच्च तथा निचले प्राणियों की रचना के स्थूल नियम एक से हैं, क्योंकि नीचे और ऊपर के प्राणियों की शरीर रचना का आधार एक ही दीखता है। ऊपर की श्रेणियों में जो भिन्नताए दीखती हैं उन के विषय में हम यह कह सकते हैं कि ये भिन्नताए प्राणियों मे विकास के कारण आई और विकास द्वारा ही उनका अस्तित्व संतोषजनक रीति से बतलाया जा सकता है। अवशिष्टा-वयवों का हमने पहले वर्णन किया है। हमारी सम्मति में ये अव-शिष्टावयव ही प्राणियों के प्राकृतिक परिवर्त्तनों के तथा प्राणियों की भिन्न भिन्न जातियों के पर्याप्त और व्यक्त प्रमाण है। हमने अवशिष्टावयवों

के बहुत थोडे उदाहरण दिये है, परन्तु आवश्यकता पर प्रत्येक वर्ग के विद्यमान प्राणियों में से इन अवशिष्टावयवों के असंख्य प्रमाण दिये जा सकते है। इस सबन्ध में वैज्ञानिकों की यह कल्पना है कि आज कल के विद्यमान प्राणियों के पूर्वजों को इन अवयवों से बहुत भारी लाभ होते थे परन्तु समय और परिस्थिति के बदल जाने से वर्तमान समय के प्राणियों को आजकल इनसे कुछ भी लाभ नहीं अत इन अवयवों की वर्त्तमान समय मे बिगडी हुई दशा पाई जाती है। अन्य किसी कल्पना पर इन अवयवों का कुछ भी अर्थ नहीं होता। यदि हम यह कल्पित करे कि इन अवयवों को विशेष प्रयोजनार्थ निर्माण किया था तो वह प्रयोजन कुछ भी प्रतीत नहीं होता, इन अवयवों की विद्यमानता या अस्तित्व निर्हेतुक प्रतीत होता है। यदि बुद्धि को प्रयोग में लाना उचित है, यदि युक्तियुक्त विचार करने के लिये हम उद्यत हैं, तो यही कहना पडेगा कि ये अवशिष्टावयव विकास के स्पष्ट चिन्ह है।

जिस प्रकार एक मध्यवर्ती तना, उस तने से भिन्न भिन्न उचाई पर निकली हुई शाखाएँ, उन शाखाओं से भिन्न अतर पर निकली हुई उपशाखाएँ, और उन उपशाखाओं के भिन्न भिन्न स्थान पर लगे हुए पत्ते, इन सब के मेल से एक वृक्ष बनता है उसी प्रकार जीवन का मूलाधार प्रोटोप्लाज्म रूपी एक मुख्य तना, उससे भिन्न भिन्न उचाई पर निकले हुए वर्ग, जातिया, उपजातिया, उनकी शाखाए, उपशाखाएँ, और शाखाओं और उपशाखाओं से भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी इन सब का मेल प्राणिसमूह है। अपने अपने चिन्ह पीछे छोडकर पत्ते गिर जाते हैं, उपशाखाएँ टूट जाती है, शाखाओं तक का भी बडी बडी आंधियों से नाश हो जाता है परन्तु अवशिष्ट वृक्ष फिर भी वृक्ष के नाम खडा रह जाता है। उसी प्रकार प्राणी भी

अपने विशेष चिन्ह पीछे छोड़कर अपने अस्तित्व से छुट्टी पाते हैं, उपजातियाँ लुप्त हो जाती हैं, जातियाँ भी नष्ट हो जाती हैं, और फिर भी इस संसार चक्र में प्राणियों का वृक्ष स्थिर खड़ा है । इस प्राणी वृक्ष पर किस किस स्थान पर कौन कौनसी शाखाएँ और उपशाखाएं हैं और इन शाखाओं तथा उपशाखाओं पर कहां कहां और कैसे कैसे पत्ते लगे हुए थे और हैं इस की खोज करना विकास-वादी का कर्तव्य है। उसे चाहिए कि वह तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र तथा अन्य शास्त्रों के आधार पर इस वृक्ष के पत्तों, उपशाखाओं तथा उनके स्थानों का निश्चय करे और यह भी बतलावे कि आजकल जहां जहां शाखाएँ उपशाखाएँ और पत्ते स्थित नहीं हैं परन्तु उनके छोड़े हुए चिन्ह ही केवल विद्यमान हैं वहां वहां के शाखाओं उपशाखाओं और पत्तों की अवस्था क्या थी, उन में परिवर्त्तन कब और किस प्रकार हुए थे, और उन परिवर्तनों का आज कल के विद्यमान प्राणियों पर क्या परिणाम हुआ था।

अब तक तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र द्वारा प्राणियों का विवेचन हुआ और भिन्न भिन्न प्राणियों के आपस में गूढ़ संबंध हैं, उन में किसी प्रकार का तात्विक भेद नहीं है, और सब की भूमिका एक ही, है इस बात की पर्याप्त सिद्धि हुई। अब आगे हम तुलनात्मकशरीरसंवर्धन वा गर्भवृद्धि शास्त्र का विचार करेंगे।

शरीर रचना शास्त्र में प्राणियों की रचना के संबन्ध में जो सामान्य तत्व ज्ञात हुए उन के जानने के लिये अनुमान प्रमाण से ही अधिक तर काम लेना पड़ा क्योंकि भिन्न भिन्न प्राणियों की रचना में जो समानताएं तथा भेद प्रतीत हुए उन पर विचार करके शास्त्रीय तथा तार्किक शैली से अनुमान लगा कर ही परिस्थिति के अनुरूप विकास को सिद्ध करना पड़ा; प्रत्यक्ष प्रमाण का वहां कुछ

वश नहीं चला । परन्तु तुलनात्मक शरीर सवर्धन शास्त्र (Science of Compartive Development) जिस का नाम गर्भ वृद्धि शास्त्र (Embryology) भी है, की वात अन्य हे, इस शास्त्रके सामान्य तत्व प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा ज्ञात किये गये है । गर्भ शास्त्र के स्थूल नियमों को वनाने के लिये अनुमान प्रमाण की कुछ भी आवश्यकता नहीं । जो कुछ बातें प्रत्यक्ष देखने में आती है उन से स्थूल तत्व निश्चित किये गये है । इस शास्त्र में बनाये हुये विकास के प्रत्यक्ष प्रमाण हम प्रति दिन देखते हैं और देख सकते हैं । अधिक दूर जाने की क्या आवश्यकता है ? हम स्वय इस प्रकार प्राकृतिक परिवर्तनों से बने हुए हैं । प्रत्येक जीवित पदार्थ का जन्म से लेकर मृत्यु तक का इतिहास देखने से यह ज्ञात होता हे कि "जीवन" परिवर्तनों की एक माला है । हम में से प्रत्येक देखता है कि प्राणियो की उत्पत्ति होती है, उसके पश्चात् वे बढते है, और परिवर्त्तनो द्वारा वाल्यावस्था से पूर्णावस्था को प्राप्त होते है परन्तु हम मे से बहुत थोड़ों ने इस का महत्व विचारा होगा । हम में से प्रत्येक जानता है कि अडे से फूट कर बच्चे के बाहिर निकलने तक, अथवा गर्भावस्था से जन्म होने तक, अडज अथवा गर्भज पिंडों में बहुत परिवर्तन होते है, परन्तु इस पर तो और भी थोडो ने ध्यान दिया होगा । अडावस्था अथवा गर्भावस्था से जन्म होने तक पिंडो के परिवर्तन, वाल्यावस्था से पूर्णावस्था तक के परिवर्तनों की अपेक्षा बहुत अधिक महत्व के हैं । हम आगे चल कर अपने परिचित प्राणियो में थोड़े प्राणियो की गर्भावस्था के परिवर्तनों का इतिहास देंगे जिससे इन बातो का महत्व ठीक प्रकार मनमें जचेगा, परन्तु उसके पूर्व यदि इस बात पर दृढ विश्वास होजाय कि जीवित प्राणियों में परिवर्तन होजाते है, तथा यह बात यथार्थ और स्वाभाविक भी है तो

एतावन्मात्र ही हमारे लिये पर्याप्त भूमिका बन जाती है। प्राणियों में परिवर्तन आ जाते हैं- बाल्यावस्था के और वृद्धावस्था के प्राणियों में बहुत भेद हैं- इस बात को सिद्ध करने के लिये, अथवा राई के समान सूक्ष्म बीज से महान वट वृक्ष कैसे बन जाता है इस बात को सिद्ध करने के लिये हमें किसी बड़े भारी तर्कशास्त्र की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इन बातों को प्रत्यक्ष देखकर हम अनुभव करते हैं। जीवित पदार्थ बढ़ जाते हैं यह कोई असाधारण बात नहीं है; बढ़ना या संवर्धित होजाना जीवित पदार्थों का स्वाभाविक गुण है। यदि साधारण अवस्थाओं में वे न बढ़ें तो वह हमको एक असाधारण या अस्वाभाविक घटना प्रतीत होती है और फिर हम उन रुकावटों पर विचार करने लग जाते हैं जिन के कारण इन की वृद्धि में बाधा आ पड़ी। हम देखते हैं कि पदार्थों की जब वृद्धि होती है तब उस वृद्धि का आवश्यक परिणाम यह होता है कि पदार्थों का प्रारम्भिक रचना में परिवर्तन होकर उसके स्थान पर कोई दूसरी नई रचना आ जाती है; इससे हम यह कह सकते हैं कि परिवर्तनों के होने पर रूप वैचित्र्य या आकृति वैचित्र्य हो जाना एक आवश्यक तथा प्रकृति-सिद्ध बात है। तुलनात्मक शरीर-रचना-शास्त्र से प्राणियों के सम्बन्ध में हमने इसी बात का अनुभव किया है। तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र की यह स्थापना कि प्राणियों के भिन्न भिन्न समूहों की समानताएँ और उनके छोटे छोटे भेदों का युक्ति युक्त कारण विकास के अतिरिक्त अन्य हो नहीं सकता, यद्यपि अनुमान प्रमाण पर निर्भर है तथाऽपि यह अनुमान तर्कशास्त्र की तथा विज्ञान की भी दृष्टि से अखंडनीय है। जैसे कि अभी बताया गया कि गर्भ शास्त्र की स्थापनाओं के लिये अनुमान प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं। जीवित पदार्थों में वास्तविक भेद उत्पन्न होते हैं और यह

घटना स्वाभाविक है, यह सिद्ध करने के लिये हमें तर्कशास्त्र के मुँह की ओर ताकना नहीं पड़ता । स्थान स्थान में हमें यह बात प्रत्यक्ष दिखलाई देती है, हम स्वयं इस बात का अपने आप भी प्रमाण हैं । जब हम यह देखते हैं कि अण्ड को फोड़कर निकला हुआ प्राणी थोड़े से सप्ताहों के पश्चात् बहुत भिन्न रूप धारण करके हरे भर पखों सहित आकाश में सचार करने के लिये उद्यत हो जाता है क्या हम इस बात के मानने में सकोच कर सकते हैं कि सदियों से प्राणियों में जो परिवर्तन होते रहते है उनसे प्राणियों में भिन्न भिन्न प्रकार की जातियों का उत्पन्न होना एक स्वाभाविक बात है ।

जब हम एक बात को मानते हैं तब हमको दूसरी बात से कभी भी इन्कार नहीं करना चाहिये । हमने ऊपर कहा है कि प्राणियों की वृद्धि एक " स्वाभाविक " बात है । यह शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त किया हुआ है जिस अर्थ में हम दैनिक घटनाओं के लिये इसे प्रयुक्त करते हैं । हमारे इस कथन से यह अर्थ नहीं निकलता, और न ही कभी यह अर्थ निकालना चाहिए कि हमारा यह कथन है कि इन घटनाओं के विषय में सब कुछ ज्ञात कर लिया जा सकता है । वैज्ञानिक लोग भले प्रकार जानते हैं कि किसी विषय को पूर्णतया नहीं जाना जा सकता, और न ही किसी पदार्थ का अन्तिम उपयोग ज्ञात किया जा सकता है, पृथ्वी पर वर्षा का हो जाना, तथा वृक्ष से टूट कर फल का पृथ्वी पर गिर जाना, इत्यादि घटनाओं को हम स्वाभाविक घटनाएं कहते है, तथापि क्या हम इन स्वाभाविक घटनाओं के कारण ढूंढने का प्रयत्न नहीं करते ? सूर्य के किरण पृथ्वी पर गिर कर सब पदार्थों को प्रकाशित करते हैं और उनमें शक्ति का सिंचन करते है, तथापि इस घटना को हम बहुत स्वाभाविक मानते हुए भी क्या सूर्य के प्रकाश की गति का वेग ज्ञात करने में

हम प्रयत्न नहीं करते ? । यद्यपि गुरुत्वाकर्षण का और सूर्य के प्रकाश की गति का मूलकारण हम नहीं जानते हैं तथापि यह कहने में हमें किसी प्रकार का कभी सङ्कोच नहीं होता कि पृथिवी पर फल का गिरना और सूर्य से सूर्य किरणों का पृथ्वी पर आना स्वाभाविक है, उसी प्रकार प्राणियों की वृद्धि के विषय में वैज्ञानिक लोग अपनी सम्मति प्रकाशित करते हैं और कहते हैं कि प्राणियों की वृद्धि हो जाना यह एक स्वाभाविक घटना है जिसको हम प्रति दिन प्रत्यक्ष देखते हैं। गुरुत्वाकर्षण के नियम के लिये अथवा सूर्य किरणों की गति के लिये जिस प्रकार हम "अदृष्ट" का आश्रय नहीं लेते उसी प्रकार कतूरे वा गिल्हाडे के जीवन के जो परिवर्तन हैं इन परिवर्तनों के युक्तियुक्त कारण बतलाने के लिये हम "अदृष्ट" का आश्रय लेने की कोई आवश्यकता नहीं। किसी प्राणि की गर्भावस्था का इतिहास पूर्णतया हम नहीं जानते और न ही किसी प्राणी की गर्भावस्था के सब परिवर्तन देखे गए हैं अथवा उन का सार्थक कारण पूर्णतया बतलाया जा सकता है, तथापि इतने पर कोई भी विचारशील पुरुष यह कहने का साहस नहीं करेगा कि जब प्राणियों की वृद्धि होती है तब उन के शारीरिक परिवर्तन नहीं होते। गुरुत्वाकर्षण का, सूर्य किरणों की गति का, अथवा प्राणियों की वृद्धि का आरम्भ किसी प्रकार से भी हुआ हो, इन के अन्तिम उद्देश्य चाहे कुछ हों, तथा इन को और इनके सदृश अन्य घटनाओं को चलाने वाली चाहे कोई "अदृष्ट" वा अतर्क्य शक्ति इन के पीछे कार्य कर रही हो, विज्ञान का इन दार्शनिक प्रश्नों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, वैज्ञानिक विधियों से इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल सकता और इन प्रश्नों पर लगाए हुए दार्शनिकों के एक बड़े बड़े गहन तर्क, विज्ञान की दृष्टि में व्यर्थ से हैं, क्योंकि उन में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है, परन्तु केवल विचारात्मक बातों के आधार

पर सब मंदिर स्थित है; विकास वादियों की अपेक्षा दार्शनिकों की दुनिया न्यारी है । प्राणियोंकी प्रतिदिनकी प्रत्यक्ष घटनाओं पर विकासवादी विचार करते हैं और प्राणियां की जो भिन्न भिन्न जातियां उत्पन्न हुई हैं उन का कारण ढूंढते हैं । इस से आगे विकासवादियों का क्षेत्र ही नहीं है और अन्य तार्किक प्रश्नोंकी गाठों को सुलझाने की विज्ञान को आवश्यकता भी नहीं है ।

गर्भ शास्त्र के तत्वों का परिचित उदाहरणों द्वारा ज्ञान:—गर्भ शास्त्र के मुख्य मुख्य तत्वों को ज्ञात करने के लिये हमें बहुत दूर तक जानेकी आवश्यकता नहीं है। अपने चारों ओर जितने प्राणी हम देखते हैं उनमें से किसी एक प्राणी की अंडज या गर्भज (जेरज) अवस्था से उस का जन्म होने तक का इतिहास यदि हम देखें तो गर्भशास्त्र की मुख्य मुख्य बातों का ज्ञान हो जायगा । यह आवश्यकता नहीं है कि इस बात के लिये हम किसी विशेष प्राणी का ही ख्याल करें। प्रकृति के नियम सब के लिये एक जैसे हैं। उसका किसी के लिये पक्षपात नहीं है और न ही उस पर किसी का प्रभाव जम सकता है। प्रथम मंडूक का उदाहरण लेकर पश्चात् मुरगी के अण्डे की अवस्थाओं पर विचार करने का हमारा संकल्प है । इन उदाहरणों द्वारा गर्भशास्त्र के मुख्य मुख्य तत्वों को जान कर पश्चात् हम अन्य कम परिचित परन्तु अधिक बोधक प्राणियों का विचार कर सकेंगे ।

मण्डूक की प्रारम्भिक अवस्था का इतिहास—१- अण्डजअवस्था से जन्म होने तक और जन्म होनेके पश्चात् पूर्णावस्था को प्राप्त होने तक मंडूकोंका इतिहास बहुत मनोरञ्जक और अर्थपूर्ण है। यदि वर्षा ऋतु में किसी तालाब के किनारे पर जाकर पानी में पड़े हुए पत्तों अथवा उस में पड़ी हुई वृक्षों की टहनियों की हम सूक्ष्म रीतिसे देखभाल करें तो हमको पत्तों पर पड़े हुए या पत्तों

के साथ लगे हुए सरेस जैसे चिकने काले पिंड दीख पड़ेंगे। इन पिंडों के अन्दर सैंकड़ों एककोष्ट वाले छोटे छोटे नर्म गोलक भी दीख पड़ेंगे। ये नर्म गोलक मंडूक के अंडे होते है। इन गोलकों को यदि दिन प्रति दिन देखते रहें तो हम देखेंगे कि इन की वृद्धि होकर ये बड़े बन जाते हैं। तीन या चार दिन जाने के पश्चात इन गोलकों का चपटा सा आकार बन जाता है और उस के एक सिरे से लट्टू के आकार का एक टुकड़ा बाहिर निकल आता है; कुछ दिनों के पश्चात् यह टुकड़ा चपटा बन कर मंडूक की पूंछ में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार बने हुए पूंछ के पर दूसरे सिरे के पास दोनों ओर प्रथम एक एक नाली सी बन जाती है और इन्हीं नालियों का विस्तार होकर गले के समीप, मच्छलियों के गले के पास के गलफड़ों की न्याई, गलफड़ों के दर्जे बन जाते हैं। अब-तक की सब क्रिया अंडे में ही होती रही। इतनी तय्यारी के पश्चात् मेंडक का अंडस्थ बच्चा अंडे को फोड़ने के लिये समर्थ हो जाता है और अब अंडे को फोड़ कर बाहिर निकल कर पानी में रींगने लग जाता है। थोड़े ही अवसर में उस का मुख निकल आता है और आंख, नाक, कानादि सब आवश्यक इन्द्रियां भी शीघ्र ही तय्यार होकर मच्छली के समान मंडूक का बच्चा पानी में स्वतन्त्र रीति से घूमने फिरने लग जाता है। इस प्रकार आरम्भ के एक कोष्ठ मय प्राणी का अब बड़ा रूप बन जाता है जो पहिले विद्यमान न था।

२—अपने गलफड़ों द्वारा मंडूक का बच्चा पानी में रह कर मच्छली की भांति सांस लेता है; पूर्णता को प्राप्त हुए हुए मंडूकों के समान उस के अन्दर फेफड़ों का नाम निशान भी नहीं होता। इन गलफड़ों की रचना और स्वरूप पूर्ण प्रकार से मच्छलियों के

गलफड़ों के समान होता है । इस अवस्था में कुछ महीने रह कर परिपुष्ट हो जाता है । इतनी अवधि में शीत ऋतु का प्रारम्भ हो जाता है जब यह बन्द जगह में छिप कर जाड़ा गुजारता है । वसन्त ऋतु के प्रारम्भ में यह जाग उठता है और इधर उधर घूमने लगता है; परन्तु फिर गर्मियों में जब तालावों का पानी सूखने लग जाता है तब यह कीचड़ के अन्दर घुस कर वर्षा के प्रारम्भ तक वहां दिन काटता है । वर्षा के प्रारम्भ में, जलके पर्याप्त होने के कारण, इस का नया जीवनक्रम प्रारम्भ होकर इस की वृद्धि होने लग जाती है । प्रथम पूंछ के जड़ के पास दो बहुत छोटे पैर निकल आते हैं और बढ़ने लग जाते हैं, और थोड़े दिनों बाद गलफड़ों के समीप दो अगले पैर शरीर से बाहिर फूट निकल आते हैं । पहिले की अपेक्षा अब यह मंडूक का बच्चा पानी के ऊपर बार बार दिखाई देता है । इस के शरीर के अन्दर भी बहुत से परिवर्तन हुए होतेहैं- छाती के दोनों ओर फेफड़े बनने लग जाते हैं, गलेके पास की गलफड़ों की दर्जें बन्द होने लगती है और अन्य अवयवों के भी उचित परिवर्तन हो जाते हैं । इधर पैरों की पर्याप्त वृद्धि होती रहती है तो उधर पूंछ का लोप होने लगता है और एक दिन सचमुच मंडूक के आकार का बनकर यह बच्चा पानी में से उछल कर ज़मीन पर कूद पड़ता है । अब से वह अपने फेफड़ों द्वारा सांस लेना प्रारंभ कर देता है, पानी के अन्दर रहकर सांस लेने की उसे शक्ति नहीं रहती और न ही उसके पास उस प्रकार सांस लेने के कोई साधन भी शेष रहते है । अपने को शत्रु से बचाने के लिये वा अपने भक्ष्य की शिकार के लिये यह यदि पानी में चला जाय तब भी इसे पानी के ऊपर आकर फेंफड़ों द्वारा ही सांस लेना पड़ता है ।

यह इतिहास बताता है कि प्रत्येक प्राणी को अपनी उन्नति का पूरा चक्र घूमना पड़ता है:–बचपन से पूर्णावस्था तक का मंडूकों का यह इतिहास सिद्ध करता है कि यद्यपि मंडूक के बच्चे की बीज परम्परा (Heredity) मच्छलियों से अधिक उच्च दर्जे की है तथापि उसे अपना बचपन का जीवन मच्छलियों के जीवन के समान पूरे प्रकार व्यतीत करना पड़ता है, और शनैः शनैः वृद्धि पाकर जब इसकी बचपन की अवस्था पूर्ण हो जाती है तब इसका मंडूक में पूर्णतया विपर्यास हो जाता है। यह घटना देखकर क्या हम यह परिणाम नहीं निकाल सकते कि मच्छलीवर्ग ही परिवर्तित होकर मंडूकवर्ग में परिणत होजाता है; अर्थात् एक वर्ग से दूसरे वर्ग में परिवर्तन होने के लिये कोई अभेद्य प्रतिबन्ध नहीं है। शरीर रचना शास्त्र में भी हमने इन दो वर्गों के प्राणियों की रचना देखकर इसी प्रकार का अनुमान लगाया था कि मंडूकों का मच्छलियों से विकास हुआ है। अब प्रश्न यह उठता है कि मंडूक वर्ग के प्राणियों को मच्छलीवर्ग में से गुजर कर ही जो मण्डूकावस्था प्राप्त हो जाती है इसका क्या अर्थ है—ऊपर की श्रेणियों को निचली श्रेणियों की अवस्था में से गुजरना पड़ता है यह क्यों। इस विधि को देखकर यह अनुमान तो होता है कि जिस रीति से मंडूकों की उन्नति हुई है और मंडूक जाति का इस संसार में प्रादुर्भाव हुआ है, उसी रीति पर मंडूकों की संतति को चलना पड़ता है, अर्थात् जिस प्रकार मच्छलियों से परिवर्तन पाकर मंडूकों ने ज़मीन पर रहना सीख लिया है, उसी प्रकार मंडूकों के बच्चों को भी सीखना पड़ता है। कितनी विचित्र बात है? प्रत्येक प्राणी को अपनी उन्नति का पूरा चक्र घूमना पड़ता है। परन्तु एक ही प्राणी का इतिहास देख कर इस प्रकार का सर्व साधारण अनुमान हमें नहीं लगाना चाहिये

वा चार अन्य प्राणियों में भी इसी प्रकार की परम्परा पाई जाती हो तो इस विषय में अधिक दृढ़ता से कहना उचित होगा । अत इस विषय मे निश्चय पूर्वक किसी बात को प्रतिपादन करने के पूर्व हम मुर्गी के अंडे की वृद्धि का इतिहास सक्षेप में देते हैं ।

मुरगी के इतिहास द्वारा उपरोक्त बात की पुष्टि:

१—इस में किसी को सदेह नहीं होगा कि मुरगी का अंडा मुरगी है । मुरगी के अडे की अन्दर की रचना यू होती है अडे के ऊपर चारों ओर आवेष्टन करने वाला एक छिलका होता है, और छिलके के भीतर दो झिल्लिया होती है जिनमें अंडे की सफेदी (White Albumen) बन्द रहती है । इस सफेदी के भीतर दो अन्य झिल्लियों से अडे का जर्दा (Yellow Yolkmass) लटकता है । ऊपर का छिलका और सफेदी बनने के पर्व से ही इस जर्द का अ-स्तित्व है आर यही अडे की मुख्य वस्तु है । बिल्कुल प्रारम्भ मे तो यह केवल प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) का एक कोष्ठमय पिंड होता है । भविष्य की मुरगी की प्रारम्भिक अवस्था यहा से शुरू होती है जो अन्त में मुरगी बन जाती है । मुरगी के अडे का आकार मण्डूक के अण्डे से बड़ा है तथापि मडूक के अण्डे की न्याई एक कोष्ठ से ही आरम्भ होकर आगे इस की वृद्धि होजाती है । थोड़े से समय में इसका आवले के समान एक बड़ा पिड बन जाता है । यदि रबड़ की उछलने वाली पोली गेंद पर सुई से छिद्र करके उसके अन्दरकी हवा निकाल दी जाय और फिर एक ओरसे उसको अन्दरकी ओर आधा दबा दिया जावे तो उस गेंद की आधी गेंद रह जाती है, यद्यपि अब उसके दो तह बनते है, इस प्रकार आवलेके आकारके पिडका दो तह वाला यह पिड बन जाता है। इस पिड के एक सिरे पर भविष्य के मस्तिष्क का तथा रीड की अस्थियों की मुख्य नाडी(Spinal Cord)का स्थान

निश्चित होता जाता है और इस पिंड के मध्य में बहुत से परिवर्तनों के साथ अन्य अन्य प्रारम्भिक इन्द्रियां बनती रहती हैं। इन प्रारम्भिक इन्द्रियों में विशेष ध्यान में रखने लायक गले के पास के गलफड़ों के दर्जे हैं। ये दर्जे बिलकुल उसी तरह के होते हैं जिस तरह के मण्डूक के प्राथमिक अवस्था में गलफड़ों के होते है। क्या इन गलफड़ों के दर्जों से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि पक्षियों के पूर्वज भी जल में रहने वाले तथा गलफड़ों द्वारा सांस लेने वाले प्राणी थे? विज्ञान इस प्रश्न का निषेधात्मक (Negative) उत्तर नहीं देता परन्तु विधायक (Affirmative) उत्तर देता है; और इस प्रकार की घटनाओं का उत्तर विकास को मानने के अतिरिक्त अन्य हो ही क्या सकता है? मंडूक के विषय में हम एक बार यह कह सकते हैं कि इन गलफड़ों के दर्जों का बनजाना ठीक है; इन से मण्डूक के बच्चे को कुछ उपयोग होता है क्योंकि जन्म होने पर मण्डूक के बच्चे को पानी में रह कर गलफड़ों द्वारा सांस लेने की आवश्यकता प्रत्यक्ष हम देखते हैं। परन्तु इस मुर्गी को इन गलफड़ों के दर्जों से क्या प्रयोजन? कुछ भी प्रयोजन प्रतीत नहीं होता। मण्डूक के अण्डे की वृद्धि में इन गलफड़ों के दर्जों को देखकर यदि मण्डूकों के विषय में हम यह मानते हों कि मण्डूकों की मछलीवर्ग से उन्नति हुई है तो मुर्गी के अंडे की वृद्धि में इन गलफड़ों के दर्जों को देख कर हमें यह भी मानना चाहिये कि पक्षियों की भी मछलियों से उन्नति हुई है। एवं मण्डूक वर्ग, और पक्षीवर्ग दोनों के पूर्वज मछलिवर्ग हैं। मुर्गी के अंडे की वृद्धि में इन दर्जों के बन जाने के पश्चात् चार छोटे छोटे अवयव प्रादुर्भूत होजाते हैं; इन में से दो मस्तिष्क की ओर तथा दूसरे दो पूंछ की ओर रहते हैं। आरम्भ में इन का आकार पंखों का नहीं होता और न ही पैरों का होता है। इन अवयवों की जैसे जैसे वृद्धि होती

जाती है वैसे वैसे इन सब का आकार गोह के पैरों के समान बनने लगजाता है, जिन में से अगले दो, अन्त में मुरगी के पंख बन जाते है । और पिछले दो मुरगी की टांगे बन जाती है ।

२—अन्य अवयवों की यह दशा है कि प्रथम मण्डूकवर्ग के अवयवों के सदृश उन के आकार बन जाते है, तत्पश्चात् सर्पवर्ग के अवयवों के सदृश उनके आकार बन जाते हैं, और अन्त में उन के पक्षिवर्ग के अवयवों के आकार बन जाते है । इस प्रकार जब सब परिवर्तन होजाते है तब ही अन्तमें बच्चेमें अंडेको फोड़ने की शक्ति आ जाती है मण्डूक और मुरगीकी अण्डस्थ वृद्धिका इतिहास जो ऊपर दिया हुआ है उस में केवल दस पांच बातों का वर्णन है; बहुतसी अन्य बातें छोड़ दी गई है । तथापि अण्डस्थ अवस्था में वृद्धि होने के समय पक्षियों को किस परम्परा में से गुजरना पड़ता है यह इन बातों से ही स्पष्टतया पूतीत होता है । यह परम्परा वही है जिसका तुलनात्मक शरीर-रचना शास्त्र ने पक्षियों के विषय में अनुमान लगाया हुआ है । तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र तथा गर्भशास्त्र से यही अनुमान निकलता है कि मच्छलीवर्ग से उन्नत होते हुए मण्डूकों का विकास हुआ है और मछली, मण्डूक, और सर्प वर्गों में से उन्नत होते हुए पक्षियों का विकास हुआ है । अन्य बहुत से उदाहरण हम दे सकते हैं और उनकी गर्भस्थ अवस्था का इतिहास दे सक्ते है; तथापि जो थोड़े से उदाहरण ऊपर दिये गये हैं उन से प्राणियों की गर्भस्थ तथा अण्डस्थ अवस्था की परम्परा के सम्बन्ध में लगाये हुए अनुमान ठीक ठीक प्रतीत होते हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसे कौन से कारण हैं कि जिनसे यह आवश्यक प्रतीत होता हो कि इसी क्रममें से प्रत्येक पक्षी को गर्भस्थ अवस्था में गुजरना लाजमी हो । वैज्ञानिकों ने असंख्य प्राणियों पर परीक्षण किये परन्तु उन्हें सब में एक ही प्रकार

का क्रम दीख पड़ा और दीख पड़ता है । इस क्रम का कारण यह प्रतीत होता है कि पक्षियों का, सर्प वर्ग, मण्डूकवर्ग, और मत्स्यवर्ग के प्राणियों से विकास हुआ है ।

गर्भज अवस्था से ज्ञात होने वाला यह इतिहास अति संक्षिप्त होता है:—इस प्रकार के निरीक्षण तथा परीक्षण से गर्भशास्त्र ने जो एक सिद्धान्त निश्चित कर दिया है वह यह है कि " प्रत्येक प्राणि को गर्भस्थ अवस्था में अपने पूर्वजों के इतिहास का संक्षेप से अनुकरण करना पड़ता है " । इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि यह अनुकरण अति संक्षिप्त रीति से होता है; यह नहीं कि मुरगी का बच्चा उठकर पानी के पास दौड़ जाय और उस में मछलियों की न्याई तैरकर अपने गलफडों द्वारा सांस लेकर दिखादे । प्राणियों की अण्डस्थ वा गर्भस्थ वृद्धि में विकास का केवल एक अत्यन्त संक्षिप्त इतिहास वा सूचनात्मक निदर्शन दिखाई देता है । जैसा कि हक्सले (Huxley) तथा हेकल (Hæckel) ने लिखा है, यह इतिहास इतना संक्षेप करके लिखा हुआ है कि इसके प्रत्येक शब्द तथा प्रत्येक वाक्य का भाष्य और उन पर व्याख्या करने में तो उनसे बड़ा विस्तृत ग्रन्थ बन जायगा। इस अण्डस्थ वा गर्भस्थ वृद्धि में जो इतिहास लिखा हुआ है उस में कभी पंक्तिएं, कभी पूरे पैराग्राफ़ और कभी पृष्ठों के पृष्ठ छुटे हुए हैं। इतना ही नहीं परन्तु कभी कभी प्रक्षिप्त प्रकरण भी इस में डाले हुए दृष्टिगोचर होते हैं । इस इतिहास से विकास की स्थूल स्थूल बातों से परिचय होता है और इस दृष्टि से यह एक बड़े महत्व का तथा पूर्ण विश्वसनीय प्राकृतिक दस्तावेज़(Document) है । यह इतिहास जतलाता है कि वर्तमान समय में जो निचली श्रेणियों के प्राणी दिख

उनसे विकास द्वारा आजकल के उच्च श्रेणियोंके प्राणी निर्माण हुए हैं।

मनुष्य तक की गर्भज अवस्था में ऐसा इतिहास पाया जाता है; इस से क्या अनुमान निकलते हैं ?:-
हम अब तक अंडज प्राणियो का ही विचार करते रहे हैं। इस के पश्चात् स्तन धारियों की गर्भस्थ अवस्था का भी विचार करना चाहिए। ऊपर का यह इतना व्यापक सिद्धान्त पढ़ कर सम्भव है कि कईयों के मन में यह विचार उठेगा कि पक्षिवर्ग तक यह व्यापक सिद्धान्त ठीक होगा; स्तन धारियों के लिये यह ठीक नहीं होगा; चौपाये श्रेष्ठ कोटि के जानवर हैं और उन की गर्भस्थ वृद्धि शायद विशेष प्रकार की होगी। मनुष्य का तो कहना ही क्या! वह तो सर्व प्राणियों में सब प्रकार से श्रेष्ठ है; उस का गर्भस्थ क्रम अन्य प्रकार का अवश्य होगा। विज्ञान की ओर जब हम देखते हैं और विज्ञान से इस प्रश्न का उत्तर पूछते है तो विज्ञान बतलाता है कि प्रकृति में किसी का पक्षपात नहीं है और न ही किसी का लिहाज किया जाता है; प्राकृतिक नियमों के लिये सब प्राणी एकसे हैं। मच्छली, मेंडूक, और मुर्गी की अंडस्थ अवस्थाओं के समान बिल्ली की और मनुष्य की गर्भस्थ अवस्थाएं हैं। इन की गर्भ वृद्धि में वैसी ही गल्फड़ों की दर्जें और उन के साथ सम्बन्ध रखने वाले वैसे ही अन्य अवयव कुछ समय तक दिखाई देते है। बिल्ली और कुत्ता, शशक और घूंसा, शूकर हिरण और घोड़ा, तथा अन्य स्तन धारियों के गर्भ की एकसी अवस्था है। सर्प, पक्षी, और मेंडूक वर्ग के प्राणियों की न्याई इन सब को अपनी गर्भज वृद्धि में एकसी अवस्था में से गुजरना पड़ता है। मेंडूक, सर्प, तथा पक्षी की गर्भस्थ वृद्धि में एक ऐसी अवस्था आजाती है जो मच्छली की कुल जीवन तक स्थिर रहती है। स्तनधारी की गर्भ वृद्धि में भी यही बात दिखाई

देती है। यदि इन प्रत्यक्ष बातों का अर्थ हम यह नहीं समझते हों कि सब रीड की अस्थि वाले प्राणी एक ही पूर्वजों से उत्पन्न हुए है तो इन गर्भस्थ अवस्थाओं का कोई मतलब समझ में नहीं आता, और इन अवस्थाओं का सहेतुक प्रयोजन हम नहीं बतला सकते। इस प्रकार के समझौते के विना बिल्ली, कुत्ता, शशक, गौ, बन्दर, वा मनुष्य को गर्भस्थ अवस्था में कुछ समय तक मत्स्य श्रेणी की अवस्था में से क्यों गुजरना पड़ता है इस की बिलकुल संगति लगा नहीं सकते। तुलनात्मक-शरीर-रचना-शास्त्र ने भी यही सिद्ध कर दिया है कि मंडूक वर्ग की उत्पत्ति मत्स्य वर्ग से हुई है, और मंडूकों से सर्प वर्ग का विकास हुआ है; तथा यह भी सिद्ध कर दिया है कि पक्षी और स्तनधारी प्राणी, सर्प वर्ग के प्राणियों से विकास द्वारा निर्माण हुए हैं। अब गर्भ-शास्त्र द्वारा हम सिद्ध कर चुके हैं कि प्राणियों को, उन के पूर्वजों ने अपनी उन्नति के लिये जिस मार्ग का अवलम्बन किया था, उसी मार्ग का संक्षेप में अनुकरण करना पड़ता है। अर्थात् अब हम बता सकते हैं कि इन भिन्न भिन्न वर्गों के प्राणियों की गर्भज अवस्था का इतिहास कुछ समय तक एक जैसा लिखा हुआ क्यों होता है।

गर्भज अवस्था की समानताओं तथा भिन्नताओं से भिन्न भिन्न प्राणियों के विकास के क्रम ज्ञात होते हैं:-भिन्न भिन्न प्राणियों की इस गर्भस्थ अवस्था के इतिहास में जहां जहां समानताएँ समाप्त होकर भिन्न भिन्न मार्गों का अवलम्बन किया हुआ प्रतीत होता है, वे वे स्थान बताते हैं कि भिन्न भिन्न वर्गों के विकास में कहां कहां भिन्नताएँ पैदा हुईं, और कहां कहां परिस्थिति के अनुसार अपने जीवन को बचाने के अर्थ प्राणियों ने भिन्न भिन्न मार्गों पर चलना आरम्भ कर दिया। स्तनधारिश्रेणी के भिन्न

भिन्न प्राणियों की गर्भज अवस्था के इतिहास में यह बात बहुत स्पष्टतया प्रतीत होती है । उदाहरणार्थ, स्तनधारियों में मासभक्षक, तीक्ष्ण दन्ती, और खुर वाले जानवरों की गर्भस्थ दशा का विचार कीजिए । प्रारम्भ में इन में सब प्रकार की समानताएं प्रतीत होती हैं मत्स्य, मण्डूक, तथा सर्प वर्ग की अवस्थाएं तीनोंमें एक जैसी दृष्टिगोचर होती हैं, और पश्चात् भी कुछ देर तक इन मे समानताएँ प्रतीत होती हैं। ये दशाएँ बहुत ही समान रहती है आगे चलकर फिर कुछ भिन्नताएँ आने लगती है, यानी जिस मुख्य रास्ते पर वे सब इकट्ठे चल रहे थे वह रास्ता समाप्त हो जाता है और उसके जो भिन्न भिन्न मार्ग निकलते हैं उन पर जब भिन्न भिन्न प्राणी चलने लगते हैं—कुत्ता और बिल्ली का निराला रास्ता, शशक गिल्हरी तथा चूहों का निराला रास्ता, और खुरवालों गो, बकरी, सूकर आदि का निराला रास्ता फुट पडता है । अन्य प्राणियों को छोड़कर कुत्ता और बिल्ली का रास्ता बहुत दूर तक एकही रहता है और आगे फिर फट जाता है, इसी प्रकार शशक, गिल्हरी, तथा चूहों का, और इसी प्रकार खुरवाले जन्तुओं का। इससे क्या सिद्ध होता है? यह कि इन तीन प्रकार के मासभक्षक, तीक्ष्ण दन्ती और खुरधारी—प्राणियों की एक ही प्रकार के कुल से उत्पत्ति हुई हुई है । यही कारण है कि सर्प और मण्डूकों से भिन्नता होने से बहुत देर तक इन तीनों की आपस में समानता रहती है, तथा एक ही जाति के प्राणियों में यह और अधिक दूर तक जाती है । अर्थात्, पूर्णावस्था को प्राप्त होने पर जिन प्राणियों का जितना साम्य है उसी हिसाब का उनका गर्भावस्था में भी साम्य प्रतीत होता है, जैसे कुत्ता और बिल्ली का अधिक साम्य है और गर्भावस्था में बहुत दूर तक साम्य ही रहता है, और बिल्ली और अश्व, इन में कम साम्य होता है और गर्भावस्था का साम्य भी

बहुत दूर तक नहीं पहुंचता, एक ओर बिल्ली और कुत्ते में वा दूसरी ओर अश्व और सूकर में अन्तर पड़ने के पूर्व ही बिल्ली और अश्व में अन्तर पड़ जाता है।

तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र के और इस शास्त्र के सिद्धान्त एक ही परिणाम पर पहुंचते हैं:--तुलनात्मक-शरीर-रचना शास्त्र, पूर्णताको प्राप्त हुए हुए प्राणियों की शरीर रचना को देखकर उनकी समानता वा भिन्नता का निश्चय करता है; गर्भवृद्धि शास्त्र, गर्भस्थ तथा बाल्यावस्था में प्राणियों की शरीर रचना को देखकर उनकी समानता वा भिन्नता का निश्चय करता है। एक शास्त्र में प्राणियों की जहां जहां समानता और जहां जहां विभिन्नता बतलाई जाती है, ठीक उन्हीं स्थानों पर दूसरे शास्त्र में भी उनकी समानता तथा विभिन्नता बतलाई जाती है। एक शास्त्र के परिणामों का दूसरे शास्त्र के परिणामों के साथ का यह सम्मेलन बताता है कि इन शास्त्रों के आधार और उन आधारों पर निकाले हुए सिद्धान्त ठीक हैं। गर्भ वृद्धि शास्त्र का मुख्य सिद्धान्त किस प्रकार चरितार्थ होता है यह, स्तनधारी प्राणियों की भिन्न भिन्न जातियों द्वारा, ऊपर बतलाया जा चुका है। इसी तत्व का अस्तित्व सविस्तर रीति से कम परिचित उदाहरणों द्वारा भी बतलाया जा सकता है।

उदाहरणार्थ, कृमियों की गर्भज अवस्था:--जोड़ों से बने हुए तथा रीढ़ की हड्डी रहित प्राणियों का विषय गर्भ शास्त्र के वेत्ताओं के लिये बहुत मनोरंजक है। तुलनात्मक-शरीर-रचना-शास्त्र ने यह सिद्ध कर दिया है कि कैंचुआ, कानखजूरा, मकड़ी, भौंरा, टिड्डी, तितली, आदि सब प्राणियों की रचना जोड़ों से बने हुए कृमियों की रचना के आधार पर बहुत कुछ बनाई हुई है। अब इस स्थापना की पुष्टी बहुत अच्छे प्रकार से गर्भ शास्त्र के सिद्धान्तों

से होती है। इन ऊपर निर्दिष्ट प्राणियों की गर्भस्थ (अटम्थ) अवस्था की वृद्धि तुलनात्मक दृष्टि से देखी जाय तो हम यह पायगे कि इन के प्रारम्भ के आकार सव एक जैसे होते है, इस अवस्था में इन सव, कानखजूरा, कछुआ, टिड्डी, भोरा आदि, को देखा जाय तो बड़ी कठिनता से पहिचाना जासकता है। सब के शरीर कृमियों के सदृश भिन्न भिन्न जोडो से बने हुए होते है। फूलों पर इधरसे उधर भटकने वाली रग वरंगी तित्तारिया सव ने अवश्य देखी होगी, इन पख वाली तित्तरियों की प्राथमिक अवस्था उन की अन्तिम अवस्था से बहुत भिन्न होती है। इन दोनो अवस्थाओ को देख कर कोई भी विज्ञान से अनभिज्ञ पुरुष यह नहीं कह सकता कि एक ही प्राणि के य दोनो रूप हैं। तित्तरी की प्राथमिक अवस्था मे उस का शरीर कीडो की न्याई पूर्णतया जोड़दार होता है, और जैसी जैसी उस की वृद्धि होती जाती है वैसी वैसी उसके शरीर की अवस्था बदलती जाती है। रेशम के कीड़ो की, आरम्भ से अन्त तक, सव अवस्थाएं जिन्होने देखी होगी वे इस वात से अच्छे प्रकार परिचित होगे कि इन कीड़ो का शरीर प्रथम पूर्णतया कृमियों के समान - उन कीड़ो के समान जो साधारणतः वृक्षोके पत्तोंपर निर्वाह करते हैं, होता है और पश्चात् रेशमका कोया वनाकर उसमें से तित्तरी के रूप में ये कीड़े वाहिर निकल आते हैं। उड़ने वाले जितने कीडे हैं उन सव की प्रारम्भिक अवस्था कृमियों के समान है। इन वातो को जानते हुए हम निशंक होकर यह अनुमान लगा सकते हैं कि पख वाले कीड़े- तित्तरिया, भ्रमर, ततय्या, मक्खिया, आदि एक ही प्रकार के पूर्वजों से उत्पन्न हुए हैं। तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र का और गर्भ वृद्धि-शास्त्र का कितना स्पष्ट मेल यहा दिख ... ता है!

प्राणियों की प्रारम्भिक गर्भस्थ अवस्था का सविस्तर वर्णनः—गर्भ-वृद्धि-शास्त्र को समाप्त करने के पूर्व प्राणियों की गर्भस्थ अवस्था में विकास का जो संक्षिप्त इतिहास लिखा रहता है उसके प्रारम्भिक पृष्ठों पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है; मण्डूक तथा मुर्गी के अण्डे की वृद्धि का वर्णन करते हुए पाठकों को स्मरण होगा कि, हमने प्रारम्भिक वृद्धि का पूर्णतया वर्णन नहीं किया; प्रारम्भिक परिवर्तनों का बहुत साधारणतया वर्णन करके हमने यह बतलाया कि कुछ समय के पश्चात् इनके गलों के पास गलफड़ों की दर्ज़ें बन जाती हैं। इस प्रकार की दर्ज़ें बन जाने के पूर्व के इतिहास पर ज़रा विचार कीजिये । बिलकुल
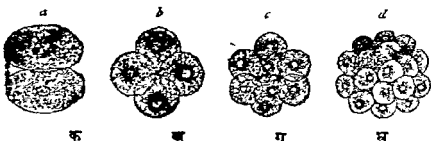
गर्भस्थ अवस्था की अत्यन्त प्रारम्भिक वृद्धि;
क, दो कोष्ठों का पिंड;
ख, उन्हीं दो कोष्ठों की चार कोष्ठों में वृद्धि;
ग. चार की आठ में वृद्धि;
घ, आठ की सोलह में वृद्धि ।

(चित्र सं० ६)

आरम्भमें अण्डा केवल एक कोष्ठवाला है और इस अवस्था से आगे अण्डे की वृद्धि शुरू होजाती है । एक कोष्ठ के दो, दो के चार, चार के आठ, आठ के सोलह इस प्रकार कोष्ठों की संख्या बढ़ती है (चित्र सं० ६ देखो) और इन का दो तहों युक्त एक गोलाकार पिंड बनता है । यह पिंड पूर्णतया कोष्ठों से भरा हुआ नहीं होता परन्तु इसके भीतर कुछ खो-

खलापन रहता है, इस अवस्था को उदरारम्भक अवस्था (Gastrula Stage) कहते हैं और यही पेट की बुनियाद है । कुछ समय के पश्चात् यह गोल पिंड आवले की न्याईं एक ओर कुछ चपटासा बनता है और फिर गलफडो की दर्जें बनने लगती हैं । मुरगी के अंडे का भी यही इतिहास है । सब अंडो की वृद्धि एक कोष्ठ से शुरू होजाती है, और सब गर्भज प्राणियों की गर्भस्थ वृद्धि भी इसी प्रकार एक कोष्ठ से ही प्रारम्भ हो जाती है । इन सब की प्रारम्भिक दशा में एक कोष्ठ के दो, दो के चार, और चार के आठ, इस प्रकार बढते बढते अंड का, वा गर्भ के भीतर का, कोष्ठसमूह दो तहो से वेष्ठित गोलाकार रूप बन जाता है ।

प्राणियों की प्रारंभिक अवस्था उनका उद्गम स्थान बताती है:–अब प्रश्न यह है कि गर्भ शास्त्र के मुख्य तत्व की दृष्टि से इस प्रारम्भिक समानता का क्या अर्थ होता है ? क्या इन का यह अर्थ है कि बिल्ली और मुरगी जैसे उच्च अवस्था के प्राणी, दो तहो वाले गोल थैली के आकार के प्राणियो से विकास द्वारा उन्नत हुए हैं, क्योंकि इनकी प्रारम्भिक गर्भावस्था एक समय दो तहो की गोल थैली के आकार की बनती है ? और यदि यह दो तहो की थैली वाले प्राणी एक-कोष्ठ मय अमीबा प्राणी से निर्माण हुए हों तो क्या हम यह भी कह सक्ते हैं कि बिल्ली और मुरगी इस एक कोष्ठमय अमीबा से विकास द्वारा निर्माण हुई है ? इस प्रश्न का तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र ने विधायक उत्तर दिया है । हम देख ही चुके हैं कि इस शास्त्रने कुल प्राणियों का जो वर्गीकरण किया है, उसी से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्राणिया का विकास एक कोष्ठ-मय प्राणियो से हुआ है, इस शास्त्र के किये हुए वर्गी करण पर

फिर से यदि हम ध्यान दें तो हम देखेंगे कि प्राणियों में सब से नीचे अमीबा का स्थान है, उस के पश्चात् कोष्टों की दो तहों से बने हुए "हेड्रा" प्राणी का स्थान है और उस के बाद अधिक अधिक क्लिष्ट रचना वाले रीड की हड्डी रहित प्राणियों तथा रीढ की हड्डी युक्त प्राणियों का स्थान है। तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र ने भिन्न भिन्न प्राणियों की देख भाल करके यह जो परिणाम निकाला है उस पर पूर्णतया विश्वास करने के लिये निस्सन्देह मन में थोड़ी सी झिझक उत्पन्न होती है—अमीबा जैसे क्षुद्र प्राणी से बिल्ली और कुत्ते के समान बड़े बड़े प्राणी, विकास होते होते सदियों के पश्चात् क्यों बन जाते होंगे। इस बात पर विज्ञान से अपरिचित पुरुषों को निश्चय नहीं होता। परन्तु गर्भ वृद्धि शास्त्र इस विषय में अपनी सम्मति बड़े बल पूर्वक बहुत निश्चयात्मक प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा देता है।

प्रत्यक्ष प्रमाणित होने के कारण गर्भ वृद्धि शास्त्र के सिद्धान्तों पर हमें अविश्वास नहीं हो सकता:—बिल्ली और कुत्ता, मुर्गा और मेंडक. इन की अमीबा तथा हेड्रा से विकास द्वारा उन्नति हुई है, इस प्रकार के गर्भ वृद्धि शास्त्र के सिद्धान्त पर हम को सन्देह ही कैसे हो सकता है जब कि हम प्रत्यक्ष अपनी आखों से देखते है कि इनकी गर्भस्थ अवस्था की वृद्धि एक कोष्ट से प्रारम्भ होकर दो तहों वाली उदरारम्भक अवस्था में से गुजरती हुई आगे चली जाती है। यदि हम यह स्वीकार नहीं करते तो हम को यह स्वीकार करना चाहिए कि अपनी इन्द्रियों पर हमारा अपना विश्वास नहीं है, क्योंकि इन प्राणियों की गर्भस्थ अवस्था में हम देखते है कि इन की वृद्धि एक कोष्ट से प्रारम्भ होकर आगे चली जाती है, जिस के अन्त में ही इस प्रकार के क्लिष्ट रचना के प्राणी निर्माण होते है। सरल रचना वाले प्राणियों से क्लिष्ट रचना वाले प्राणियों की उत्पत्ति हो सकती है और इस को हम प्रत्यक्ष होने

देखते भी है । इस में कोई सन्देह नहीं है कि इस प्रकार की अपरिचित बातों पर हमारा विश्वास नहीं बैटता; परन्तु यदि भिन्न भिन्न प्राणियों से और उन की जो प्रारम्भिक अवस्थाएँ हैं उन की समानताओं से हम बहुत परिचित रहेंगे तो हमारा इन बातों पर दृढ़ विश्वास बन जायगा और तब ही इन का वास्तविक महत्व हमारे मन पर पूर्णतया प्रभाव जमा लेगा । एक बार इस बात का निश्चय होजाय कि अमीबा और हैड्रा से उन्नत होकर उच्च प्रकार के प्राणी बने हुए हैं तो गर्भस्थ अवस्था में गलफड़ो के दर्जों का बन जाना एक साधारण सी बात प्रतीत होगी ।

प्राणियों की गर्भस्थ अवस्था में जो परिवर्तन होते है उन का कारण बीज परम्परा के तत्व के आधार पर बतलाया जाता है । जिस प्रकार पूर्वजों की पीढि दर पीढि के सस्कार होते है उसी प्रकार के गुण सतति में दिखाई देते हैं ।

इस गर्भवृद्धि शास्त्र की १९ वीं शताब्दी में बड़ी आश्चर्य जनक उन्नति हुई है और गर्भशास्त्र का मुख्य तत्व प्रथम फोन् बेअर [Von Baer] ने और फिर प्रोफ़ेसर हेकल (Prof Haeckel) ने निश्चित रूप से ज्ञात किया । आज कल इस शास्त्र में अन्वेषण हो रहे हैं और प्राणियो की गर्भस्थ अवस्था की वृद्धि का विशेष रीति से निरीक्षण किया जा रहा है, इसके साथ साथ यह भी परीक्षणों द्वारा देखा जा रहा है कि गर्भ पर बाह्य तथा अन्तरीय सस्कारों का कहा तक प्रभाव पड़ता हे । आनुवंशिक संस्कारों का प्रभाव गर्भ पर कहा तक होता है इस पर विशेष रीति से आन्दोलन किया जा रहा है । जर्मनी के अति प्रसिद्ध वैज्ञानिक वाइजमन (Weismann) महाशय इस विषय में विशेष परिश्रम कर रहे है । इस विषय के जो नवीन नवीन आविष्कार होंगे उनसे विज्ञान की इस विषयक बहुत उन्नति होने की सम्भावना है, परन्तु प्राकृतिक घटनाओं पर विचार

करने वाले पुरुषों को विकासवाद के तत्त्वों का निश्चय करने के लिये गर्भशास्त्र के मूल नियम ही, जिन पर हमने पिछले कुछ पृष्ठों में विचार किया है, बहुत पर्याप्त हैं।

सारांश, अब तक हमने तुलनात्मक शरीर–रचना–शास्त्र तथा गर्भ वृद्धि शास्त्र द्वारा जितना कुछ सिद्ध कर दिया है उससे यह स्पष्ट हुआ है कि विकास एक वास्तविक तथा स्वाभाविक घटना है। अगले खण्ड में हम प्रस्तरीभूत प्राणियों का विचार करेंगे।

तृतीय खंड

लुप्त-जन्तु-शास्त्र तथा प्राणि-भौगोलिक-विभाग-शास्त्र से प्राप्त होने वाले विकास के प्रमाण।

तृतीय खण्ड

अध्याय १

लुप्त-जन्तु-शास्त्र और विकास के प्रमाण ।

प्रस्तावनात्मक— लुप्त जन्तु शास्त्र और उससे लाभ— इस शास्त्र के सिद्धान्तों को ज्ञात करने के लिये किन किन बातों की आवश्यकता है—इस शास्त्र के प्रमाणों का विकासवाद में महत्व—इस शास्त्र से विकासवाद का मन्दिर अधिक स्थिर हो जाता है— इस शास्त्र से और लाभ— किस शास्त्र के प्रमाण अधिक बलवान हैं ?— लुप्त जन्तु शास्त्र की प्रारम्भ से आज तक की उन्नति—फौसील क्या वस्तु है ?—फौसीलों का संग्रह अपूर्ण क्यों है ?—तीन कारण—भूगर्भ शास्त्र की सहायता की इस शास्त्र को आवश्यकता है ।

प्रस्तावनात्मक—प्राकृतिक पदार्थ और प्राकृतिक घटनाओं पर विचार करने वालों के मन पर पृथिवी की तहों में सदियों से दबे हुए वृक्ष अथवा प्राणियों के अस्थिपंजर जितना प्रभाव डाल सकते हैं उतना प्रभाव स्यात् ही कोई घटना डाल सके । पृथ्वी के गर्भ में सहस्रों वर्षों तक गाढ़शायी प्राणियों को जब हम उनके स्थान से निकाल कर बाहिर प्रकाश में लाते हैं तब उनके कपाल तथा अस्थिपञ्जर पुरातन युग का एक अद्भुत चित्र हमारे सन्मुख उपस्थित करते हैं । परन्तु भूगर्भस्थ प्राणियों के तथा उन चट्टानों के, जिन के नीचे ये प्राणी दबे हुए रहते हैं, निर्माण काल का जब विज्ञान के वेत्ता अनुमान लगाते हैं तब उनके कथन पर हमारा विश्वास नहीं होता । कारण यह है कि हमारी आयु की मर्यादा अपेक्षया बहुत अल्प है; अतः इस स्वल्प जीवन काल में हम, प्राणियों चट्टानों तथा अन्य प्राकृतिक घटनाओं के परिवर्तन क्रमों को, जिनके लिये

समय अपेक्षित है, स्वत चाक्षुप नहीं कर सकते । इस लिय जब वैज्ञानिक लोग ऐसी घटनाओं पर अनुमान लगाकर उनके समय को निश्चित करते है तो हम उसको एकदम मानते हिचकिचाते हैं। पृथिवी की आयु कितनी हे, भिन्न भिन्न समयों में इस पर जीवो की स्थिति कैसी रही, कान कान से प्राणी पृथिवी पर रहते थे, और ऐसी कौन कौन सी घटनाए हुई जिन स पृथिवी के स्वरूप में परिवर्तन आगया, एतादश प्रश्नो का दुर्गम्यता दुर्लक्ष्यता, तथा सूक्ष्मता क साम्हने हमको सीस नमाना ही पडता हे। अनुभवी कविवर भर्तृहरि ने ठीक ही कहा हे कि ' कालो ह्यय निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी ' परन्तु इस के होते हुए भी पृथिवी की पूर्वकालीन स्थिति तथा पूर्वकालीन प्राणीविषयक इतिहास विज्ञान द्वारा प्राप्त हो सकता है। यद्यपि विज्ञान को पूरा मर्म ज्ञात नहीं हुआ तथापि विज्ञानने जितना कुछ अब तक ज्ञात कर लिया हे वह थोडा नहीं । विज्ञान द्वारा यावत् निश्चित हुआ है, उसकी सत्यता म सन्देह नहीं। कारण यह है कि विज्ञान की रीति शास्त्रीय है और यह शास्त्रीय रीति एक ऐसी भट्ठी ह जिसमें यदि अन्वेषित वस्तुस्थितियों अर्थात् घटनाओं (facts) को तपाया जाय तो अन्त मे प्राप्त होने वाले परिणाम अपनी अत्यन्त शुद्धावस्था म मिल सकते हैं। विकास के लिय अब तक दो शास्त्रों (तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र तथा गर्भवृद्धि शास्त्र) मे हमने प्रमाण इकट्ठे किये है। इसके आगे हम उन स्थूल तत्वों तथा प्रमाणो पर विचार करगे जो चट्टानों क खोदने तथा उनकी घटनाओं को इकट्ठा करने तथा उन पर विचार करने से प्राप्त होते है।

" लुप्त जन्तु शास्त्र " और उससे लाभ. १–लुप्त जन्तु शास्त्र का सबध प्रस्तरीभूत प्राणियों के साथ है । " लुप्त जतु " का अर्थ नष्ट हुए हुए प्राणी हैं अत " लुप्त जतु शास्त्र " का

शाब्दिक अर्थ पुराने समय के जीवित परंतु अब नष्ट हुए हुए प्राणियों सम्बन्धी विज्ञान है। चट्टानों के नीचे दबे हुए वा पृथ्वी की तहों के अन्तर्गत वनस्पतियों वा प्राणियों के जो मृत शरीर मिलते हैं उनका विचार इस शास्त्र में होता है। वर्तमान समय के जीवित प्राणियों की रचना तथा पृथ्वी के गर्भ (Crust of the Earth) में होने वाले परिवर्तनों को मन में रखकर तुलनात्मक रीति से पुराने समय के प्राणियों के विषय में हम बहुत कुछ जान सकते हैं; उदाहरणार्थ, यदि किसी लुप्त-जन्तु-शास्त्र के ज्ञाता को किसी स्थान में एक खोपड़ी या खोपड़ी के समान कोई पदार्थ मिल जाय तो वह, वर्तमान समय के प्राणियों की खोपड़ियों के सम्बन्ध में उसे जितना ज्ञान है उसकी सहायता से, बताएगा कि वह खोपड़ी किस प्रकार के प्राणी की होगी तथा उस प्राणी का आज कल के प्राणियों के साथ क्या सम्बन्ध होगा; इतना ही नहीं, अपितु, वह यह भी बतलाने का प्रयत्न करेगा कि इस प्राणी का पूर्व कालीन प्राणियों के साथ क्या क्या साधर्म्य होगा; यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के कार्य के लिये तुलनात्मक-शरीर-रचना-शास्त्र की (जिस की मोटी मोटी बातें हम देख चुके हैं) सहायता बहुत आवश्यक है।

२—ऊपर निर्दिष्ट बातों के अतिरिक्त यह शास्त्र दबे हुए प्राणियों की स्थिति, काल, तथा प्राणी शृंखला में उनके यथोचित स्थान को भी बताता है। हज़ारों, नहीं लाखों, वर्षों के पहले जो प्राणी इस संसार में निर्मित हुए थे, उनके सम्बन्ध में यह बतलाना बहुत कठिन है कि वे आज से कितने वर्ष पहले इस संसार में विद्यमान थे और न ही इस बात की कोई आवश्यकता है। हां, यह बात जान लेना आवश्यक है कि क्रमिक उन्नति में कौन कौन से प्राणी पहले और कौन कौन से पीछे अस्तित्व में आये हैं।

इस शास्त्र के सिद्धान्तों को ज्ञात करने के लिये किन किन बातों का आवश्यकता है — इस कार्य के लिये (१) पर्वतों की तथा भूमि के तहों की बनावट का विचार तथा उसका इतिहास जानने की आवश्यकता है, (२) इस बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि किन किन घटनाओं के कारण प्राणियों के शरीर जमीन में दबते है और वहा पत्थर के समान कैसे बन जाते हैं, अन्त में (३) भूगर्भ शास्त्र तथा प्राणी शास्त्र की बहुत सी बातों का ज्ञान भी इस लुप्त जन्तु शास्त्र के लिये आवश्यक है।

इस खण्ड के अध्यायों में लुप्त जन्तुओं से विकास को सिद्ध करने वाले जो जो प्रमाण मिलते है उनका विचार होगा।

ऊपर जो कुछ लिखा है उससे स्पष्ट प्रतीत होगया होगा कि इस कार्य के लिये हमको प्रथम इस पृथ्वी के भूगर्भीय इतिहास का थोड़ा सा परिज्ञान होना चाहिए ताकि फोसीलों [Fossils] और चट्टानों के अर्थ से हम पूर्णतया परिचित हो जाय।

इस शास्त्र के प्रमाणों का विकासवाद में महत्व—विकासवाद के कई समालोचकों का यह मत है कि विकासवाद की स्थिति बहुत अंशों में लुप्त जन्तु शास्त्र के प्रमाणों पर निर्भर है। यदि इन प्रमाणों में सत्यता हो तो विकास की दृढता रहेगी और यदि ये प्रमाण निर्बल होंगे तो विकासवाद की अस्थिरता हो जायगी। इस समालोचना में बहुत सार प्रतीत होता है। देखिये, साधारण बुद्धि वालों को भी इस बात से विरोध नहीं होगा कि पृथ्वी की अत्यन्त निचली तहों में प्राप्त होने वाले अस्थिपञ्जर तथा कवच [Shells] उन प्राणियों के हैं जो इस संसार में आज से लाखों, करोडों, वर्षों के पूर्व संचार करते थे। और यदि विकासवादियों का यह कथन कि आज कल के प्राणी असंख्य वर्षों के पहले निर्मित प्राणियों से विकास द्वारा

उद्भूत हुए हैं, अर्थात् आज कल के प्राणी भिन्न रूप के होने पूर्व कालीन प्राणियों की संतति है यदि ठीक हो तो यह भी ठीक होना चाहिए कि पृथ्वी की अत्यन्त नीचली तहों में दबे हुए प्राणी, बहुत पुराने काल के होने के कारण, विकास के लिये बहुत भारी महत्त्व के प्रमाण हैं।

इस शास्त्र से विकासवाद का मंदिर अधिक स्थिर हो जाता है:— कोई सन्देह नहीं कि अन्य शास्त्रों से मिलने वाले प्रमाणों की अपेक्षा विकासवाद के लिये इस लुप्त जन्तु शास्त्र के प्रमाण अधिक प्रत्यक्ष है। तिस पर भी इस बात को भूल नहीं जाना चाहिए कि तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र तथा गर्भशास्त्र के पक्के आधार पर विकासवाद का मंदिर खड़ा किया जा चुका है। अब इन नूतन प्रमाणों द्वारा इस मन्दिर को पक्का करने में सहायता मिल सकी है।

इस शास्त्र से और लाभः— लुप्त जन्तु शास्त्र के इन प्रमाणों से विकासवाद के लिए जो सामग्री प्राप्त हो सकती है उसका अन्य रीति से भी उपयोग होना सम्भव है। पहले बताया जा चुका है कि प्राणियों की गर्भस्थ अवस्था से विकास के संक्षिप्त इतिहास का बोध होता है, और गर्भ की भिन्न भिन्न अवस्थाएं भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों के अस्तित्व की सूचक होती हैं, अब सम्भव है कि लुप्त-जन्तुओं की खोज करते करते हमें ऐसे प्राणी मिल जाय जो कि आज कल उपस्थित न हो परन्तु जिन की विद्यमानता गर्भस्थ वृद्धि में सूचित होती हो। क्या ऐसे प्राणी इस संक्षिप्त इतिहास की पुष्टि करने में सहायक न होंगे? इस खोज में ऐसे भी प्राणी प्राप्त होजाने की सम्भावना है जो तुलनात्मक-शरीर रचना शास्त्र के अनुसार उपस्थित होने चाहिए परन्तु जो आज कल विद्यमान नहीं हैं। यदि ऐसे प्राणी

मिल जाय तो तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र की भी वड़ी भारी स, हायता इस शास्त्र द्वारा हो जायगी ?

किस शास्त्र के प्रमाण अधिक बलवान हैं? —गर्भ वृद्धि शास्त्र द्वारा तथा लुप्त जन्तु शास्त्र द्वारा विकास का जो सक्षिप्त इतिहास दीखता है उस में अधिक सयोक्तिक तथा मान्य कोनसा है इस पर यदि विवाद उपस्थित हो तो हम को कहना पड़ेगा कि *गर्भ शास्त्र द्वारा मिलने वाला इतिहास अधिक बलवान है* क्योंकि (१) गर्भ वृद्धि शास्त्र की सामग्री से प्राणियों के शारीरिक परिवर्तन अधिक स्पष्टतया दीख पड़ते हैं, ओर (२) प्राणियो के कुल परिवर्तनों का इकट्ठा चित्र एक ही प्राणी की गर्भस्थ अवस्था के परिवर्तनो से ज्ञात हो सकता है, एक कोषधारी प्राणी से असख्य कोष युक्त प्राणी तक सब का क्रम अधिक पूर्णतया इस में दिखाई देता है ।

हमने पहले बताया है कि गर्भ वृद्धि शास्त्र की सहायता से प्राप्त होने वाले विकास के सक्षिप्त इतिहास में कहीं कहीं पक्तिया तथा कई स्थानों में पृष्ठों के पृष्ठ रहे पटे है, वह स्थान उन घटनाओं से घिरा जाना था जिनका अभी तक हमें ज्ञान नहीं है । यह चर्चा तो हुई गर्भ शास्त्र की, परन्तु जब हम लुप्त जन्तु शास्त्र के इतिहास प्रदर्शक पत्रों की ओर दृष्टि फेरते हैं तो प्रतीत होता है कि इस शास्त्र की अवस्था और भी अधिक शोचनीय है, लुप्त जन्तु शास्त्र द्वारा प्राप्त होने वाले विकास सम्बन्धी इतिहास के न केवल पृष्ठों के पृष्ठ परन्तु अध्यायों के अध्याय छुटे हुए है । यही कारण है कि इस लुप्त जन्तु शास्त्र के अन्वेषण, गर्भ शास्त्र के अन्वेषणों की अपेक्षा, अधिक कठिन तथा अधिक भ्रम में डालने वाले होते हैं । जीवित प्राणियो की गर्भस्थ वृद्धि को देखकर विकास के इतिहास पर प्रकाश डालना उतना

ठिन नहीं जितना मरे हुए प्राणियों की प्रस्तरीभूत लाशों को थिवी की निचली तहों में से खोद खोद कर डालना होता है।

लुप्त जन्तु शास्त्र की प्रारम्भ से आजतक की उन्नति—लुप्त जन्तु शास्त्र ा उद्गम सौ वर्षों से ही हुआ है। गत शताब्दि के अन्त भाग से इस शास्त्र की उन्नति बहुत वेग से होने लगी। इस समय तो इसके ण्डार में बहुत सामग्री इकट्ठी हो गयी है। उदाहरणार्थ—येल म्युझियम अश्वों की, सौथ केन्सिंग्टन में हाथी के दांतों की, ब्रसेल्स में इग्वे-डस (Iguanodous) की, क्रिस्टल पेलेस, न्युयोर्क, लेंडन तथा ना (Jena) में अन्य अन्य प्राणियों की वंश परम्परा बड़े स्पष्ट ति से एकत्रित की गई है। यदि हम उसकी भिन्न भिन्न वस्तुओं दृष्टि डालें तो पृथ्वी के भिन्न भिन्न समयों पर प्राणियों में किस कार भिन्नता आती गयी, इसका एक सुन्दर चित्र हमारे सामने पस्थित हो जाता है। इस शास्त्र के वेत्ताओं को इस बात पर एक ड़ा भारी अभिमान है कि इतने वस्तु भण्डार में एक भी ऐसी क्षुद्र से द्र वस्तु नहीं है जिससे विकास के तत्वों में बाधा पड़ती हो। तनी वस्तुएं एकत्रित की गयी है तथा अन्य नई नई एकत्रित की ा रही हैं उनसे जितने प्रमाण मिलते हैं वे सब के सब विकास को द्ध करने में ही सहायता देते हैं पृथ्वी की तहों में जितने प्राणी ले हैं उनकी परम्परा वैसी ही है जैसी अन्य शास्त्रों के द्वारा सिद्ध ई हैं।

कई प्राणियों की प्राचीन वंश परम्परा इतनी पूर्णतया मिलती है क उससे बड़ा आश्चर्य प्रतीत होता है; उदाहरणार्थ (१) अश्वकी परम्परा ो लीजिये; इसका, उत्पत्ति से लेकर आज तक का इतिहास लग भग र्णतया लिखा जा सकता है: पृथ्वीकी तहों में ऐसे ऐसे प्राणी मिलते जिनकी शरीर रचना से यह सिद्ध किया जा सकता है कि वे

"लुप्तकड़ी" के प्राणी हैं क्योंकि उनकी शरीर रचना वर्तमान समय के किसी एक विशेष समूह की प्रतीत नहीं होती परन्तु समूहों के मध्यवर्ती प्राणियों की प्रतीत होती है; उदाहरणार्थ, आर्किओप्टेरिक्स (Archæopteryx) नाम का एक ऐसा प्राणी मिलता है जिसकी शरीर रचना न सर्प वर्ग की है और नही पक्षिवर्ग की, परन्तु इन दोनों समूहों के मध्यवर्ती प्राणी की है। इस प्राणी का विशेष वर्णन आगे दिया है।

यहां तक इस लुप्त जन्तु शास्त्र की प्रस्तावना हुई; अब आगे हम निम्न बातों पर विचार करेंगे:— (१) फौसील क्या वस्तु है और फौसीलों के संग्रह में अपूर्णता क्यों है? (२) किन अवस्थाओं में फौसील बन जाते हैं; (३) भूगर्भ शास्त्रकी किन किन प्राकृतिक घटनाओं का विचार करना चाहिए; तथा (४) अन्य आवश्यक बातों का संक्षिप्त विचार जिन से फौसीलों को वैज्ञानिक प्रमाणों के रूप में प्रस्तुत करने में सुगमता होती है।

"फौसील" क्या वस्तु है? हम जानते हैं कि कीड़े मकौड़े टिड्डी आदि प्राणी जब मर जाते हैं तब थोड़े दिनों के पश्चात् उनके नाम निशान तक भी नहीं रहते; पृथिवी पर पड़े २ ही उनकी मिट्टी बन जाती है। इसका कारण यह है कि इन सूक्ष्म प्राणियों के शरीर बहुत नर्म अवयवों के बने होते हैं और ये अवयव मिट्टी में मिलते ही मिट्टी मय हो जाते हैं। उच्च कोटि के प्राणियों की भी लगभग यही अवस्था है। अपनी शरीर की रक्षा के लिए जो प्राणी शंख, सिप्पी आदि के कवच बनाते हैं उन के शरीर का कोई अवयव नहीं बचता, केवल ये कवच कवच ही बच जाते हैं, क्योंकि मिट्टी का इन पदार्थों पर कोई प्रभाव नहीं होता। इन कवच-शंखधारी प्राणियों से ऊपरली श्रेणियों के जन्तु पृष्ठ वंशधारी प्राणी हैं।

मिट्टी में न गलने वाले इनके शरीर के अवयव अस्थियां तथा दांत हैं। श्मशान भूमि के पास तथा नदियों के किनारों पर जहां मृत शरीरों की दहन विधि होती है शरीर के केवल अस्थिमय पञ्जर तथा दांत युक्त सिर की खोपड़ियां प्रायः सब ने देखी होंगी। मरी हुई गौ, बैल, कुत्ता आदि प्राणियों की इसी प्रकार की अवस्था भी सब को ज्ञात है। पृष्ठ वंशधारी प्राणियों के मर जाने पर यदि उसी समय वे मिट्टी वा कीचड़ में दब जांय तो वहां पड़े २ गल कर उन के केवल अस्थि पंजर शेष रह जाते हैं। अस्थि पंजरों की यह अवस्था सैंकड़ों हज़ारों तथा लाखों वर्षों तक भी ऐसी ही बनी रहती है; अस्थियों पर मिट्टी का कोई प्रभाव नहीं होता। हां कभी कभी इनके साथ अन्य खनिज पदार्थों की मिलावट हो जाती है; तिस पर भी इनके आकार वैसे के वैसे ही रहते हैं और मिलावट के द्रव्यों को हटाने के पश्चात् अस्थियों का असली नमूना निकल आता है। यही कारण है कि पुराने समय की अस्थियां जिनको "फौसील" कहते हैं प्राप्त होने पर उनके संबंध में यत् किञ्चित् निश्चय करने में अन्वेषकों को सहायता प्राप्त होती है। ऊपर दिये हुए विवेचन से "फौसील" वा प्रस्तरीभूतप्राणी किसे कहते हैं यह समझने में कठिनता नहीं रहेगी।

फौसीलों का संग्रह अपूर्ण क्यों है? तीन कारणः— लुप्त जंतु शास्त्र की प्रस्तावना में हमने केवल संकेत रूप में यह बतलाया था कि इस शास्त्र की सामग्री अपूर्ण है। ऐसी बात क्यों है और यह संग्रह पूर्ण हो सकता है या नहीं इस पर अब थोड़ा विस्तार पूर्वक विचार आवश्यक है।

१ पृथिवी के कुल विस्तार को देखिए। इसका $\frac{3}{5}$ भाग तो पूर्ण जलमय है; अतः यह भाग तो अन्वेषकों के लिये सर्वथा गया

गुजरा है। इस पर कईयों के मन में यह शंका उठेगी कि अन्वेषकों को समुद्रतले पहुंचने का प्रयोजन ही क्या है तो इसका उत्तर भूगर्भ शास्त्र देता है। इस शास्त्र के वेत्ताओं का कथन है कि आजकल जहां सागर तथा महा सागर विद्यमान दीखते हैं वे अनादि काल से ही वहां स्थित नहीं, अर्थात सम्भव है कि उस स्थान पर का भूभाग, जहां आजकल समुद्र तथा महा समुद्र है किसी समय खुश्क हों, और उस पर भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी भी विचरते हों, और इस प्रकार उन प्राणियों के अस्थि पन्जर भी वहां दबे विद्यमान हों। एवं समुद्र तल पर जो अस्थि पन्जर विद्यमान होंगे वे अन्वेषकों की पहुंच से प्रायः बाहिर हैं। इस प्रकार प्रथम ही अन्वेषकों का क्षेत्र संकुचित हो गया। अब रहा पृथ्वी का $\frac{2}{5}$ भाग। क्या इसकी अन्वेषणा भी पूर्णतया हो सकती है? नहीं, क्योंकि उत्तर ध्रुव के पास के स्थानों में अत्यन्त सर्दी होने के कारण वहां की अन्वेषणा नहीं हो सकती। यह तो हाल है शीत कटि बंध का। अत्यन्त उष्ण कटि बन्ध में भी अत्यंत गर्मी के कारण कोई कार्य नहीं हो सकता। अन्वेषण के लिए केवल समशीतोष्ण तथा साधारण शीत तथा उष्ण प्रदेश हैं। यहां की भी क्या दशा है? पृथ्वी की केवल ऊपर की तहों में लुप्त जन्तुओं की खोज हो सकती है। असंख्य वर्षों के पूर्व जो प्राणी विद्यमान थे और जिनकी अस्थियां पृथ्वी की अत्यन्त निचली परतों में बन्द पड़ी हैं उनसे सर्वदा के लिए अन्वेषकों को हाथ धोकर बैठना पड़ता है; उनको प्राप्त करना अशक्य है। यदि ठीक कहा जाय तो पृथ्वी के केवल थोड़े से ही भाग को ये लोग यत्किंचित प्राप्त कर सकते हैं; इससे अधिक पर उनका कुछ भी वश नहीं चलता। इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस शास्त्र द्वारा लुप्त जन्तुओं की पूर्ण परम्परा का प्राप्त न होना कोई विशेष आश्चर्य का विषय नहीं।

२----प्राणियों के नरम तथा कोमल शरीर इस अपूर्णता के बढ़ाने में किस प्रकार सहायक होते हैं यह हम पहिले बता चुके हैं; केवल उन प्राणियों की मिट्टी से रक्षा होती है जिनके शरीर के अन्दर, अस्थि, शंख, या सिप्पियां विद्यमान होती हैं। सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र से दीख पड़ने वाले अमीबा को पृथ्वी की तहों में ढूंढने की आशा रखना किसी जल से भरे हुए तालाब में नमक की छोटीसी डली डालकर उसको फिर प्राप्त करने की आशा के समान हास्यास्पद है। हैड्रा तथा अन्य पृष्ट वंश विहीन कीड़े, मकोड़े, टिड्डी, भ्रमर, तितरी इत्यादि प्राणी भी इन तहों के अन्दर नहीं मिल सकते। अन्वेषकों को केवल शंख, सीप, अथवा हड्डी वाले प्राणी मिल सकते है और आज तक इनको इन्हीं की प्राप्ति हुई है। इन्हीं प्राणियों की प्राप्ति होने का एक अन्य कारण भी है। विकास की परंपरा बतलाती है कि पृष्ठ वंश विहीन प्राणियों की उत्पत्ति पहले होती है और तत्पश्चात् पृष्ट वंश धारियों की। इससे स्पष्ट है कि पृथिवी की निचली तहों में प्रथम बने हुए पृष्ठवंश विहीन प्राणी मिलने चाहिए और उपरली तहों में अनिक उन्नत हुए पृष्टवंशयुक्त प्राणी मिलने चाहिए।

३—चट्टानों में मृत प्राणियो की रक्षा होने के लिये इतना ही केवल पर्याप्त नहीं कि उन प्राणियो के शरीर अस्थियुक्त हों, अन्य परिस्थिति पर भी बहुत कुछ निर्भर रहता है; उदाहरणार्थ, कल्पना कीजिये कि एक चतुष्पाद प्राणी मरता है और मरकर ऐसे स्थान पर पड़ा रहता है जहा की ज़मीन बहुत नरम तथा दलदली है; ऐसे स्थान पर इस प्राणी की भूगर्भ में रक्षा होने की संभावना नहीं है, क्योंकि उसके मास के भाग गलेंगे ही, परंतु हड्डियों के भी सब भाग छिन्न भिन्न हो जायंगे जिससे प्राणि का कुछ भी ठिकाना नहीं रहेगा; यदि यह कठिन पथरीली

भूमी पर पड़ा रहे तो गिद्ध, शृगाल, और अन्य मांस भक्षक प्राणी उसे खा जावेंगे और उस का नामो निशान भी नहीं रहेगा; न केवल मांस को ही अपितु हड्डियों को भी कुत्ते तथा शृगाल आदि जन्तु चबा चबा कर निगल जावेंगे। हां यदि यह प्राणी ऐसे स्थान पर पड़े जहां उसके ऊपर तत्काल मिट्टी या रेत की तह जम सके तब तो वहां इसकी रक्षा होने की सम्भावना है। यदि किसी कारण से प्राणियों के शरीर के अवयव टूट फूट कर अव्यवस्थित हो जांय तो भी उनकी कोई कीमत नहीं रहती, क्योंकि उन के भिन्न भिन्न भागों को जोड़ना अन्वेषकों के लिये असम्भव सा हो जाता है। देखिए, कितनी कठिनता है। यदि ऊपर लिखित बातों के अनुकूल परिस्थिति हो तब कहीं प्राणियों की रक्षा होती है और उनके फौसील बनते हैं। इन्हीं कारणों से बहुत थोड़े प्राणियों के फौसील बने हैं और उनमें से अन्वेषकों को बहुत थोड़े प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार कुछ भूगर्भ विषयक (Geological) और कुछ प्राणि विषयक (Biological कारण हैं जिन से लुप्त जन्तु शास्त्र के प्रमाण पूर्णतया प्राप्त नहीं होते। अन्वेषकों को क्या क्या कठिनाइयां होती हैं इस पर यदि हम पूर्ण रूपसे विचार करें तो लुप्त जन्तु शास्त्र की अपूर्णता पर हमें कोई आश्चर्य प्रतीत न होगा। अपितु, अन्वेषकों ने जितना कुछ प्राप्त कर लिया है और उसके आधार पर प्राणियों की जो परम्परा ज्ञात कर ली है उस पर हमें आश्चर्य होगा। इतनी कठिनाइयों का सामुख्य करते हुए और प्रकृति की ओर से इतनी विरोधी बातों के होते हुए भी अन्वेषकों ने जितना प्राप्त किया है, वह इस शास्त्र के स्थूल तत्वों के ज्ञान के लिये पर्याप्त है।

भूगर्भ शास्त्र की सहायता इस शास्त्र को आवश्यक है:-पृथ्वी की भिन्न भिन्न तहों में जिन जिन प्राणियों का [illegible]

प्राणियों के आपेक्षिक कालों का निश्चय करना लुप्त जन्तु शास्त्र का एक मुख्य कर्तव्य है और इसलिये यह आवश्यक है कि भूपटल, उसके तह, तथा उन तहों के बनने के समय, का सविस्तर वर्णन हो जाय। यह भूगर्भ शास्त्र का क्षेत्र है और इस अंश में भूगर्भ शास्त्र की सहायता इस शास्त्र को अपेक्षित है। भूतल के तहों का काल निश्चित करने के लिये यह आवश्यक नहीं कि पृथ्वी की उत्पत्ति से आज तक का काल * पहले निश्चित होजाय। पृथ्वी की आयु का निश्चय करने के लिये वैज्ञानिकों के पास काल्पनिक सिद्धान्तों के सिवाय अधिक प्रबल साधन विद्यमान नहीं हैं। लुप्त-जन्तु-शास्त्र को इस बात से भी कोई प्रयोजन नहीं कि किस प्रकार यह पृथ्वी बन गई और किन कारणों से इस पर प्राणियों की उत्पत्ति हुई।

---

* पृथ्वी की आयु के सम्बन्ध में भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं(Geologists)का और भौतिक विज्ञान के वेत्ताओं (Physicists) का एक मत नहीं है। यह पृथ्वी जब से इस योग्य बनी कि इस पर जीवधारी प्राणी रहने लगे तब से आज तक कितना अवसर गुज़रा है इस पर भिन्न भिन्न विचार प्रस्तुत किये गए हैं। इस प्रश्न को हल करने के लिये पृथ्वी के गर्भ में जो भिन्न भिन्न तह बने हुए हैं उनके बनने की गति पर, अथवा वर्षा से और नदियों के बहावों से पृथ्वी का धरातल जितना कटता जाता है उसकी गति पर भूगर्भ वेत्ताओं का सब आधार है। भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं के इन आधारों पर हम यह शंका कर सकते हैं कि उन्होंने आकस्मिक घटनाओं से होने वाले महान् महान् परिवर्तनों का विचार नहीं किया। भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं के गणित से पृथ्वी की आयु जब से इस पृथ्वी पर जीवधारी प्राणी रहने लगे हैं १०, ००, ००, ००० दस करोड़ वर्षों के लगभग निकलती है। इन भूगर्भ शास्त्र वेत्ताओं का, पृथ्वी की आयु की गणना करने का

इस शास्त्र में, पृथ्वी तथा प्राणियों की उत्पत्ति होनेके पश्चात् जो जो परिवर्तन हुए हैं उन पर विचार करने की आवश्यकता है । यह माना कि ऐसे प्रश्न जगदुत्पत्ति वादियों के लिये बहुत मनोरञ्जक और बहुत आवश्यक हैं, तथापि, विकास वादियों को इन अनावश्यक प्रश्नों पर सिर तोड़ विवाद करने का कोई प्रयोजन नहीं है ।

अध्याय (२)

भूगर्भ शास्त्र की कुछ आवश्यक वातों पर विचार ।

समुद्र, पर्वत, नदिया, आदि का आरम्भ कैसे हुआ ?- चट्टान कैसे वनते हैं तह वाले चट्टान- भू गर्भ की घटनाओं पर एकदम विश्वास क्यों नहीं होता ?- नदियों से होने वाले परिवर्तन- प्राकृतिक घटनाओं से फौसीलों के रूपान्तर- पृथ्वी के अन्तरीय तहों का वर्णन-चट्टान किसे कहते हैं- पृथ्वी की अन्तरीय रचनाओं पर वैज्ञानिकों के अनु-

---

अत्यन्त नवीन उपाय यह है: नदियों का जल प्रतिवर्ष समुद्र में जाने से समुद्र का जल प्रतिवर्ष अधिक अधिक खारा होता जाता है; अर्थात् समुद्र के जल में **सोडियम** (Sodium) की राशि प्रतिवर्ष बढ़ती जाती है; रसायन शास्त्र (Chemistry) की सहायता से इन दोनों का हिसाव करके इन्होंने यह अनुमान लगाया हुआ है कि पृथ्वी की आयु ९, ७६, ००, ००० नौ करोड़ से १०,००,००,००० दस करोड़ वर्षों के वीच में है। भौतिक विज्ञान वेत्ताओं (Physicists) के गणित के प्रमेय-सूर्य की उष्णता का आरम्भ उसकी आयु, और पृथ्वी के ठंडे हो जाने की गति आदिक हैं । इन प्रमेयों से उन्होंने जो मान लगाया है वह अपेक्षया थोड़ा है । प्रोफेसर पेरी लिखते है कि रेडियम की खोज होजाने से भौतिक शास्त्र वेत्ता पृथ्वी की आयु का मान नहीं लगा सक्ते ।

मान- चट्टानों के प्रकार- तह युक्त चट्टानों तथा उनके फ़ौसीलों पर सविस्तर विचार- मत्स्यश्रेणी का प्रादुर्भाव- सर्पश्रेणि का आरम्भ- विष्णु और मत्स्य पुराण-पक्षी तथा स्तनधारियों का आरम्भ- सारांश।

समुद्र, पर्वत, नदियां, आदि का आरम्भ कैसे हुआ:—इस पृथ्वी का आरम्भ कैसे हुआ और इस पर समुद्र, पर्वत, नदियां, आदि कैसे बने इस पर वैज्ञानिकों की बहु सम्मति यह है कि अत्यन्त तेजोमय सूर्य से पृथक् होने के पश्चात् इस पृथ्वी का पिन्ड कुछ काल तक तप्त तथा अर्ध कठोर अथवा अर्ध तरल अवस्था में रहा-वर्तमान समय में जिस प्रकार कठोर प्रतीत होता है प्रथम वैसा न था, पश्चात् यह पिन्ड ठण्डा होने लगा। जब पर्याप्त ठंडा होगया तब उसके धरातल पर के द्रव पदार्थ कठोर स्फटिक (Crystal) आकार के बनने लगे और गुरुत्वाकर्षण (Force of Gravity) के कारण पृथ्वी के धरातल पर मरोड़ पड़ने लगे; जिस प्रकार वृक्षों के हरे पत्ते सूखने पर ऊपर नीचे मुड़ जाते हैं उस प्रकार धरातल का कुछ भाग अन्दर की ओर खींचा गया और कुछ ऊपर की ओर उठ गया। इनमें से ऊपर उठे हुए स्थानों को पर्वत, पहाड़, आदि संज्ञाओं से पुकारा जाता है। और अन्दर की ओर खींचे हुए स्थानों को गहरे खड्ड कहते हैं। इन गहरे खड्डों में शनैः शनैः वर्षादि का जल इकट्ठा होकर कहीं बड़े २ तालाब और कहीं समुद्र बन गये।

चट्टान कैसे बनते हैं:- प्राकृतिक परिवर्तनों का यहीं अन्त नहीं हुआ। इन ऊपर उठे हुए पर्वतों के शिखरों पर वायु, वर्षा तथा बर्फ के शनैः शनैः आघात होते गये और उन आघातों से पर्वतों के शिखर घिसते गये और वहां से पर्वतों के तले धीरे धीरे प्रस्तर, कंकरी, रेता, और मिट्टी इकट्ठी होने लगी; और शनैः शनैः पृथ्वी के धरातल पर जो मसाला एकत्रित होता गया उससे **प्रारम्भिक**

चट्टान बने । इन चट्टानों का नाम **तह वाले चट्टान** हैं, यह नाम इस लिये दिया गया है कि पर्वतों के शिखर पर से गिर गिर कर जो मिट्टी और रेता नीचे आ जाते हैं उनके तह बन जाते हैं ।

तह वाले चट्टानः- पृथ्वी के ठंडे हो जाने पर प्रारम्भ में जो स्फटिकमय चट्टान बने, उनसे इन तह वाले चट्टानों को पृथक् करना चाहिए । पृथ्वी के धरातल पर भिन्न भिन्न प्राकृतिक घटनाओं गरम झरना, ज्वालामुखी, उत्क्षेप भूचाल आदि के आघातों से बहुत प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं; इन से कहीं पर्वत बनते रहते हैं तो कहीं पर्वतों के स्थान पर समुद्र । प्रकृति में इस प्रकार के नए नए पर्वत, तालाब, समुद्र और चट्टानों के बनने का अव्याहत क्रम शुरू है । पर्वतों के शिखरों पर प्राकृतिक घटनाओं का प्रभाव होकर तथा अन्य कारणों से भूचाल के बड़े बड़े चट्टान बन जाते हैं ।

ऐसी भूगर्भ शास्त्र की घटनाओं पर एक दम विश्वास क्यों नहीं होता ? इस का कारण यह है कि मनुष्य के मन पर आकस्मिक घटनाओं का बहुत प्रभाव होता है; जैसे ईस्वी सन् १८६७ में आई हुई गंगा नदीकी बाढ़, १९०५ में कांगड़ा, धर्मशाला आदि स्थानों का भूचाल अथवा १९०८ में दक्षिण हैद्राबाद में हुई अति वृष्टि इत्यादिकों ने हम पर जितना प्रभाव डाला है उतना शनैः शनैः होने वाली दैनिक घटनाएं नहीं डालतीं । यह बात दूसरी है कि ये धीरे धीरे होने वाली दैनिक घटनाएं प्रकृति में जितना परिवर्तन करती हैं उससे अत्यन्त कम परिवर्तन, चाहे ये कितने ही उग्र स्वरूप वाली क्यों न हों, ये आकस्मिक घटनाएं करती हैं; आकाश के साथ स्पर्धा करने वाली पर्वतों की सीधी चोटियों की ओर जब हम अपनी दृष्टि फैंकते है तो यह विश्वास नहीं होता कि इन पर वर्षा, वायु, या बर्फ़ का कोई

प्रभाव भी हो सकता है। परन्तु वास्तव में इन प्राकृतिक अस्त्रों का इन पर बड़ा प्रभाव होता है मानो कि अपनी महत्ता में फूले हुए पर्वतों के विशाल अभ्रंलिह मस्तकों को नमा, उनके अभिमान को चूर करने के लिये वर्षा, वायु, तथा अन्य घटनाएं प्रकृति के नियत किये हुए शासन कर्ता हैं। चौमासे में पर्वतों पर एकत्रित हुए २ वर्षा के जल ने अपने लिये जो रास्ते बनाये होते हैं वे कभी कभी बड़े भयानक प्रपात (falls) के रूप में परिणत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, दक्षिण में **गैरसप्पा** का और मैसूर (Mysore) के पास **कावरी** का **प्रपात** है और इसी प्रकार कश्मीर में भी एक प्रपात है।

नदियों से होने वाले परिवर्तनः-नदियों के जल से भूपृष्ट पर कैसे आश्चर्य जनक परिवर्तन होते हैं उनकी कल्पना प्रत्यक्ष देखने से ही अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकती है। नदियों के जल से प्रतिवर्ष भूमि का बहुत सा भाग कटता जाता है, जो समुद्र में पहुंच कर उसके तल को ऊंचा करता रहता है। भूमि का जो भाग इस प्रकार कटता जाता है उस का मान गणित के द्वारा लगाया जा सकता है। बड़ी २ नदियों के विषय में इस सम्बन्ध के जो मान लगाये गये हैं उनमें कुछ निम्न प्रकार के हैं:—(१ गंगा नदी के प्रवाह का विस्तार १,४३,००० एक लाख तेतालीस हज़ार वर्ग मील है और ८२३ वर्षों में इतने स्थान पर से एक फुट मिट्टी की तह जल के प्रवाह में घुल जाती है। (२) होआंगहो(Hoang-Ho) नाम की, गंगा नदी के समान की, एक प्रचन्ड नदी चीन में है; उसका विस्तार ७,००,००० सात लक्ष वर्ग मील है, और उसके जल प्रवाह से एक फुट मिट्टी १४६४वर्षों में वह जाती है। (३) अमरीका (America) देशकी मिसिसिपी नदी का विस्तार ११,४७,००० ग्यारह लक्ष ४७ हज़ार वर्ग मील है, और ६००० वर्षों में उससे भूमि का एक फुट भाग कट जाता है।

ऊपर दिये हुए दो तीन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत हो सकता है कि केवल नदियों के कारण ही भूमि पृष्ट पर कैसे कैसे परिवर्तन हो जाते है अन्य प्राकृतिक शक्तियों से भी इस प्रकार के परिवर्तन होते रहते है ।

प्राकृतिक घटनाओं से फ़ौसीलों के रूपांतरः— इन परिवर्तनों से पृथ्वीपटल पर नये नये तह बनते जाते हैं; कभी ऐसा भी होता है कि नये परिवर्तनों द्वारा पुराने बने हुए तह कटते जाते हैं । उदाहरणार्थ, जिन जिन स्थानों में से नदियां अपना मार्ग निकालती हैं उन उन स्थानों में बने हुए पुराने तह कट जाते हैं। नये तहों में नये फ़ौसील बनने की सम्भावना होती है और जो पुराने तह कट जाते हैं उन में विद्यमान पुराने फ़ौसीलों के कट जाने की भी सम्भावना होती है ।

२—फ़ौसीलों का नाश वा उन में परिवर्तन अन्य रीति से भी हो जाते हैं; उदाहरणार्थ, कल्पना करो कि पृथ्वी के ऊपर एक तह बन गई है और उस के अन्दर कुछ फ़ौसील पड़े हुए है; यदि इस तह पर दूसरी तह बन जाय तो इस पहिली तह में जो फ़ौसील हैं उन पर, ऊपर की तह के कारण, पूर्व की अपेक्षा अधिक दवाव पड़ेगा; इस प्रकार यदि बहुत सी तहें बनती जायंगी तो सम्भव है कि सब से निचली तह पर इतना दवाव पड़ जाय कि इस दवाव के कारण उस तह में पड़े हुए फ़ौसील पिघल जावें और उन में बहुत कुछ परिवर्तन आ जाय ।

३—फ़ौसीलों के लिये अन्वेषण करने वाले वैज्ञानिक, अन्वेषण करते समय ऊपर बताई हुई और उन के समान अन्य बातों पर पूर्ण रीति से ध्यान देते हैं । अन्वेषकों का इस बात पर पूर्ण विश्वास होता है कि जिन कारणों से पुराने समय में पृथिवी

पटल पर भिन्न २ चट्टान बन गये थे उन्हीं कारणों से आज कल भी पृथिवी पटल पर चट्टान बन रहे हैं। इस विश्वास से वे कार्य्य में प्रवृत्त होते हैं और पुरातन समय के बने हुए चट्टानों का तथा उन में पड़े हुए फ़ौसीलों का निर्णय करते हैं। भिन्न भिन्न समय में जो जो चट्टान बने हैं *उनका प्रथम सविस्तर विचार करके फिर उनमें जो फ़ौसील* मिलते हैं उनको वे क्रम बद्ध कर देते हैं।

पृथ्वी के अन्तरीय तहों का वर्णन—हम भी पृथ्वी पटल की तहों का अन्तरीय वर्णन संक्षिप्त रीति से करेंगे।

जिस किसी को नदियों के किनारे किनारे कुछ दूरी तक भ्रमण करने का अवसर प्राप्त हुआ हो वह भले प्रकार जानता है कि बड़ी बड़ी चट्टानों को काट कर नदियां किस प्रकार अपना मार्ग निकालती हैं। उसको पृथिवी के तहों की कल्पना भी ठीक हो सकती है। जहां २ नदीके प्रवाहसे चट्टान कटे हुए होते हैं वहां वहां नदीके दोनों किनारों की ओर देखा जाय तो नीचे से ऊपर तक एक दिवार सी खड़ी प्रतीत होती है, उस में बहुत सी तहें दिखलाई देती हैं, उन में से प्रत्येक तह कुच्छ फुट चौड़ी होती है; एक तह केवल पत्थर की, दूसरी केवल मिट्टी की, और तीसरी केवल पत्थर की, इस प्रकार उन तहों की रचना प्रतीत होती है। साधारण बुद्धि वाले को भी इस प्रकार की दिवार को देखने पर ज्ञात होगा कि नीचे से ऊपर तक क्रम से भिन्न भिन्न समयों में ये तह बनते गए होंगे। अपने भारतवर्ष में इस प्रकार के दृश्य स्थान स्थान पर विद्यमान हैं। हरिद्वार से १०-१२ मील की दूरी पर उत्तर की ओर ऋषीकेश है और उस से उत्तर की ओर तीन मील की दूरी पर लक्ष्मणझूला नाम का एक अति रमणीय और सौभाग्य सुन्दर स्थान है। ऋषीकेश से लक्ष्मणझूले तथा उस से कुछ और आगे तक जाते हुए किसी को

भी इस प्रकार के चट्टानो की तथा तह युक्त दिवार की बहुत अच्छे प्रकार कल्पना हो सकती है। पृथिवी पटल में स्थान स्थान पर इस प्रकार के तह बने हुए हैं। परन्तु सब स्थानों में एक ही प्रकार के तह विद्यमान नहीं होते; परिस्थिति के अनुसार इन तहों का क्रम, मोटाई तथा बनने की रीति भिन्न भिन्न है। भूगर्भशास्त्र के वेत्ता एक ही देश के भिन्न भिन्न प्रान्तों का समानत्व वा पृथक्त्व, इन तहों के क्रम के अनुसार बतला सकते हैं; न केवल एक ही देश के प्रान्तों का समानत्व या पृथक्त्व परन्तु भिन्न भिन्न देशों के समानत्व या पृथक्त्व को भी वे बतला सकते हैं। पृथिवी की पटल पर के भिन्न भिन्न तहों के बनने के काल का निश्चय कर दिया जाय तो उनके अन्दर जो फ़ौसील मिलते हैं उनके समय का तथा क्रम का निश्चय करने में सुगमता होगी।

"चट्टान" किसे कहते है:—चट्टान शब्द से शिला वा पत्थर इसी के सदृश अन्य कठिन वस्तु का हमारे मन में बोध होता है। परन्तु भूगर्भ शास्त्र में वैज्ञानिकों ने इस शब्दका वैसा अर्थ नहीं किया है; भूगर्भ के वेत्ताओं ने भूपटल के अन्दर के सब पदार्थों को—चाहे वे रेता वा कीचड़ के समान नरम हों वा पत्थरोंकी न्याई कठिन हों—चट्टान शब्द से बोधित किया है।

पृथ्वी की अन्तरीय रचना पर वैज्ञानिकों के अनुमान:—पृथ्वी की अन्तरीय रचना का बहुत थोड़ी दूर तक का ज्ञान वैज्ञानिकों को हुआ है; पृथ्वी के पृष्ट से केवल ३६ मील की दूरी तक नीचे की ओर वे पहुंचे है, और यह दूरी पृथ्वी के केन्द्र से ऊपर के धरातल तक की दूरी का शतांशवां भाग भी नहीं है; पृथ्वी के केन्द्र से पृष्ट तक की दूरी ४००० मील है अतः ठीक ठीक देखा जाय तो यह दूरी उस दूरी का लगभग एकसौदसवां भाग है (३६ ÷ ४००० = $\frac{१}{१११}$ लगभग,

पृथ्वी के और भी नीचे क्या है तथा वहां का क्या दृश्य है इसकी किसी को कल्पना भी नहीं हो सकती । पृथ्वी की अन्त: स्थिति के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का अत्यन्त आधुनिक विचार यह है कि पृथ्वी के ऊपर के कठोर धरातल के नीचे १०० एकसौ मील तक के पदार्थ अत्यन्त उष्ण और द्रव अवस्था में हैं और उसके नीचे के केन्द्र तक के पदार्थ अधिकाधिक उष्ण और गैसीय अवस्था में हैं । पृथ्वी की आन्तरीय दशा कुछ भी हो, ज्वालामुखी पर्वतो को, और भूचाल की घटनाओं को देखकर हम यह कह सकते है कि अत्यन्त तेज: पुज सूर्य से पृथक् होने पर जो उष्णता इस पृथ्वी में थी वह सब की सब अब तक नष्ट नहीं हुई है । उसका कुछ भाग अभी तक शेष है ।

चट्टानों के प्रकार— चट्टानों के दो मुख्य भेद हैं— एक पृथ्वी के ठंडे होने पर बने हुए (१) स्फटिक मय चट्टान (Crystalline Rocks) और (२) गारा,मिट्टी,पत्थर, कोयला, चूना,आदि की तहों से बने हुए तहयुक्त चट्टान (Stratified Rocks)। स्फटिक मय चट्टान अत्यन्त नीचे है और उनके ऊपर गर्मी, सर्दी, वायु, वर्षा, आदि के परिणामों से बने हुए तह युक्त चट्टान है । (३)इन के अतिरिक्त तीसरे प्रकार के भी चट्टान होते हैं ये रूपान्तरित चट्टान (Metamorphic Rocks)कहलाते हैं; वास्तव में ये तीसरे प्रकार के चट्टान एक समयमें तह युक्त चट्टान थे परन्तु इनके ये तह, दबाव और उष्णताके कारण पिघल जाने से नष्ट होगये और इनकी रचना स्फटिक मय चट्टानों के समान होगयी; उनका नाम भी इसी कारण रूपान्तरित चट्टान रक्खा हुआ है; इन चट्टानों के अन्तरीय फौसील भी पिघल कर नष्ट हो गये हैं और फौसीलों की प्राप्ति की दृष्टी से इनका अब कुछ भी महत्व नहीं है । स्फटिक मय चट्टानों के ऊपर और तह युक्त चट्टानों के नीचे इनका स्थान है। सबके निचले स्फटिक चट्टान कितनी गहराई तक

पहुंचे हुए है, इसका अबतक निश्चय नहीं हुआ और क्योंकि उनके अन्दर कोई फ़ौसील नहीं हैं अतः उनका विचार करना हमारे लिये आवश्यक भी नहीं।

तह युक्त चट्टानों तथा उनके फ़ौसिलों पर सविस्तर विचारः— तह युक्त चट्टानों के फ़ौसीलों से ही किस क्रम से प्राणियों की इस संसार में उत्पत्ति होती गयी इसका अच्छे प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है।

इन तह युक्त चट्टानों के जो पांच विभाग किये हुए हैं उनको सुगमता के लिए, पट्टिका (Tabular Form) में पृ० १२५पर हम देते है। उस में उन विभागो के नाम, उन के बनने का काल, उन की घनता, तथा उन में किस किस प्रकार के फ़ौसील मिले हैं और उन फ़ौसीलों के द्वारा प्राणियों का कैसा कैसा क्रम प्रतीत हुआ है इत्यादि बातें दिखलाई हैं।

इन चट्टानों में से सबसे पहले " अत्यन्त प्राचीन " चट्टान के अन्दर किसी पूकार के फ़ौसील विद्यमान नहीं हैं; उनका नाम भी इसलिये "जीवन रहित चट्टान" रक्खा गया है। इनके तह ३०,००० तीस हज़ार फुट तक गहरे हैं और इनके बनने में अनुमान से लगभग २,००,००, ००० दो करोड़ वर्ष लगे हैं। कुल तह युक्त चट्टानों के बनने के लिये जितना समय लगा है उसके पांच भाग किये जांय तो दो विभाग इन्हीं के बनने में व्ययित हुए हैं। जब प्रारंभ में ये चट्टान बन रहे थे, उस समय वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी पर भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तन तो हो रहे थे परंतु उनकी गति अत्यन्त धीमी थी। वे बताते हैं कि इस दीर्घ काल में जीवन की उत्पत्ति भी होगई थी, यद्यपि यह कैसे हुई होगी इस बात पर हमें विचार नहीं करना है; इसका हमारे विषय से कोई घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है।

तह्युक्त चट्टानों की सविस्तर पट्टिका (Tabular Form)

	भूगर्भीय काल	बनने के लिये वर्ष संख्या	गहराई (फुटों में)	किन किन श्रेणी के प्राणियों के फोसील इन में प्राप्त हुये और होते हैं
१	अत्यन्त प्राचीन (Archæn) अथवा जीवन रहित Azoic	२,००,००,००० २ करोड़	३०,००० ३० हज़ार	... ...
२	प्राथमिक Palæyoic अथवा प्रारम्भिक Primary	२,१०,००,०० २ करोड़ दस लाख	१,०६,००० १ लाख, ६ हज़ार	पृष्ट वंश रहित प्राणी तथा मत्स्य मण्डूक और सर्प वर्ग
३	माध्यमिक Mesozoic अथवा द्वितीय कोटिस्थ Secondary	४०,००,००० (४० लाख)	२३,००० (२३ [illegible])	पक्षी तथा स्तन-धारी वर्ग
४	अर्वाचीन Cainozoic अथवा तृतीय कोटिस्थ Tertiary	५०,००,००० (५० लाख)	२५,००० (२५ हज़ार)	सब प्रकार के प्राणी
५	आधुनिक Recent अथवा चतुष्क Quaternery	...	६०० छःसौ	वर्तमान समय की जातियां

अब इसके अगले चट्टान की ओर चलिये; इस चट्टान को—प्रारम्भिक काल का चट्टान कहते हैं और इसकी १,०६,००० एक लाख छः हज़ार फुट की गहराई है। इतना बड़ा स्तर एकत्रित होने के लिये अनुमान से २, १०, ००, ००० दो कोटि दस लक्ष वर्ष लगे हुए है। इस काल में पृष्ट वंश रहित प्राणियों तथा पृष्ट वंश युक्त प्राणियों की श्रेणियों में से निचली दो श्रेणियों की, अर्थात् मत्स्य तथा मण्डूक वर्ग की-विद्यमानता हुई प्रतीत होती है। पृष्ट वंश युक्त प्राणियों की उपरली श्रेणियों का, अर्थात्, पक्षियों तथा स्तनधारियों के फ़ौसिलों की इस चट्टान में विद्यमानता नहीं; केवल निचली श्रेणियों के प्राणी फ़ौसील अवस्था में विद्यमान हैं। यह एक बड़ा भारी प्रमाण है जिससे हम यह कह सकते हैं कि प्रथम पृष्ठ वंश रहित प्राणियों की उत्पत्ति हुई और पश्चात् पृष्ठ वंश युक्त प्राणियों की हुई। पिछले दो शास्त्रों के प्रमाणों द्वारा भी हम इसी प्रकार के निश्चय पर पहुंचे थे और अब इस शास्त्र से तो यह निश्चय पुष्ट हो जाता है। इस चट्टान में पृष्ठ वंश विहीन प्राणियों के फ़ौसील बहुत कम मिलते हैं, और इसका कारण भी बहुत स्पष्ट है। हम पूर्व बतला चुके हैं कि इन प्राणियों के शरीरों में अस्थियां नहीं होतीं अतः इन के फ़ौसील नहीं बनते। इस चट्टान में जितने फ़ौसील मिलते हैं उन में ऐसा कोई भी फ़ौसील नहीं पाया जाता जिससे यह प्रतीत होजाय कि इस काल में विद्यमान प्राणियों की शारीरिक रचना किसी प्रकार से संकीर्ण थी। इस से यह भी सिद्ध होता है कि जब तक सीदी सादी रचना के प्राणियों की उत्पत्ति नहीं होती तब तक संकीर्ण रचना के प्राणियों की भी नहीं हो सकती। सीदे सादे प्राणियों के पश्चात् ही संकीर्ण रचना के प्राणियों का विकास होता है। संक्षेप से हम यह कह सकते हैं कि तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र के परि-

णामों के साथ इस शास्त्र के परिणामों का पूर्वापर विरोध नहीं है अपितु पुर्ण संगति है।

तृतीय और चतुर्थ चट्टानों में जो प्रस्तरी भूत प्राणी (फौसील) हैं वे द्वितीय चट्टान के प्राणियों की अपेक्षा अधिक महत्व के हैं। इस का एक कारण यह है कि वे संख्या में अधिक हैं और दूसरा मुख्य कारण यह है कि इन तहों में मिलने वाले प्राणियों का वर्तमान समय के प्राणियों के साथ बहुत सादृश्य है।

तृतीय चट्टान का भूगर्भीय काल " माध्यमिक है—" माध्यमिक " नाम इस लिये रखा गया है कि इस समय में जो प्राणी विद्यमानता पाये हुए थे उन की अवस्था मध्यवर्ती प्रतीत होती है: उन का पूरा सादृश्य प्रारम्भिक प्राणियों के साथ नहीं है, और नहीं इन के पश्चात् विकासित हुए हुए अर्वाचीन काल के प्राणियों के साथ है।

चतुर्थ चट्टान का भूगर्भीय काल " अर्वाचीन " कहलाता है, इसलिये कि इस काल में जो प्राणी निर्मित हुए थे वे वर्तमान के प्राणियों के समान थे; इस काल में पृष्ट वंश धारियों का पर्याप्त विकास हुआ था; पृष्ट वंश धारियों की उच्च श्रेणियों के प्राणी निर्मित हो गये थे; और पृष्ट वंश विहीन विभाग के प्राणियों की भी अधिक उप जातियां निर्मित होगई थीं।

पृष्ट वंश धारियों का विकास कैसे होता गया इस विषय के प्रमाण इनमें प्रचुर हैं। इन चट्टानों के प्रस्तरी भूत प्राणियों का केवल क्रम ही देखने से यह बात सिद्ध होती है कि मत्स्य श्रेणी के प्राणी अन्य श्रेणियों के पूर्व पृथ्वी पर उद्भूत हुए थे और तब वर्तमान की अपेक्षा उनकी जातियां और उप जातियां बहुत अधिक विद्यमान थीं,

जिनमें से वर्तमान समय में कुछ लुप्त हो गयी हैं। जिस प्रकार मनुष्य जाति आज कल समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ है उसी प्रकार मत्स्य श्रेणी तब तक उत्पन्न हुए कुल प्राणियों में श्रेष्ठ थी। तब मच्छियां समस्त प्राणियों की नेता थीं। यदि आलंकारिक भाषा में कहना हो तो हम यह कह सकते हैं कि उस समय में प्राणी स्वरूप वृक्ष की सब से ऊपरली शाखा मत्स्य श्रेणी की थी। तब तक अन्य श्रेणियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। मन्डूक, सर्प, आदि अन्य शाखाओं तथा उनसे अन्य उप शाखाओं का इस वृक्ष पर जब पश्चात् परिस्फोट हुआ तब ही इस मत्स्य श्रेणी की शाखा का विस्तार संकुचित हुआ।

मत्स्य श्रेणी का प्रादुर्भावः—मत्स्य श्रेणी के पश्चात् मण्डूक श्रेणी और मण्डूक श्रेणी के पश्चात् सर्प श्रेणी का विकास हुआ। अपने अपने समय में प्रत्येक श्रेणी के प्राणियों का पर्याप्त विस्तार हुआ था। इसके स्पष्ट प्रमाण इन चट्टानों में प्राप्त होते हैं; उदाहरणार्थ, जब मत्स्य श्रेणी समस्त विद्यमान प्राणियों में श्रेष्ठ थी तब मत्स्य श्रेणी की कक्षाएँ, वंश, जातियां, तथा उपजातियां वर्त्तमान समय की कक्षाओं, वंशों, जातियों तथा उपजातियों से बहुत अधिक विद्यमान थीं, तब ऐसी ऐसी मछलियां विद्यमान थीं जो वर्त्तमान में उपस्थित नहीं हैं।

सर्पश्रेणी का आरम्भः—सर्प श्रेणी के विषय में भी यही वक्तव्य है जब सर्प श्रेणी के प्राणी श्रेष्ठ थे तब सर्प श्रेणी की बहुत अधिक वृद्धि हुई थी तब इस श्रेणी के बहुत भयानक जन्तु विद्यमान थे; उस समय की गोह और छिपकलियां लम्बाई में असी असी फुट की और तोल में पांचसो से छः छः सौ मन तक की होती थीं; इस श्रेणी के जो जल चर प्राणी थे वे भी बड़े भयानक जलराक्षस समान थे उन का स्वरूप उग्र और आकार बहुत विशाल था; इस श्रेणी की उस समय यहां तक उन्नति हुई थी कि इस में उड़ने वाले सर्प भी पैदा हुए थे।

भिन्न भिन्न प्रकार की मछलियों तथा सर्पोंका ऊपर जो वर्णन दिया गया है उसकी सत्यता पर बहुतों को कई प्रकार की शंकाएँ हो सकी है। सम्भावना है कि कई मनुष्योंके मन में यह शंका उत्पन्न होगी कि विकासवादियों की ये केवल कल्पनात्मक बातें हैं; यदि इतना भी न हो तो भी बहुतों को यह प्रतीत होता होगा कि इनमें और कुछ नहीं तो अतिशयोक्ति का अंश अवश्यमेव है। ऐसों के लिये हमारा इतना ही कथन है कि इस में असत्य वा अतिशयोक्ति का लेश मात्र भी नहीं। उत्तर अमरीका तथा अन्य स्थानों के चट्टानों में इन प्राणियों के न केवल प्रस्तरी भूत अवशिष्ट भाग ही मिले है परन्तु इन की ममियां (Mummies)* अर्थात् सुरक्षित मृत शरीर भी मिलते है जिन में अस्थियों की विद्यमानता तो है ही, अपितु मांस नाड़ियां तथा शिरा (Muscles) आदि अन्य मृदु भाग भी ज्यों के त्यों विद्यमान हैं। यह घटना वास्तव में बहुत आश्चर्य जनक है परन्तु प्रकृति में क्या ऐसी घटनाओं की कमी है ? इस पूकार की घटनाओं के बहुत अन्य प्रमाण भी मिले हैं। जिस प्रकार मसाले आदि कृत्रिम उपायों द्वारा प्राचीन समय के इजिप्शियन लोगों के रक्खे हुए मृत शरीर, जिनमें मांस, चर्म, बाल, आदि समस्त भाग पूर्णतया विद्यमान है, वर्तमान समय में ईजिप्ट (मिश्र) देश के समीप पिरामीडों [Pyramids] में मिलते हैं, उसी प्रकार, परन्तु प्राकृतिक उपायों द्वारा रक्षित इन प्राणियों के शरीर भी प्रकृति में यथा स्वरूप प्राप्त होते हैं।

मत्स्य और विष्णुपुराण से प्रमाणः—मत्स्य पुराण वा विष्णुपुराण में उड़ने वाले सर्पो का वर्णन आता है, और इस सम्बन्ध

---

* मसाला आदि कृत्रिम उपायों से रक्खे हुए मृत शरीरों को ममी (Mummy) संज्ञा है।

में हमारा यह अनुमान है कि यह वर्णन न केवल काल्पनिक नहीं है प्रत्युत वस्तुत किसी समय में विद्यमान प्राणियों का है।

पक्षियों तथा स्तनधारियों का प्रादुर्भाव।—सर्प श्रेणी के पश्चात् पक्षी तथा स्तन धारी श्रेणियों की विद्यमानता का अनुमान होता है। इस लुप्त जंतु शास्त्र (Palæontology) की सहायता से स्तन धारियों की भिन्न भिन्न कक्षाएं, वंश, जातियां, तथा उपजातियां कैसी प्रकट होती गईं इसका वर्तमान समय तक का स्पष्ट इतिहास प्राप्त हो सकता है।

सारांश—हमको इस प्रकार का सविस्तर विवेचन करने की आवश्यकता नहीं है समस्त घटनाओं का सार स्पष्टतया यह प्रतीत होता है कि पृष्ठ वंश धारी (Vertebrates) श्रेणी की भिन्न भिन्न कक्षाओं के प्रादुर्भाव का वही क्रम है जो क्रम तुलनात्मक शरीर रचनाशास्त्र तथा गर्भशास्त्र ने बताया है। एवं न केवल विकास के परन्तु विकास के क्रम के भी तीन भिन्न भिन्न स्थानों से प्रभावशाली प्रमाण मिलते हैं, अतः स्पष्ट है कि हमको विकासवाद की स्थापनाओं को स्वीकार करना चाहिये। यदि इन प्रमाणों के होते हुए भी विकास को स्वीकार करने में हम हिचकिचाएं तो इन प्रमेयों के तथा घटनाओं के स्पष्टीकरण किस अन्य रीति से किए जा सकेंगे?

अध्याय (३)

विशिष्ट विशिष्ट प्राणियों के विकास द्योतक वर्णन।

प्रास्ताविक–खुरवाले जन्तु–अश्वका क्रमशः विकास मध्यस्थ रचना के प्राणि–लुप्त कड़ियां (Missing Links) आर्किओप्टेरिक्स (Archæopteryx)–टेरोडेक्टिल (Pterodactyl)–अन्य लुप्त कड़ियां–सारांश।

प्रास्ताविक– प्राणियों के विकास के क्रम पर लुप्त जन्तुशास्त्र के प्रमाणों द्वारा अब तक विचार हुआ। अब हम विशिष्ट विशिष्ट प्राणियों की, उनके पूर्वजों से वर्तमान संतति तक, जो अवस्थाएं भिन्न भिन्न काल में होती गईं उन पर विचार करेंगे। हम बता चुके हैं कि पृष्ठवंश विहीन प्राणियों की अपेक्षा पृष्टवंश धारियों के मृत शरीरों के पूस्तरी भूत होने की अधिक संभावना होती है और तदनुसार पृथ्वी के चट्टानों में पृष्टवंशधारियों के पूस्तरी भूत शरीर अधिक संख्या में प्राप्त भी हुए हैं। अश्व और हाथी के पूस्तरी भूत शरीर भिन्न भिन्न चट्टानों में इस पूकार प्राप्त हुए हैं कि उनके द्वारा इन प्राणियों के विकास के क्रम का बहुत पूर्ण और स्पष्ट रूप में अनुमान लगाया गया है। ये दो प्राणी जीवन शास्त्र तथा विकास शास्त्र के बहुत रोचक और हृदयंगम प्रमाण बने हुए हैं। पृष्टवंश विहीन प्राणियों के विकास का क्रम भी कहीं कहीं प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, जर्मनी में एक स्थान है जहां घोंघों (Snails) के ऊपर के कवच (Shells) पूस्तरीभूत अवस्था में भिन्न भिन्न तहों में पाए गए हैं। इन में विकास का क्रम बहुत सुन्दर रीति से दीख पड़ता है। हम यहां पृष्ट वंशधारियों का और विशेषतः अश्व के विकास का क्रम अधिक सविस्तर रीति से दिखाना चाहते हैं। जब से विकासवाद का प्रारम्भ हुआ और जब

से बुद्धिमान् पुरुषों के विचार इस वाद के प्रमाणों की ओर आकर्षित होने लगे तब से विचारकों का ध्यान अश्वों के प्राचीन समय के प्रस्तरी भूत शरीरों की ओर विशेष रीति से आकर्षित हो रहा है। अश्व के विषय में हमने थोड़ा सा वर्णन तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र में किया है, जहां हमने बतलाया है कि यद्यपि वर्तमान समय के घोड़ों की अगले और पिछले पैरों की एक एक ही माध्यमिक अंगुली होती है तथापि वह पांच अंगुली वाले प्राणी की संतति है। वैज्ञानिक इस अनुमान पर किस प्रकार पहुंचते हैं इसका नीचे जो थोड़ा वर्णन दिया है उससे स्पष्ट विदित होगा।

खुर वाले जन्तुः—तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र के वेत्ताओं ने वर्तमान समय के समस्त खुर वाले जन्तुओं का निरीक्षण करना जब प्रारंभ किया तब उन्होंने यह देखा कि खुर वाले जतुन्ओं की एक पंक्ति बनती है; इस पंक्ति के प्रारंभ में खुर में पांच पांच उंगलियां धारण करने हारे हाथी के सदृश प्राणी है, इसके मध्य में ऐसे प्राणी हैं जिनके पैरों की उंगलियों की संख्या क्रमशः घटती जाती है, और इसके अन्त में अश्व के सदृश प्राणी हैं जिनके पैरों की मध्य अंगुली ही केवल अवशिष्ट है। जिन खुर वाले प्राणियों के पैरों की अंगुलियां पांच से न्यून हैं उनके पूर्वजों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि वे पांच अंगुलियों युक्त खुर वाले जन्तु थे, और वर्तमान समय की उन की सन्तति में पैरों की अंगुलियों की संख्या काल और परिस्थिति के वश न्यून हो गई है; जिन खुर वाले जानवरों की वर्तमान में तीन अंगुलियां रह गई हैं उनके विषय में इनका यह विचार है कि उनके प्रत्येक पैर की दोनों ओर की एक एक उंगली क्रमशः घट गई है; और जिनकी

एक ही शेष रह गई है उनकी यह अवशिष्ट अंगुली मध्य की अंगुली है और प्रत्येक पैर की दोनों ओर की दो दो उंगलियां घट गई हैं।

यह हुआ तुलनात्मक-शरीर-रचना-शास्त्र का अनुमान। क्या लुप्त-जंतु-शास्त्र भी इस अनुमान को पुष्ट करता है या नहीं इसे हम देखते हैं? लुप्त जंतु शास्त्र स्वतंत्रतया पक्ष पात रहित होकर इस बात का पोषण ही करता है। देखिए, अश्व का उदाहरण लीजिए।

अश्व का क्रमशः विकासः—प्रथम जब कोलंबस ने अमरिका को जाना उस समय वहां अश्व बिलकुल विद्यमान नहीं था। प्रतीत यह होता है कि कुछ अज्ञात कारणों से यह अश्व की उपजाति वहां से लुप्त हो गई थी। अब अमरिका की एक विचित्र बात यह है कि प्राणियों के मृत शरीर वहां के चट्टानों में बहुत अच्छे प्रकार से प्रस्तरी भूत हो जाते हैं। वहां का पृथ्वीपटल इस कार्य के लिये बहुत योग्य प्रतीत होता है। प्राणियों के मृत शरीरों को प्रस्तरी भूत करने के लिये जिस प्रकार का पृथ्वी पटल होना चाहिए वैसा ही वहां का है। इसी कारण वहां प्रस्तरी भूत प्राणी भी बहुत मिल जाते हैं। प्रोफेसर मार्श ने बहुत प्रकार के प्रस्तरी भूत प्राणियों को इकट्ठा किया है और उनको "येल" विश्वविद्यालय के अद्भुतालय (Museum) में सुरक्षित प्रकार से रक्खा है। अश्व के खुरों के संबंध में इस अद्भुतालय में जो इतिहास दृष्टिगोचर होता है वह विकास का एक बहुत रोचक उदाहरण है! "तृतीय कोटिस्थ" वा "अर्वाचीन" (Tertiary or Cainozoic) जिस चट्टान का नाम है उस में भिन्न भिन्न प्रकार के अश्वों के प्रस्तरी भूत शरीर हैं। इस चट्टान की गहराई, जैसा कि पूर्व बताया जा चुका है, २५, ००० फुट है और इसके तीन मुख्य खंड हैं सब से ऊपर का "अग्र" (Pliocene) खण्ड, मध्य का "मध्यम" (Miocene) खण्ड, और सबके निचला "आरंभ" (Eocene) खंड

है। अब देखिए इन तीनों खडों में अश्व के जो फौसील मिलते है उन का कैसा वर्णन है। चट्टान के ऊपर के "अग्र खंड" के पास अश्व का जो प्रस्तर मय शरीर मिलता है वह वर्तमान अश्व के समान है। "अग्र खंड" में अश्व का जो प्रस्तर मय शरीर मिलता है उसके अंग वर्तमान अश्व के अंगों से किंचित भिन्न इसलिये हैं कि उसके प्रत्येक पैर की मध्य अंगुली * के साथ दो दो अन्य अंगुलिया लगी हुई है जो पूर्णतया अत्यन्त निकृष्ट दशा में है। "अग्र खण्ड" को छोड़ नीचे "मध्य खण्ड" में अश्व की जो अवस्था दीख पड़ती है उससे तो यह प्रतीत होता है कि उसके प्रत्येक पैर की तीन पूर्ण और चौथी अपूर्ण ऐसी चार चार अंगुलियां है। अब "मध्य खण्ड" के

*अश्व की मध्य अंगुली किसे कहते है इस से पाठकों को अवश्य परिचित रहना चाहिये, साधारणतया लोगोंकी यह कल्पना है कि जिस प्रकार कुत्ते और बिल्ली के पंजे होते हैं उसी प्रकार अश्व के खुर होते है, अर्थात् जिस प्रकार कुत्ते और बिल्ली के हाथो तथा पैरों के साथ अंगुलिया होती है उसी प्रकार अश्व के हाथ और पैरों के साथ अंगुलियों के स्थान पर खुर है। शरीर रचना शास्त्र की दृष्टी से हमारी यह कल्पना अशुद्ध है। जिनको हम खुर समझते हैं वे वास्तव में मध्य अंगुलियों के बढ़े हुए नाखून हैं। अश्व के पैर का अच्छे रीति से निरीक्षण करने से इस बात का ठीक ठीक बोध होता है। यदि हम प्रथम अपनी भुजा को ही देखें तो उस में कंधे से कोनी तक एक अस्थि, कोनी से कलाई तक दो जुड़ी हुई अस्थियां, आगे कलाई की अस्थियां, फिर कलाई से अंगुलियों तक

नीचे "आरम्भ खण्ड" के ऊपर ऊपर की स्तरों में जब हम जाते हैं तब अश्व के अगले पैरों की चार चार पूर्ण और पिछले पैरों की तीन तीन पूर्ण अंगुलियां प्राप्त होती हैं। "आरम्भखण्ड" के अत्यन्त नीचे के स्तरों में जब हम अन्वेषण करते हैं तब उससे और ही भिन्न प्रकार की अवस्था दीख पड़ती है। वहां अगले पैरों की चार चार पूर्ण अंगुलियां और पिछले पैरों की तीन तीन हैं, परन्तु अब पिछले पैरों की तीन तीन अंगुलियों के साथ चौथी अंगुली भी अपूर्ण अवस्था में विद्यमान है। इन निचले "आरम्भ" खंड में जो अश्व मिलते हैं वे कद में शृगाल जितने होते हैं। इस प्रकार "तृतीय कोटिस्थ" चट्टानों के भिन्न भिन्न खण्डों में अश्वों के जो प्रस्तरीभूत पिंजर मिले हैं उन

हथेली की अस्थियां, और अन्त में अंगुलियों की अस्थियां हैं। अश्व में भी यही बात है. घुटने तक एक अस्थि, घुटने से टखने तक एक जोड़ अस्थि, टखने से आगे कुछ मिली जुली अस्थियां, आगे एक अस्थि और अन्त में खुर। जिस प्रकार हमारी अंगुलियों के अन्त में नाखून होते हैं उस प्रकार अश्व तथा अन्य खुर वाले जानवरों की अंगुलियों के अन्त में खुर होते हैं। खुरवाले प्राणियों के संबंध में वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि इन की पांचों अंगुलियां प्रायः विद्यमान नहीं रहतीं, अनावश्यकता के कारण कुछ अंगुलियां लुप्त होजाती हैं। चार खुर वालों की एक, तीन खुर वालों की दो, दो खुर वालों की तीन, और एक खुर वालों की चार अंगुलियां लुप्त हुई हैं। अश्व की मध्य की अंगुली उपस्थित है और दोनों ओर की दो लुप्त होगयी हैं।
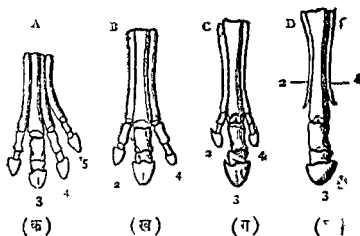
से अश्व के वंशानुवंश विकास का अच्छे प्रकार बोध होता है। अश्व के अवयवों का इस प्रकार शनैः शनैः जो प्राकृतिक रूपांतर होता गया वह विकास का ही परिणाम है। अश्व के आद्य पूर्वजों का अन्त तक अन्वेषण नहीं हुआ है परन्तु जितना कुछ अन्वेषण हुआ है उससे वैज्ञानिकों का यह पूर्ण विश्वास हो गया है कि अश्व के आद्य पूर्वजों के प्रत्येक पैर की पांच पांच अंगुलियां थीं और उनका कद खरगोश के आकार से अधिक बड़ा न था।

हाथी और हिरण की आद्यवंशजों से वर्तमान तक की विकास परम्परा भी इसी प्रकार भूगर्भीय चट्टानों में प्राप्त हुई है, और अश्व के खुरों के समान इस परम्परा के प्रमाण भी बहुत मनोरंजक तथा विकासवाद को सिद्ध करने के लिये बहुत प्रबल हैं।

मध्यस्थ रचना के प्राणी:लुप्त कड़ियां (Missing Links) —लुप्त जन्तु शास्त्र का यह अध्याय समाप्त करने के पूर्व हम मध्यस्थ कड़ियों का थोड़ा सा वर्णन देंगे। हमने पूर्व (पृष्ठ १०९ में) बताया है कि उन प्राणियों को मध्यस्थ कड़ियां कहते हैं जिनकी शरीर रचना किसी विशिष्ट श्रेणी की नहीं परन्तु दो समीपवर्ति श्रेणियों के मध्यवर्ती प्राणी की होती है।

लुप्त कड़ियों का अति प्रसिद्ध उदाहरण" आर्कि ओपटेरिक्स" (Archaeopteryx) प्राणी है। इस प्राणी की खोज जर्मनी में हुई; यह प्राणी पंख युक्त उड़ने वाला सर्प है और प्राथमिक अवस्था का पक्षी भी है। इस में सर्प श्रेणी के बहुत से अंग विद्यमान हैं; इसका मस्तिष्क छोटा है जबड़ा सर्प श्रेणी के गोह के जबड़े के समान है। सर्प श्रेणी की भांति जबड़े के अन्तर्वर्ति दांत तथा पक्षी की न्याई इसके पंख और परों में पांच नाखून (Claws) युक्त अंगुलियां विद्यमान हैं;

चित्र संख्या [१२]
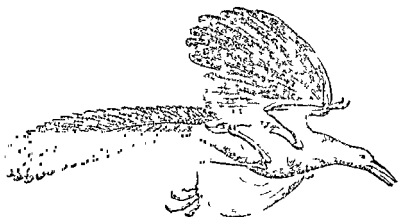
" आर्किओप्टेरिक्स " Archæopteryx

सर्प और पक्षी श्रेणी के मध्यस्थित प्राणी।
(ब्रिटिश और वर्लिन अजायब घर से)

इसकी पूंछ बहुत लम्बी तथा बहुत रीड की गुरियों (Vertebrae) से बनी हुई है और इन गुरियों के साथ छोटी छोटी परों की अस्थियाँ लगी हुई हैं। इस की छाती की अस्थियां सर्प के समान चौड़ी होती हैं और पक्षी होते हुए भी इसकी छाती की अस्थियां पक्षियों के उर की अस्थियों के समान नहीं हैं। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इस प्राणी का स्थान सर्प और पक्षि श्रेणियों के मध्य में स्थित है; सर्प श्रेणी से पक्षि श्रेणी में प्राणियों का विकास जब हो रहा था और वर्तमान के पक्षियों के सदृश पक्षि श्रेणी की पूर्ण उन्नति नहीं हुई थी उस समय का यह प्राणी प्रतीत होता है। यह प्राणी आज कल विद्यमान नहीं है अतः इसको सर्प और पक्षियों की मध्यस्थित "लुप्त कड़ी" कहते हैं। इस के चित्र से इसकी बहुत सी बातें स्पष्ट होंगी।

"टेरोडेक्टिल"–इस प्रकारका दूसरा उदाहरण टेरोडेक्टिल (Pterodactyl) का है। चित्र में देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसके

चित्र संख्या [१३]
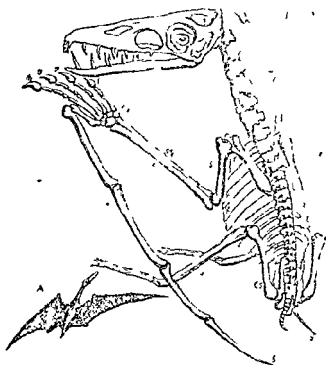
टेरोडेक्टिल (Pterodactyl)
बव्हेरिया के चट्टानों (Jurassic Rocks] में मिला हुआ प्राणी; हाथों की पांचवीं अंगुली बहुत बढ़ी हुई दिखाई देती है।

प्रत्येक हाथकी एक एक अंगुली बहुत बढ़ी हुई है; इससे पंख को बहुत सहारा मिलता है; (इस प्राणीका नाम इसी बात का द्योतक है: Pteron-wing और daktylos-a dijit)। चिमगादड़ों के सदृश परन्तु बहुत बड़े और पंखयुक्त ये प्राणी थे। पक्षियों की न्याई इन की अस्थियां खोखली और हवा से भरी हुई होती थीं। सांप, पक्षी, और स्तनधारी इन तीनों की थोड़ी थोड़ी बातें इस में मिली हुई थीं।

अन्य मध्यस्थ प्राणी– "आर्किओप्टेरिक्स" के सदृश अन्य "हेस्पेरोर्निस" Hesperornis आदि बहुतसी लुप्त कड़ियां प्राप्त हुई हैं जिनके द्वारा प्राणियों की भिन्न भिन्न श्रेणियां, तथा एक ही श्रेणी की भिन्न भिन्न कक्षाएँ संयोजित हो जाती हैं। वर्तमान समय में विद्यमान लुप्त कड़ियों के, अच्छे और बहुत प्रभावशाली उदाहरण, कँगरू, ओपोसम, डकविल आदि जन्तु हैं। (इनका वर्णन पृ० ५९-६१ पर पूर्णतया दिया है) पक्षी तथा स्तनधारी श्रेणियों को मिलाने वाली ये कड़ियां (Links) हैं।

सारांश चट्टानो की खोज करने से प्राणियों के विकास के बहुत रोचक तथा निश्चायक प्रमाण प्राप्त होते हे। ये प्रमाण, पूर्ण रीति से स्वतन्त्र हैं और इनसे वेही बातें सिद्ध होती हैं जो तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र तथा गर्भशास्त्र ने सिद्ध करदी है।

अध्याय (४)

प्राणियों का भौगोलिक विभाग का शास्त्र।

(Geographical Distribution of Animals)

प्रास्ताविक–इस शास्त्र का प्रारम्भ--स्पष्ट और प्रत्यक्ष बातों द्वारा ही वैज्ञानिकों को विकास की सामग्री प्राप्त होती है डार्विन और गेला-पेगोस द्वीपों की समीक्षणा–विकासवाद ही इन द्वीपों के और दक्षिण अमरिका के प्राणियों के साम्य का कारण बता सकता है–अन्य उदाहरण–इस शास्त्र का मुख्य तत्व--समारोप।

प्रास्ताविक–अब तक तीन शास्त्रों द्वारा यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि इस संसार में जितने प्राणी विद्यमान थे और अब भी विद्यमान हैं उनका अस्तित्व अनादिकाल से नहीं है। इस पृथ्वी पर प्राणियों की उत्पत्ति

जब शुरू हुई थी तब यहा बहुत सीदी सादी (Simple) रचना के प्राणी उत्पन्न हुए थे, पश्चात् काल तथा परिस्थिति जैसा जैसी बदलती गई उनके अनुकूल अधिक सकीर्ण (Complex) रचना के भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी उद्भूत हुए। अब इस अध्याय मे हम यह बतलाना चाहते हैं कि पृथ्वी के भिन्न भिन्न देशा में प्राणियों के जिस प्रकार के विभाग पाए जाते हैं उनसे भी उपरोक्त ही अनुमान निकलता है।

इस शास्त्र का आरम्भ —प्राणियों के भौगोलिक विभाग का यह एक स्वतन्त्र ही शास्त्र है। इसकी उन्नति जीवन शास्त्र के अन्त चार शास्त्रों के पश्चात् ही हुई। डार्विन (*Darwin*) वालस (*Wallace*) वाग्नर (Wagner) आदि वैज्ञानिकों ने इस शास्त्र का आन्दोलन करना प्रारम्भ किया, इन से पूर्व अन्य वैज्ञानिकों ने यह देखा था कि पृथ्वी पर भिन्न भिन्न स्थानो में प्राणियों का समान विभाग नहीं हुआ है, परन्तु इस असमानता के कारणो पर उन्होने यद्यपि कुछ अल्प सा आन्दोलन किया, तथापि इस असमानता का कोई युक्ति युक्त कारण वे न बता सके। विकासवाद के स्थापित हो जाने पर ही इस असमानता का सहेतुक कारण ज्ञात हुआ।

स्पष्ट और प्रत्यक्ष बातो द्वारा ही वैज्ञानिकों का विकास की सामना प्राप्त होती है —हमने पूर्व एक बार दिखाया है कि जिन बातो स हम प्रतिदिन अत्यत परिचित रहते है उन बातो के सहेतुक कारण ढूढने की हमको आवश्यक्ता प्रतीत नहीं होती है, उन बातो को बिना सोचे विचारे हम वैसे ही मान लेते हैं। प्राणियो के भौगोलिक विभाग म भी ऐसी कतिपय बाते ह जिनको हम स्वयसिद्ध समझ कर उनके कारणा पर विचार नहीं करते। प्राणियों का यह भौगोलिक विभाग का शास्त्र बहुत मनोरञ्जक है और उसके सिद्धात भी अत्यन्त रोचक हैं,

परन्तु विस्तार के भय से हम केवल इस शास्त्र के मौलिक तत्वो का सक्षेप में वर्णन देकर उन तत्वो से प्राणियों के विकास बतलाने मे किस अवधि तक सहायता मिल सकती है इस पर यथाशक्य विचार करेंगे ।

हम अपनी बाल्यावस्था से प्राणियों के विभाग सम्बन्धी कतिपय बातो को जानते हैं। हम में से प्रत्येक जानता है कि भारतवर्ष में व्याघ्र सिंह, तथा हाथी आदि प्राणियों की उत्पत्ति है और ये प्राणी इग्लेंड में नहीं होते, साप बिच्छु तथा यहा के अन्य गरमी की ऋतु में निकलने वाले प्राणी यूरोप के शीत प्रदेशों में नहीं होते, जिराफ (Giraffe) केवल अफ्रिका में ही है और अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता हिपोपोटेमस भी केवल अफ्रिका का प्राणी है, तथा मोर पक्षी केवल भारत का। दूर जाने का क्या आवश्यकता है? हम सब जानते हैं कि भिन्न भिन्न प्रकार की मनुष्य जातिया भिन्न भिन्न तथा दूर दूर के देश में निवास करती हैं अग्रेज लोग इग्लैड में, हबशी अबिसीनिया मे, नीग्रो अफ्रिका में, बुशमन और स्वाहेली दक्षिण अफ्रिका में, चीनी और जापानी चीन और जापान में, और नेपाली और गुरखा नेपाल तथा हिमालय के निकटवर्ति प्रदेशो में रहते हैं । और रूप, रग, आकार की जैसी भिन्नताए और विशेषताए प्राणियों तथा वनस्पतियों के भिन्न भिन्न जातियों मे विद्यमान होती हैं, वैसी ही मनुष्यों के इन भिन्न भिन्न समूहो में भी विद्यमान हैं। इन वास्तविकताओं से हम परिचित अवश्य हैं, परन्तु अति परिचय के कारण इनकी ओर हम ध्यान नहीं पहुँचाते। हा, इतना अवश्य है कि जैसे जैसे हमारा ज्ञान विस्तृत होता जाता है। वैसे वैसे भिन्न भिन्न प्राणियो की ओर इन समानताओं तथा विशेषताओं के कारण हम अधिकाधिक आकर्षित होते जाते हैं। इन बातो के अतिरिक्त कई बातें तो ऐसी हैं कि विज्ञान से शोधित होने के

कारण ही हम उनकी ओर आकर्षित होते जाते हैं और तबही उन बातों का वास्तविक मूल्य हमको प्रतीत होता है; उदाहरणार्थ, इस बात पर किसी ने नहीं विचारा था कि शशक जैसा अत्यन्त साधारण प्राणी आस्ट्रेलिया में, यूरोप निवासियों के वहां जाने के पूर्व, विद्यमान क्यों न था। सृष्टि के निर्माता ने भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों के युग्म सृष्टि के आरम्भ में, उत्पन्न किये और उनमे वर्तमान की सृष्टि बनी हुई है इस प्रकार की कल्पनाओं से विशिष्टोत्पविवाद को समर्थन करने वाले इसका यह उत्तर देंगे कि इसमें कोई अपूर्वता नहीं है; आस्ट्रेलिया मे शशक इस लिये विद्यमान न थे कि वहां का जलवायु उनकी उत्पत्ति तथा वृद्धि के लिये अनुकूल नहीं था। क्या इस प्रकार का उत्तर उनकी अज्ञानता का स्पष्ट प्रमाण नहीं होगा? वे यदि इस बात को जानते हों कि, जब से आस्ट्रेलिया में यूरोप के निवासी यूरोप से शशक को ले गए हैं तब से शशक की वहां बहुत आबादी हुई है. यहां तक कि कृषि को उनसे बहुत हानि पहुंची है, तो इस प्रकार के उत्तर देने का वे साहस न करेंगे। आस्ट्रेलिया का जल वायु शशकों के लिये अनुकूल नहीं है, यह कारण आस्ट्रेलिया में उनकी विद्यमानता न होने का हो नहीं सकता: इसका अन्य कारण हम आगे दिखलाएंगे। इस प्रकार की बहुत सी अन्य साधारण बातें हैं जिनके ऊपर विचार किया जाय तो बहुत युक्ति पूर्ण बातें प्रतीत हो जाती हैं। ठीक ठीक कहा जाय तो इन्हीं स्पष्ट और प्रत्यक्ष बातों द्वारा वैज्ञानिकों को विकास की सामग्री प्राप्त होती हैं, इन्हीं में वैज्ञानिकों को विशेषताएं प्रतीत होती हैं, और इन्हींका युक्तियुक्त अर्थ करने के लिये वे उद्यत होते हैं।

डार्विन और गेलापेगोस द्वीपों की समीक्षणा—प्राणियों के भौगोलिक विस्तार के स्थूल स्थूल तत्वों को ज्ञात करने के लिये द्वीपों के सदृश पृथक् २ स्थानों पर प्राणियों का किस प्रकार का विस्तार है, उस पर प्रथम

हम विचार करेंगे। डार्विन वालेस वाग्नर आदि वैज्ञानिकों ने भिन्न भिन्न द्वीपों पर रहने वाले प्राणियों के विस्तार का अच्छे प्रकार से समीक्षण करके इस विषय के मूलों को ज्ञात किया है। इस विषय का भली रीति से बोध होने के लिये पाठकों को भौगोलिक विज्ञान सम्बन्धी अपनी स्मरणशक्ति को जरा सचेत करना चाहिये। गेलापेगोस (Galapagos) का द्वीप समूह इस सम्बन्ध में बहुत प्रसिद्ध है, क्योंकि बीगल (Beagle) जहाज पर सवार होकर इन्हीं द्वीपों के प्राणियों की डार्विन महोदय ने अच्छे प्रकार समालोचना की और उनके भौगोलिक विस्तार के विषय में सर्व साधारण अनुमान स्थापित किये। यह द्वीप समूह भूमध्य रेखा पर दक्षिण अमरिका के पश्चिम की ओर लगभग ६०० मील की दूरी पर स्थित है। इस द्वीप समूह पर किरली, गोह, गिरगट, छिपकली, आदि चार पैर वाले सर्प श्रेणी के जंतु तथा पक्षी श्रेणी के जंतु बहुत विद्यमान हैं। इस प्रकार के प्राणी अफ्रीका, भारतवर्ष तथा उत्तर और दक्षिण अमरीका में भी विद्यमान है। यह विशेषतया बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि जिस प्रकार भिन्न भिन्न देश के मनुष्यों में रूप, रंग, आकार आदि का अन्तर होता है उसी प्रकार इन भिन्न भिन्न देश के प्राणियों में भी होता है। गेलापेगास द्वीप के प्राणियों का अन्य देश निवासी प्राणियों की अपेक्षा दक्षिण अमरीका निवासी प्राणियों के साथ बहुत अधिक साधर्म्य है, परन्तु अफ्रीका वा भारत निवासी प्राणियों के साथ इनका बहुत साधर्म्य नहीं है।

विकासवाद ही इन द्वीपों और दक्षिण अमरीका के प्राणियों के साम्य का कारण बता सकता है —अब प्रश्न यह है कि इस समानता का क्या कारण है? विशिष्टोत्पत्तिवाद के आधार पर इसका हम कोई संतोष जनक कारण प्रस्तुत नहीं कर सकते, परन्तु दूसरी ओर जब हम

विकासवाद की शरण लेते हैं तब उस के आधार पर हम इस घटना के, बड़ी अच्छी और सयौक्तिक रीति पर, कारण दे सकते हैं। विकासवाद के अनुसार इस साम्यता का कारण यह है कि इन द्वीपों के उपरोक्त प्राणी दक्षिण अमरीका के प्राणियों के अनुवंशज हैं। दक्षिण अमरीका का किनारा इन द्वीपों के ठीक सामने है उस के अतिरिक्त अन्य कोई स्थान इन के अधिक समीप नहीं है; दक्षिण अमरीका से कारणवशात् प्राचीन समय में उपरोक्त प्राणी इन द्वीपों पर जाकर रहने लग गए होंगे और दूर दूर के प्राणियों की अपेक्षा समीप स्थित दक्षिण अमरीका के प्राणियों की इन द्वीपसमूहों पर रहनेके लिये जाने की अधिक संभावना भी है। अमेरिका से इन द्वीपों पर जा कर जब ये प्राणी वहां के बाशिंदे हुए तब जल वायु तथा भक्ष के अनुसार इनके आकार में शनैः शनैः कुछ थोड़े परिवर्तन उत्पन्न हुए और इस प्रकार अपने आद्य वंशजों से कुछ अंशों में भिन्न हो कर इस प्रकार के बनगये कि इनको "गेलोपेगोसद्वीपस्थ" संज्ञा से अंकित करना आवश्यक प्रतीत होने लगा।

इस अनुमान को पुष्ट करने वाला एक दूसरा प्रमाण भी यह विद्यमान है कि इस द्वीप समूह के भिन्न भिन्न द्वीपों के प्राणी परस्पर समान नहीं हैं। इस का कारण यह है कि ये प्राणी जब अमरीका से चल कर इस द्वीप समूह पर आ गये तब प्रारंभ में किसी एक द्वीप पर वे रहने लगे और पश्चात् कालांतर में एक द्वीप से दूसरे तथा दूसरे से तीसरे इस प्रकार अन्य द्वीपों पर इनका विस्तार हुआ; और जिस प्रकार मातृ भूमि को छोड़नेसे इनके आद्य आकार में भेद हुआ वैसा ही एक द्वीप को छोड़ कर दूसरे द्वीप पर जाने से इन के आकार में अन्यान्य भी भेद उत्पन्न हुए। इस प्रकार विकासवाद के द्वारा गेलापेगोस द्वीप के प्राणियों का अमरीका के प्राणियों के साथ अधिक साम्य क्यों है इस का हमको संन्तोष जनक उत्तर प्राप्त होता है।

अन्य उदाहरण:—ओजेर्स द्वीप समूह अफरीका के वायव्य दिशा में लगभग ९०० मील की दूरी पर स्थित है वहां के प्राणियों की अफ्रीका प्राणियों के साथ बहुत समानता है और इस समानता का कारण ऊपर निर्दिष्ट कारणों के सदृश है।

पृथ्वी के नकशे में पेसिफिक महासागर को देखने से उस का विस्तार तथा उसके बहुसंख्यक द्वीप स्पष्ट प्रतीत होते हैं। इन द्वीपों पर एक प्रकार की घोंघों [Snails] की जाति बहुत प्रचुरता में मिलती है, और गेलापेगास द्वीप समूह पर जिस प्रकार सर्प जाति की बहुत उपजातियां विद्यमान हैं उसी प्रकार इन घोंघों की बहुत उपजातियां इन पासिफिक महा सागरीय द्वीपों पर विद्यमान है। अब प्रश्न यह है कि इस का क्या कारण है? इस पासिफिक महासागर के भिन्न भिन्न द्वीपों पर एक ही जाति की भिन्न भिन्न उपजातियां कैसी विद्यमान हुई? भूगर्भ शास्त्र के वेत्ता इस प्रश्न का उत्तर देते हुए बतलाते हैं कि प्राचीन समय में पासिफिक महासागर में वर्त्तमान के अनेक पृथक् २ द्वीप विद्यमान न थे, परन्तु इनके स्थान पर एक महाद्वीप [Continent] था। प्राकृतिक शक्तियों से यह महाद्वीप शनैः शनैः जल में धसता गया और अन्त में इस घटना का यह परिणाम हुआ कि इस के सब भाग जल में विलीन होगये केवल उच्च २ शिखर जल के ऊपर रह गए; ये ही शिखर वर्तमान के पासिफिक महासागर के द्वीप कहलाते हैं; कैसा रोचक और संतोषप्रदायक यह उत्तर है! इस इतिहास से हम जान सकते हैं कि ये भिन्न २ द्वीप प्रारम्भ में पृथक् न थे परन्तु एक ही विस्तृत प्रदेश के भिन्न २ भाग थे और जिस प्रकार एक जाति की भिन्न २ उपजातियां बन जाती हैं वैसी इस विस्तीर्ण प्रदेश में घोंघों की भिन्न २ उपजातियां बन गई अर्थात् इन द्वीपों पर जो भिन्न २ उपजातियां विद्यमान हैं उन

के आद्य पूर्वज एक ही प्रकार के घोंघे थे। इस महा द्वीप के पृथक् पृथक् द्वीप बन जाने पर तदुपरांत इनका जो विकास होता गया उस विकास में यह आवश्यक न रहा कि सब द्वीपों पर के घोंघों में एक ही प्रकार का विकास हो। प्रत्येक द्वीप पर की परिस्थिति के अनुरूप इन घोंघों की उन्नति होती गई और इसी पृथक् पृथक् प्रकार की उन्नति के कारण वर्तमान में घोंघों की बहुत उपजातियां निर्मित हुईं।

इस शास्त्र का मुख्य तत्व——इन तथा इनके सदृश अन्य प्राणियो के भौगोलिक विस्तार पर विचार किया जाय तो एक सर्वसाधारण तथा पूर्वापर विरोध न करने वाला तत्व यह प्रतीत होता है कि किसी दो प्रदेशों के प्राणियों की भिन्नता वा समता उक्त दो प्रदेशों की दूरता वा सांनिध्य या दूसरे शब्दों में परिस्थिति की भिन्नता वा समानता पर निर्भर रहती है; यदि ये दो देश बहुत दूर हों तो भिन्नता अधिक होगी, यदि बहुत निकट हों तो भिन्नता बहुत थोड़ी होगी। उदाहरणार्थ, गेलापेगोस द्वीपसमूह अन्य प्रदेशों से पृथक् स्थित परन्तु दक्षिण अमरीका के निकट वर्ति है; अतः यहा के प्राणियों की अन्य प्रदेशों के प्राणियों की अपेक्षा दक्षिण अमरीका के प्राणियों के साथ अधिक समानताएँ हैं। आस्ट्रेलिया तथा उस के निकटवर्ति स्थान सब प्रदेशों से अत्यन्त पृथक् तथा दूर स्थित हैं अतः हम देखते हैं कि इन स्थानों में रहने वाले प्राणी बहुत ही विचित्र प्रकार के हैं। सारे संसार में कहीं भी इनकी समानता नहीं है। देखिए, स्तनधारी प्राणी जेरज है अर्थात् माता के उदर में कुछ काल तक रह कर फिर जन्म प्राप्त करते हैं; परन्तु इस द्वीप पर के स्तनधारी प्राणी अंडज हैं जैसे टकबिल आदि पूर्व वर्णित (पृ० ६०) प्राणी। इसी प्रकार विचित्रता का और उदाहरण लीजिये; सारे संसार में कहीं भी ऐसे स्तनधारी प्राणी नहीं

है जिनकी स्त्री जाति में, प्रसूति के पश्चात् पेट की चमड़ी का विस्तार होकर बच्चों के रहने के लिये एक थैली सी बनजाती हो (पृ० ५९-६०) । परन्तु इस प्रकार के थैली धारी प्राणी (Pouched Animals or Marsupials) अमरीका के एक वा दो स्थानों को छोड़ कर केवल यहीं होते हैं । यह कितना सुन्दर तथा हृदयगम सम्बन्ध है । एक ओर भूगर्भीय तथा भौगोलिक सम्बन्ध यदि अधिक अधिक शिथिल होते हैं तो दूसरी ओर इन के आपस के सबध अधिक अधिक दूर के हो जाते है, विकास की स्थापनाओं से ही इस प्रकार के सम्बन्धों का बहुत अच्छे प्रकार स्पष्टीकरण मिलता है और इन बातों से ही विकास की सत्यता पर हमारा विश्वास अधिक अधिक दृढ होता हे ।

२—इस में कोई सन्देह नहीं कि दो पृथक् परन्तु निकटवर्ती प्रदेशों के प्राणियों में बहुत अशों में साधर्म्य होते हैं , तथापि कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि ऐसे दो निकट वर्ती स्थानों में से एक पर किसी एक श्रेणी के प्राणी मिलते है और दूसरे पर उनका सर्वथा अभाव रहता है । उदाहरणार्थ एक ओर ब्रिटिन और जापान दूसरी ओर आस्ट्रेलिया और न्यूजलेन्ड, ब्रिटिन और जापान मे बहुत अन्तर है तथापि ब्रिटिन और जापान के प्राणिया मे बहुत साधर्म्य है यहा तक कि ब्रिटन से जापान के गये हुए यात्री को जापान के नैसर्गिक प्राणायों को देख कर अपनी परिचित भूमि का वारवार आभास होता है, आस्टेलिया और न्यूझीलेन्ड में ब्रिटिन और जापान के अन्तर की अपेक्षा बहुत ही कम अन्तर हे परन्तु आस्ट्रेलिया से न्यूझीलेन्ड को गये हुए यात्री को सब ही विचित्र दीखता है, केंगरू और ओपासम का तो नाम निशान भी नहीं मिलता और पक्षी और अन्य कीट भी बिल्कुल अपरिचित दिखाई देते हैं । इसका कारण यह है कि इन दो

स्थानों को पृथक् करने वाले प्राकृतिक प्रतिबंध प्राणियों के विस्तार में बाधक होते हैं; उदाहरणार्थ, यदि दो निकटवर्ती स्थानों को कोई लम्बा चौड़ा शिला युक्त पर्वत पृथक् करता हो तो सम्भव है कि एक स्थान के नदी नालों में जिस प्रकार की मछलियां विद्यमान हैं उस प्रकार की मछलियां दूसरे स्थान पर विद्यमान न हों क्योंकि पर्वतों को लांघ कर एक स्थानकी मछली दूसरे स्थान पर नहीं जा सकती। प्राणियों के भौगोलिक विस्तार पर विचार करने के समय ऐसे तथा इस प्रकार के अन्य प्रमेयों का यथायोग्य स्मरण रखना चाहिये; तथापि ऊपर जितना कुछ बतलाया गया है उस से प्राणियों के भौगोलिक विस्तार में विकास की विद्यमानता तथा विशिष्टता स्पष्टतया प्रकट होती है।

समारोप—इस प्रकार प्राणियों के स्वाभाविक वा प्राकृतिक इतिहास को पढ़ कर तथा इस इतिहास के प्रत्येक विभाग में एक ही प्रकार के विकास दर्शक स्पष्ट प्रमाणों को पाकर कोई विचारशील मनुष्य विकासवादी बने बिना नहीं रह सकता। इस प्रकार के प्रमाणों को देख कर ही विकासवादी मुक्त कंठ से कहते हैं कि सब प्रकार के जीवित प्राणी एक ही जाति के आद्यवंशजों से संतति–अनुसंतति द्वारा उत्पन्न हुए हैं, और इनके वर्तमान के भिन्न भिन्न रूप परिस्थिति के अनुरूप बने हुये हैं। अद्यावधि जितने प्रमाण मिले हैं। उन द्वारा विकासवाद की पूर्णतया स्थापना हो जाती है और जो जो नया अन्वेषण होता जाता है वह विकासवाद को पुष्ट ही करता जाता है; कहीं भी किसी अन्वेपण में विकासवाद के विरोध करने वाले प्रमाण नहीं मिले हैं; जितने जितने नये अन्वेषण हुए हैं उनको विकासवाद की स्थापना में योग्य स्थान मिल गया है। जीवन युक्त संसार तथा उस के भिन्न भिन्न प्राणियों का विकासवाद की स्थापनाओं

से जो युक्तियुक्त स्पष्टीकरण दिया जाता है उस स्पष्टीकरण से अधिक प्रभावशाली तथा प्रमाण पूर्ण स्पष्टीकरण अन्य स्थापना से नहीं दिया जा सकता *विकासवाद की स्थापनाएं सचमुच प्राणियों के विषय में सत्यज्ञान हैं ।*

चतुर्थ खंड

विकास एक प्राकृतिक घटना है।

चतुर्थ खंड

अध्याय १

विकास एक प्राकृतिक घटना है ।

प्रास्ताविक—विकास के निमित्त कारणों पर अब आगे विचार होगा—परिचित प्राणियों से यहां भी सामग्री प्राप्त हो सकती है—प्राणियों की यन्त्रों के साथ तुलना—"अनुकूलन" (Adaptation)-परिवर्तन (Variation)—परिवर्तनों के तीन मुख्य कारण—परिस्थिति (Environment)—(२) कार्य (Function)—(३) इन परिवर्तनों की संक्रमणशीलता ।

प्रास्ताविक- पूर्व के तीन खण्डों में जीवन शास्त्र के मुख्य मुख्य विषयों के प्रमाणों को प्रस्तुत करके उनसे विकास की प्रत्यक्ष विद्यमानता बतलाने की चेष्टा की गई; वहां यह सिद्ध करने का प्रयत्न हुआ कि इस संसार के प्राणियों की भिन्नता संसार के प्रारम्भ में नहीं है ; विशिष्टोत्पत्तिवादियों के मतानुसार यह मान लेना कि सृष्टि के निर्माता ने प्रारम्भ में भिन्न भिन्न प्राणियों के युग्म निर्माण किये, जिनकी संतति आज कल दिखाई देने वाले भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी हैं, बिलकुल युक्ति, विचार, तथा प्रमाण रहित है । प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष प्रमाणों से यही मानना युक्तियुक्त है कि प्राणियों की भिन्नता के कारण परिस्थिति तथा स्वाभाविक परिवर्तन हैं ।

पूर्व के तीन खंडों में मुख्य मुख्य विषयों के केवल स्थूल स्थूल प्रमाणों का हम ने सामान्य रीति से विवेचन किया और विकास की वास्तविकता तथा यथार्थता सिद्ध की । प्राणियों की शरीर रचना वृद्धि, तथा चट्टानान्तर्वर्ति प्रस्तरीभूत शरीरों का जिस प्रकार हमने

वर्णन किया उससे यदि अधिक विस्तार पूर्वक तथा अधिक सूक्ष्मता के साथ हम वर्णन करते तथापि हमारा यह विचार है कि विकास की वास्तविकता तथा प्रत्यक्षता अधिक अच्छे प्रकार कदाचित् ही स्पष्ट होती।

अब तक जितना बताया गया वह प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान प्रमाणों के आधार पर हुआ और उससे विकास की स्थापना मात्र हुई।

अब हम को उन प्राकृतिक शक्तियों पर विचार करने की आवश्यक्ता प्रतीत होती है जिनके कारण प्राणियों में परिवर्तन आते हैं और उनके भिन्न भिन्न रूप तथा आकार निर्मित होते हैं। वैज्ञानिकों ने इस विषय के ऐसे सुगम तथा परिचित प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि उन्हें देखकर हम विस्मित होते है।

एक न एक कारण से विकासवाद की जिज्ञासा रखने वालों में से कइयों के मन में यह बात खटकती है कि यदि भिन्न २ प्राणियों की विकास द्वारा उत्पत्ति हुई भी हो तो वह प्राचीन समय मे हुई होगी, वर्तमान में प्राणियों का वह विकास अवश्य बन्द हुआ होगा। कभी २ उनका यहा तक विचार हो जाता है कि वैज्ञानिक लोग गोल मोल रीति से प्राचीन समय के प्राणियों की उत्पत्ति विकासद्वारा सिद्ध भी क्यों न करदें परन्तु ये वर्तमान समय के स्थिर प्राणियों की उत्पत्ति को कभी भी विकास के प्रमाणों से स्यात् सिद्ध न कर सकें। इस प्रकार के विचारोंने उनके मन पर इतना पक्का घर कर लिया होता है कि उन को छोड़ना उन्हें कठिन प्रतीत होता है। इन मनुष्यों का यह विचार कि वर्तमान समय में प्राणियों का विकास नहीं हो रहा उतना ही हास्यास्पद है जितना तब होता यदि कोई मनुष्य यह कहे कि प्राचीन समय में पृथ्वी चाँहे सूर्य के चारों ओर घूमती रहती हो, वर्तमान

में तो वह बिलकुल स्थिर है। जिज्ञासु के मन में इस प्रकार
चार उठने का कारण यह प्रतीत होता है कि जो महान् मह
कृतिक घटनाएँ होने में आती हैं उन की सहस्रों वर्षों की
होती है, जिसके सामने मनुष्य की आयु पहाड़ के मुकाबिले में
सदृश है; अतः ऊपर ऊपर विचार करने वालों को ये
स्थिर प्रतीत होती हैं। पर्वत, नदियां, सागर, आदि अद्भुत
ठीक सोचा जाय तो, स्थिर नहीं हैं; उन में दृश्य और अदृश्य प
बराबर प्रति दिन होते रहते हैं। प्राणियों की भी यही व
प्राणियों की भिन्न भिन्न जातियां और उपजातियां स्थिर प्रतीत
हैं परन्तु उन में भी बराबर परिवर्तन होते रहते हैं जो कई
वर्षों के पश्चात् दृश्यमान होते हैं। जिस प्रकार किसी मह
(Continent) के बनने और नष्ट होने में अगणित वर्ष लग
उसी प्रकार विकास द्वारा किसी उपजाति का प्रादुर्भाव, वृद्धि,
समूल नाश के लिये लक्षों वर्षों की अवधि आवश्यक है। प्र
की विकास द्वारा उत्पत्ति होती है वा नहीं, एक प्रकार के प्र
भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणी बनते हैं वा नहीं, इस प्रकार के निर
करने वाला मनुष्य भी विकास की क्रिया के किसी अत्यंत
भाग को भी प्रत्यक्ष होते हुए पूर्णतया नहीं देख सकता। यही व
है कि जीवित प्राणी स्थिर तथा अपरिवर्तनशील प्रतीत होते हैं।
प्रकार की भ्रामक कल्पनाएँ हमारा पीछा तब तक नहीं छोड़तीं
तक हमको विज्ञान द्वारा यह निश्चय नहीं होता कि विकास एक वा
विक शक्ति है।

भूगर्भशास्त्र तथा प्राणिशास्त्र के वेत्ताओं की इस संसार का
कालीन इतिहास ज्ञात करने की विधि समान है। भूगर्भशास्त्र
वेत्ता प्रथम भूपटल के नवीन और प्राचीन चट्टानों का परिक्षण क

उन को बनाने वाली प्राकृतिक शक्तिया के सादृश्य और विभेद का ज्ञान प्राप्त करते है । भूगर्भशास्त्र वेत्ताओं का यह अनुमान हुआ है कि प्राचीन तथा वर्तमान समय की प्राकृतिक शक्तिया एक ही प्रकार की है क्योंकि प्राचीन और नवीन चट्टान उन्हे एक ही प्रकार के प्रतीत होते है ।

प्राणीशास्त्र के वेत्ता भी इसी मार्ग का अवलम्बन करते है, प्रथम प्राणियों की शरीर की रचना, वृद्धि, तथा अन्य बातों पर विचार करके कुछ मोटे २ सिद्धान्त ज्ञात करते है और पश्चात वे अपनी दृष्टि इन सिद्धान्तों के निमित्त तथा प्रवर्तक कारणों की ओर दौड़ाते हैं ।

अब आगे विकास के निमित्त कारणों पर विचार होगा:– हमने भी प्रथम प्राणियों की शारीरिक रचना, परस्पर के सबध, वृद्धि, तथा अन्य आवश्यक बातों पर विचार करके यह देखा कि प्राणियों की वर्तमान समय की भिन भिन्न अवस्थाए विकास का ही परिणाम हैं । अब आगे हमको इस बात पर विचार करना चाहिये कि इस प्रकार का निमित्त कारण वा आदि कारण क्या है, और किन कारणों द्वारा इनका इस प्रकार विकास हुआ है । अब तक जितना विवेचन हुआ वह अधिकतर दृष्ट बातों पर हुआ, अब आगे का विवेचन विशेषत विचारात्मक बातों पर होवेगा । प्राणियों के जीवन व्यापारों को देखकर उन में कार्य करने वाली जो प्राकृतिक शक्तिया प्रतीत होती है उन पर तथा उनके अनुसार विकास की विधि Method पर अब हम विचार करेंगे ।

परिचित प्राणियों से यहां भी सामग्री मिल सकती है:– पूर्व की न्याई अब भी इस कार्य के लिये हम परिचित प्राणियों से ही सामग्री एकत्रित करेंगे । बिल्ली और मण्डूकों से विकास की वास्तविकता को सिद्ध करने में हमको बहुत से प्रमेय प्राप्त हुए थे । अब

विकास की विधि (Method) को ज्ञात करने के लिये इसी प्रकार किसी परिचित प्राणी के जीवन व्यापार का अल्प समय तक का ब्योरा पर्याप्त है। **क्योंकि विकास सर्वत्र प्रचलित है और विकास की विधि सर्वत्र एक प्रकार की है हम किसी भी प्राणी के जीवन व्यवहार का निरीक्षण कर के उस के** आधार पर विकास की विधि के संबंध में स्थूल तत्व ज्ञात कर सकते है।

प्राणियों की यन्त्रों के साथ तुलना:–पाठकों को स्मरण होगा कि पहिले एक वार हमने यन्त्रों का वर्णन देकर प्राणियों की यन्त्रों के साथ तुलना की थी। अब भी इस तुलना से हमको अपने विषय का स्पष्टीकरण करने में सुगमता प्राप्त होगी। हम जानते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी प्रकार के यन्त्र को बनाने लगता है तब उस के मन में प्रथम किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति करने की इच्छा उत्पन्न होती है और फिर उस उद्देश्य के अनुकूल वह अपने यन्त्र को घड़ने की चेष्टा करने लगता है। अर्थात् वह उस यंत्र में प्रथम आवश्यक बात यह चाहता है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह पर्याप्त हो। अब मनुष्य जब इस प्रकार के यन्त्र को बनाने लगता है तब प्रथम वार ही उससे ऐसा यन्त्र बनने नहीं पाता। उस में किसी न किसी संशोधन की आवश्यकता अपेक्षित रहती है; कई वार भिन्न २ क्रमों में से गुज़रना पड़ता है तब कहीं अपने उद्देश्य को सफल करने वाला कोई यन्त्र बनता है। यन्त्र के बनने में संक्षेपतः हम तीन बातों को स्पष्टतया देखते हैं (१) निर्माता के उद्देश्य के अनुकूल बनना; निर्माता का उद्देश्य यन्त्र की परिस्थिति है अत उद्देश्यके अनुकूल बनना या **परिस्थिति के अनुकूल बनना** दोनें का भाव एक ही है। (२) यन्त्र की अन्तिम अवस्था तक पहुंचने के पूर्व **बहुत सी भिन्न भिन्न रचनाओं का अस्ति**

में आना तथा नाश होना और (३) इन बहुत सी रचनाओं में से अन्त में उस रचना का स्थिर रहना जो सब में श्रेष्ठ हो।

२—अब यदि प्राणियों की तुलना यन्त्रों के साथ करनी हो तो प्रश्न यह उपस्थित हो सकता है कि यन्त्रों में तोड़ फोड़ कर के जिस प्रकार यन्त्रों को अपने उद्देश्य के अनुकूल बनाया जा सकता है क्या प्राणी भी उसी प्रकार अपने आपको परिवर्तनों द्वारा अपनी परिस्थिति के योग्य बना सकते हैं, अर्थात् क्या उन में अनुकूलन है ? और यदि माना भी जाय कि वे अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल बना सकते हैं। तो क्या इस प्रकार अपने आपको अनुकूल बनाने में जो उन में परिवर्तन आते है वे उन की संतति में भी संक्रमित होते हैं ? विकास की विधि पर जब हम विचारने लगते हैं तब ऐसे तथा एतत्सम्बन्धी कई अन्य तात्विक प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होते है। तात्विक प्रश्न कभी कभी तो ऐसे होते हैं कि उन का संपूर्ण उत्तर प्राप्त करना बहुत कठिन तथा असम्भव भी हो जाता है; और इस प्रकार के प्रश्नों के सम्पूर्ण उत्तर प्राप्त करने की आशा भी करनी नहीं चाहिये। सम्पूर्णतया उत्तर मिले वा न मिले इन प्रश्नों पर विचार करने में हमारा मुख्य उद्देश्य यह है कि विकास एक प्राकृतिक घटना सिद्ध हो जाय।

३—यन्त्रों के बनाने में जिस प्रकार हमें तीन मुख्य बातों का विचार करना पड़ता है उसी प्रकार प्राणियों के विकास की विधि पर विचार करते हुये (१) **अनुकूलन** (Adaptation) (२) **परिवर्तन** (Variation) तथा (३) **परंपराप्राप्ति** (Inheritance) इन तीन बातों पर हमको विचार करना चाहियें और इन पर विचार करने के पश्चात्

इनको यह देखना चाहिये कि इन घटनाओं के प्राकृतिक कारण हैं या नहीं।

अनुकूलन– Adaptation ("अनुकूलन" की घटना सार्वत्रिक दिखाई देती है; जड़ पदार्थों में अनुकूलन की शक्ति मनुष्यों द्वारा डाली जाती है और चेतनों में वह स्वाभाविकतया विद्यमान है, अनुकूलन की शक्ति चाहे कृत्रिम हो वा स्वाभाविक हो। इसके बिना गुजारा करना बहुत कठिन है, इस के अभाव में संसार के सब कार्य रुक जायेंगे. संसार में जो प्राकृतिक शक्तियां काम कर रही हैं वे पूर्णतया नियमानुकूल कार्य कर रही हैं; उनके नियमों में किसी प्रकार का विघ्न नहीं डल सकता और यदि इन नियमों का हम अच्छे प्रकार परिशीलन करेंगे तो हमें यह ज्ञात होगा कि, बुद्धि युक्त वा बुद्धि रहित, सब प्राणियों में परिस्थिति के अनुसार अपने आप को बनाने की शक्ति विद्यमान है। यदि किसी प्राणी में इस प्रकार शक्ति विद्यमान न हो तो उसका जीना अशक्य है, उदाहरणार्थ, जमीन पर जीवन का गुजारा अशक्य देख कर व्हेल मछली के आद्य पूर्वजों ने जल में रहना जब से प्रारम्भ किया तब से उन के लिये यह आवश्यक हुआ कि उनका शरीर जल में रहने के योग्य बन जाय, और शरीर के अन्य अवयव भी इसी प्रकार यथावश्यक परिवर्तित हों। हम देखते हैं कि व्हेल के हाथों का स्वरूप जल को काटने के योग्य चप्पुओं के समान बन गया है,. पैरों का कोई कार्य न रहने के कारण वे दुर्बल, शक्तिहीन, तथा सूक्ष्मरूप के हो गए हैं, और पूछ के हिस्से की रीढ़ की अस्थियां बलवान हो गई हैं। समुद्र पर रहते हुए पेंग्विन पक्षी के (पृष्ठ ६३) के पंखों में पानी को काटने की शक्ति यदि उत्पन्न न होती तो वह किसी भी अवस्था में समुद्र पर रह कर अपना निर्वाह न कर सकता, उसका अवश्य नाश हो जाता, उसके पंखों में

पानी के काटने की शक्ति का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक तथा आवश्यक था । बगले के पैर लंबे और दृष्टि यदि तीक्ष्ण न होती तो किनारे पर के थोड़े जल में खड़े होकर अपने भक्ष्य को वह कभी भी न पा-सकता । वनस्पतियों के पत्तों पर निर्वाह करने वाले कीड़ों का रंग यदि उन पत्तों के सदृश न होता तो उन की अपने शत्रुओं से रक्षा किस प्रकार होती ? शत्रु से घिरजाने पर प्राणियों में अपने शरीर के रंग तथा आकार परिवर्तन करने की, अपने आप को मृतवत् बनाने की शक्ति न होती तो उनका अपने शत्रुओं से छुटकारा कैसे होता ? इस प्रकार एक न एक बीसियों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिन सें यह अनुमान हो सकता है कि प्राणियों में अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल बनाने की शक्ति विद्यमान है ।

यह शक्ति कैसे उत्पन्न होती है:—इस बात को आधार बनाकर कि प्राणियों में "अनुकूलन" की शक्ति है हम अब इस बात पर विचार करना चाहते है कि प्राणियों में यह अनुकूलन किस प्रकार उत्पन्न होता है ।

यन्त्रोके "अनुकूलन" के सम्बन्ध में हम को जिन बातों पर विचार करना आवश्यक होता है उन से अधिक बातों पर प्राणियों के अनुकूलन शक्ति के संबन्ध में विचार करना पड़ता है, क्योंकि प्राणियों के विषय में हम को इस बात पर भी विचार करना पड़ता है कि यह अनुकूलन शक्ति उन की संतति में किस रीति से संक्रमित हो जाती है । विकास की विधि पर विचार करते हुए हम को दो प्रकार की विधियों पर विचार करना चाहिये पहली "प्राथमिक" विधि है (Primary Process) जिस से भिन्न भिन्न परिस्थिति के कारण प्राणियों में परिवर्तन (Variation) उद्भूत होते हैं और दूसरी

गौण विधि (Secondary Process) जिस से एक बार उत्पन्न हुए हुए परिवर्तन संतति के परंपरा द्वारा प्राप्त होते हैं (Preservation of Variations through Inheritance)। प्राथमिक विधि से परिवर्तन निर्माण होते हैं और गौण विधि से उद्भूत हुए हुए परिवर्तनों की रक्षा होती है; ये दोनों प्रकार की विधियां विकास के लिये समान महत्व की हैं।

" परिवर्तन " Variation :—यह संज्ञा उस प्राकृतिक घटना के लिये प्रयुक्त की जाती है जिसका सम्बन्ध प्राणियों की भिन्नताओं के आद्य प्रादुर्भाव से है। हम देखते हैं कि कोई भी बालक अपने माता पिता के पूर्णतया समान नहीं होता और न ही वह अपने किसी आद्यपूर्वजों वा अन्य सम्बन्धियों के पूर्णतया समान होता है। पैत्रिक अवस्था से भिन्न अवस्था का बन जाना तथा अपने निकट सबंधियों से पृथक् प्रकार का बन जाना, ये दो प्रकार के परिवर्तन हैं जो स्पष्ट रीति से दीख पड़ते हैं। किसी विशिष्ट बात को दृष्टि में रखते हुए किसी प्राणी में थोड़े और किसी में अधिक " परिवर्तन " उत्पन्न होते हैं। प्राणियों में जो परिवर्तन आते हैं उनका यदि मान लगाना हो, तो प्राणी की जाति में प्रत्येक परिवर्तन की जो औसत बैठती है उस के अनुसार लगाया जा सकता है। संक्षेप में " परिवर्तन " शब्द से प्राणियों की अपने माता पिता, भाई तथा अपनी जाति के अन्य प्राणियों से जो भिन्नता होती है उसका बोध कराता है।

परिवर्तन के तीन मुख्य कारण:—परिवर्तनों के उत्पन्न होने के तीन मुख्य कारण प्रतीत होते हैं; प्रथम परिस्थिति (Environment), दूसरा कार्य (Function), और तीसरा पैत्रिक संस्कार (Congenital or Hereditary Influences)।

१—" परिस्थिति " (Environment)—यह शब्द निकट वर्ति पदार्थों का द्योतक है, किसी प्राणी की " परिस्थिति " से उस प्राणी को छोड़कर उसके साथ सबद्ध उसके चारों ओर के अन्य सब पदार्थ निर्दिष्ट होते है। किसी प्राणी की "परिस्थिति" में उसकी अपनी जाति के वा अन्य जाति के प्राणियों का तथा उस पर प्रभाव डालने वाली सब सजीव वा निर्जीव शक्तियो का अन्तर्भाव होता है। उदाहरणार्थ यदि किसी सिंह की " परिस्थिति " पर हम विचार करें तो एक ओर उसकी "परिस्थिति" में उसके माता, पिता, भाई, और उस प्रदेश में रहने वाले अन्य सिह, जिन के साथ भक्ष्य की प्राप्ति के लिये उसे स्पर्धा तथा विरोध करना पडता है, ऐसे पाणी और दूसरी ओर गौ, बैल, हिरण आदि अन्य पशु जिन के ऊपर यह निर्वाह करता है, तथा सिंह के शिकार खेलने वाले मनुष्य जाति के प्राणी सम्मिलित हैं। रात्रि का अधकार तथा दिन का प्रकाश, गार्मियों की गर्मी और जाड़ों की सर्दी, वर्षा जल के कारण नदियों की बाढ़, तथा घर्षण से उत्पन्न होने वाली चिंगारी से अरण्य में लगने वाली अग्नि, ये तथा इन के समान अन्य शक्तिया जिन का सिंह के जीवन पर प्रभाव पडता है वे भी उस उपरोक्त सिंह की "परिस्थिति में" सम्मिलित है।

ऊपर के उदाहरण में हम ने निर्जीव पदार्थों को " परिस्थिति " में सम्मिलित किया है। इन का सब वस्तुओं और विशेषत. प्राणिया के जीवन पर जो प्रभाव है उस से हम में से सब परिचित हैं, उस का अत्यधिक वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं। देखिये ठंडे प्रदेश के मनुष्य उष्ण प्रदेश में जब रहने के लिये जाते है तब उन को क्षय रोग (तपेदिक) होने का भय होता है, उष्ण प्रदेश लोग जब ठंडे प्रदेश में रहने के लिये जाते हैं तब उनको फेफड़ों के विकार की सभावना होती है, प्रकाश को रोकने से तथा अधेरे में रखने

से वृक्षों के पत्ते पीले पड़ जाते हैं और अत्यन्त ठंडे प्रदेश में रहनेवाले पशुओं को, विशेषतः कुत्ते को, गर्म प्रदेश में लेजाने से रोग होकर जीवन से छुटकारा करना पड़ता है। चिड़िया घरों में पाले हुए पशुओं के इस विषय में कई दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। कईयों ने यह देखा होगा कि जिस वर्ष अकाल पड़ता है उस वर्ष न केवल वृक्षों की वृद्धि रुक जाती है अपितु वृक्षों पर नए नए विचित्र अवयव फूट निकलते हैं।

(२) **कार्य** (Function):—प्राणियों में परिवर्तनों का दूसरा कारण उनके कार्य (Function) है। पहले प्रकार के परिवर्तनों से ये परिवर्तन अधिक संकीर्ण (Complex) होते हैं। उदाहरणार्थ, लोहार के बाहुओं के पट्ठे अन्य मनुष्यों के पट्ठों की अपेक्षा प्रयोग में अधिक आते हैं अतः उनमें शक्ति भी अधिक होती है। हम जानते हैं कि शरीर का प्रत्येक भाग भिन्न भिन्न प्रकार के व्यायाम द्वारा विशेष रीति से पुष्ट किया जा सकता है। यदि ऐसा करना अशक्य होता और शरीर के अवयवों को प्रयोग में लाने से शरीर में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न होता तो हमको यह मानना पड़ेगा कि व्यायाम शाला में जाकर व्यायाम करने से शरीर की उन्नति नहीं हुआ करती। व्यायाम के पश्चात् की अवस्था वैसी ही रहती है जैसी कि उसके पूर्व होती है। दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि यदि शरीर के किसी अवयव को प्रयुक्त न किया जाय तो उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। इस प्रकार की घटनाओं से हम अच्छे प्रकार परिचित हैं। फकीरों तथा वैरागियों की भारतवर्ष में कमी नहीं है; कई वैरागी ऐसे देखे जाते हैं कि जिन्होंने अपना एक हाथ कई वर्षों तक खड़ा किया और वह निकम्मा पड़ गया। ७ वा ८ वर्षों तक इस प्रकार खड़े रक्खे हाथ में किसी प्रकार का भी कार्य

करने की शक्ति अवशिष्ट नहीं रहती; वह हाथ काष्ठ प्राय हो जाता है यहां तक कि आवश्यकता पड़ने पर भी नहीं झुकाया जा सकता। इस एक उदाहरण से ही हम समझ सकते है कि प्राणियों के शरीर में किस प्रकार संस्कार-ग्रहण-शीलता (Plasticity) है और किस प्रकार के कार्य से तथा कार्याभाव से उन पर संस्कार होकर उनमें परिवर्तन उत्पन्न होते हैं।

(३) **"पात्रिक सँस्कार"** (Hereditary Influences):— पैत्रिक संस्कारों से जो परिवर्तन शरीर में उत्पन्न होते है वे "परिस्थिति", तथा "कार्य" से होने वाले विकारों से बहुत विशिष्ट है। पैत्रिक संस्कारों से उत्पन्न होने वाले विकारों को, पूर्व प्रकार के दो विकारों की न्याई, दृग्गोचर प्रमाणों से नहीं बतलाया जा सकता, तथापि ये चाहे कितने ही दूरवर्ति अथवा अव्यक्त क्यों न हों, इनके परिणाम संतति पर अवश्य स्पष्ट तथा वास्तविक रूप में प्रकट होते हें; इनमें और अन्य परिणामों में अन्तर भी पर्याप्त है। पैत्रिक संस्कार प्राणियों के शरीर के साथ ही उत्पन्न होते है और तब ही से उन पर इन का प्रभाव होने लगता है। उदाहरणार्थ, रक्त पीति या कुष्ट से पीड़ित मनुष्य की संतति में ये रोग संक्रमित होते हैं, और इन के संस्कार का प्रभाव संतति पर जन्म से ही होने लगता है। विलायत के लोगों में प्रायः यह नियम है कि भूरे बालों तथा काली आंखों वाले माता पिताओं की, श्वेत (Light) बालों तथा भूरी आंखों वाली संतति होती है। *संतति में इस प्रकार जो संस्कार उत्पन्न होता है क्या वह पैत्रिक* नहीं है? इस का कारण आनुवंशिक तथा पैत्रिक संस्कारों के अतिरिक्त क्या कोई अन्य हो सकता है? इस परिणाम के तात्विक कारणों को ज्ञात करने की आवश्यकता है और आगे चल कर हम इस पर विचार करेंगे। यहां पर इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि इस

प्रकार के पैत्रिक संस्कारों से प्राणियों में किसी न किसी प्रकार के संस्कार अवश्य उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार प्राणियों के परिवर्तनों की मुख्य विधियां पूर्णतया स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। जीवन की बहुत स्पष्ट स्पष्ट घटनाओं पर यदि हम साधारण सी दृष्टि डालें तो भी इस स्वाभाविकता का हम को अच्छे प्रकार परिचय होता है और जीवन की भिन्नता पर हम को कोई सन्देह नहीं होता और न हो भी सकता है, क्योंकि उन भिन्नताओं को हम प्रत्यक्ष देखते है। इन प्रत्यक्ष घटनाओं पर भी यदि हम सन्देह करने लग जांय तो इसका यह अर्थ होगा कि हम को अपने निज के निरीक्षणों पर कोई विश्वास नहीं है। प्राणियों में भिन्नता है और वह स्वाभाविक कारणों से उत्पन्न होती है इस पर हमारा पूर्ण विश्वास होना चाहिये, चाहे इन भिन्नताओं की उत्पत्ति वर्तमान समय में हम सन्तोष जनक कारणों को देकर लगा सकें वा न। समय हमें स्वतः उन कारणों से पूरा परिचित कराएगा।

इन परिवर्तनों की संक्रमणशीलता—प्राणियों के परिवर्तन स्वाभाविक हैं इस निश्चय पर पहुंच जाने के पश्चात् हम को अब विचार करना चाहिये कि प्राणियों के ये परिवर्तन संक्रमण शील हैं वा नहीं। प्रश्न तो बहुत महत्व का है पर इस पर अब तक पूर्णता से किसी प्रकार का निश्चय नहीं हुआ है। वफन (Buffon) आदि कुछ वैज्ञानिकों की यह सम्मति है कि परिस्थिति के कारण उत्पन्न हुए हुए विकार संतति में संक्रमित होते हैं; उदाहरणार्थ सूर्य की तप्त किरणों से गर्म प्रदेश में रहने वालों के शरीर काले वर्ण के हो जाते हैं, और परिस्थिति की यह कृष्ण वर्णता उन की संतति में संक्रमित होती है। लामार्क (Lamark) आदि कुछ वैज्ञानिकों की यह सम्मति

है कि शारीरिक कार्यों से उत्पन्न हुए हुए परिवर्तन संतति में संक्रमित हो जाते हैं ।

तीसरे प्रकार के वैज्ञानिक, जिन का चार्ल्स डार्विन (Charles Darwin) प्रसिद्ध नेता है, कहते हैं कि प्राणियों की भिन्नता का मुख्य कारण प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection) है और इस के साथ ही पैत्रिक तथा आनुवंशिक विकारों का संक्रमण प्रधानतया सन्तति में होता है, उन का यह कथन नहीं है कि अन्य विकारों से उत्पन्न हुए हुए परिवर्तन सन्तति में संक्रमण नहीं होते हैं; अपितु उन के कथन का तात्पर्य पैत्रिक संस्कारों पर विशेष बल देना है।

डार्विन की प्राकृतिक चुनाव की स्थापना के अनुयायी वर्तमान वैज्ञानिकों में बहुत से हैं, इस मत का सविस्तर वर्णन देकर पश्चात् बफन, लामार्क, आदि वैज्ञानिकों के मत में और डार्विन के मत में क्या क्या भेद हैं उन पर विचार करना ठीक होगा, परन्तु यहां इतना लिखे विना हम रुक नहीं सकते कि भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों के चाहे जो कुछ मत हों और चाहे किसी प्रकार से वे इन विषयों के स्पष्टी करण देते हों, इस में कोई सन्देह नहीं कि सर्व वैज्ञानिक दोनों प्रकार के प्राथमिक तथा गौण परिवर्त्तनों को पूर्णतया स्वाभाविक मानते हैं और एतद्विषयक किसी प्रकार का उन में मत भेद नहीं है ।

अध्याय (२)

प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection)

प्रास्ताविक—कुल प्राणी अपनी परिस्थिति के अनुरूप बने हुए दिखाई पड़ते हैं—डार्विन की पुस्तक "उप जातियों की उत्पत्ति"—पांच मुख्य तत्त्व—(१) "परिवर्तनों की सार्वत्रिक विद्यमानता"—

(२) अत्युत्पादन (Over-production)—*(३) जीवन के लिये संग्राम* (The struggle for existence)—*जीवन संग्राम में प्राणियों को तीन प्रकार से अपनी रक्षा करनी पड़ती है—(क) निर्जीव परिस्थिति से (ख) अन्य जीवित प्राणियों से साम्मुख्य (ग) अपने भाई बन्धुओं से स्पर्धा—(४) इस संग्राम में अयोग्य प्राणियों का नाश और योग्यों की रक्षा—(५) विशेषताओं का संतति में संक्रमण—सारांश।*

प्रस्ताविक—प्राकृतिक चुनाव की स्थापना का सब गौरव डार्विन महाशय को है। यह स्थापना बहुत रोचक रीति से बतलाती है कि पूर्व समय में किस प्रकार विकास हुआ और वर्तमान में वह किस प्रकार हो रहा है। इस स्थापना के द्वारा वैज्ञानिकों के मन पर प्रारंभ से विकास ने अपना बहुत प्रभाव जमा लिया है और जब से यह स्थापना की गई है तब से आज तक जितने नए नए अन्वेषण हुए हैं, उनमें से सब के सब इस स्थापना की मुख्य मुख्य बातों का पोषण ही करते गए हैं। डार्विन के पश्चात् इस स्थापना का बहुत विस्तार हुआ है और असंख्य पोषक उदाहरणों के कारण अब इस का प्रभाव बहुत बढ़ गया है। केवल बहुत अल्प स्थानों पर इस स्थापना की गौण बातों में थोड़ा सा संशोधन हुआ है।

इस स्थापना का सविस्तर वर्णन करने के पूर्व हम यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि डार्विन की यह स्थापना अधिकतर प्राकृतिक परिवर्तनों की विधि को दर्शाती है; प्राकृतिक परिवर्तनों की विद्यमानता के प्रमाण प्रस्तुत करने का इसका गौण कार्य है। विज्ञान की बातों से जो बहुत भले प्रकार परिचित नहीं हैं उनकी यह कल्पना बनी हुई प्रतीत होती है कि डार्विन महाशय विकासवाद की स्थापना

का मूल कर्ता है। परन्तु इन मनुष्यों का यह एक केवल भ्रम है। विकासवाद तो डार्विन के बहुत पूर्व से चला हुआ था और डार्विन के बहुत पूर्व के लोग जानते थे कि प्राणियों में प्राकृतिक परिवर्तन होते हैं। "उप जातियों" की उत्पत्ति "Origin of species" पर डार्विन ने एक बहुत उपयुक्त तथा अनमोल १४ अध्यायों की पुस्तक लिखी है और इस पुस्तक के अन्त के केवल एक ही अध्याय में विकासवाद की सत्यता के प्रमाणों का विवेचन है। डार्विन ने २५ वर्षों तक प्राकृतिक घटनाओं का तथा भिन्न २ प्रदेश के प्राणियों के परस्पर व्यवहारों का निरीक्षण करके उनसे जो सामान्य तत्व प्रतीत हुए उनका इस पुस्तक में वर्णन किया है। डार्विन ने इस पुस्तक में तथा अन्य पुस्तकों में प्राकृतिक चुनाव तथा प्राणियों की विजातियों और उपजातियों की उत्पत्ति के विषय में इतनी सामग्री एकत्रित कर रक्खी है कि उससे प्राणियों के विकास की घटना का बहुत अच्छे प्रकार से युक्ति युक्त अनुमान निकलता है। इन्हीं पुस्तकों द्वारा बुद्धिमान लोगों के हृदय में विकास की वास्तविकता तथा सहेतुकता पर पूर्ण विश्वास उत्पन्न हुआ। इन्हीं कारणों से डार्विन को विकासवाद का आद्य उत्पादक लोग कहने लगे। डार्विन ने जिस वर्ष प्राकृतिक चुनाव पर अपना जग प्रसिद्ध ग्रंथ प्रकाशित किया (१८५९) उसी वर्ष में आलफ्रेड रसेल वालेस (Alfred Russel Wallace) ने स्वतंत्रतया अपनी ओर से प्राकृतिक चुनाव पर ही एक अन्य ग्रंथ प्रकाशित किया था। डार्विन महोदय का अंतकाल हो चुका है (१८८२) और वालेस महोदय का हाल में ही (नवंबर १९१३) हुआ है। विकास के पोषण करने वाले प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त की महत्ता एक ही समय में इन दोनों महान वैज्ञानिकों को सूझी परंतु बहुत उदारता तथा कुलीनता का परिचय देते हुए वालेस महोदय ने स्वयं प्रसिद्ध किया कि इस स्थापना के

आविष्करण का सर्व गौरव डार्विन को ही देना चाहिए क्योंकि उन्हों ने इस विषय में अधिक विस्तार पूर्वक निरीक्षण तथा अन्वेषण करके इस स्थापना को अधिक अच्छे प्रकार प्रमाणित कर दिखाया है* ।

कुल प्राणी अपनी परिस्थिति के अनुरूप बने हुए दिखाई पड़ते हैं:—प्राकृतिक चुनाव का मुख्य तत्व यह है कि सब प्राणी कम या अधिक प्रमाण में अपनी परिस्थिति के अनुकूल बन जाते हैं। कोई भी प्राणी अपने जीवन क्रम में इस परिस्थिति के चक्र से नहीं बचता,

---

वाल्स महोदय की मृत्यु होने पर इग्लेण्ड के समाचार पत्रों में जो लेख प्रसिद्ध हुए हैं उन में एक निम्न प्रकार का है * With the passing of Alfred Russel Wallace the last of the great band of evolutionary thinkers that made the middle years of the nineteenth century famous has gone from us Wallace will be remembered in the years to come less perhaps, for his part in discovering the secret of organic evolution than for the chivalry which prompted him to stand aside in order that his co-disco verer, Darwin, might claim the lion's share of the credit The magnanimity he displayed on that occasion marked his whole subsequent career always he referred to the famous theory he helped to formulate as " Darwinism " " Nothing in the history of science, ' writes Dr Arch dall Reid, ' is more remarkable than Wallace's attitude No one would suspect from his own writings that he was Darwins' co discoverer of the theory of natural Selection He assigns the whole credit to the elder thinker ' Posterity, we cannot doubt, will accord him the justice he denied himself His abnegation constitutes one of those shining examples that the world does not willingly die " Literary Guide, Dec 1913

ओर यदि वह अपने आप को परिस्थिति के अनुकूल न बना देवे तो उस का अवश्य नाश हो जाता हे । पूर्व पृष्ठों में स्थान स्थान पर हमने यह बताया है कि जहा कहीं देखा जाय सर्वत्र यही दिखाई देता है कि कुल प्राणी अपनी अपनी परिस्थिति के अनुरूप बने हुए है । कोई प्राणी स्वतन्त्र नहीं है, उसका जीवन असख्य प्रकार के अन्य जीवनों के साथ बद्ध है । प्रत्येक प्राणी को नित्य प्रति अपना भोजन प्राप्त करने के लिय अन्य प्राणियों के साथ निरन्तर युद्ध करना पडता है, ओर छोटे तथा बडे असख्य शत्रुओं क साथ कई प्रकार के साम्मुरय करने पडते है । प्रत्येक प्राणी क लिय दो ही मार्ग खुले हैं या तो इन युद्धों तथा आक्रमणों में वह जीत जाय, अथवा अधिक वलवान शत्रु के सामने हार मान कर उस के शरणागत हो इस ससार से पूर्णतया मुक्ति पाले, अर्थात्, अन्य शब्दों में, मर जाय, उस के लिय तीसरी अवस्था नहीं है, हमने जिस को "परिस्थिति" के नाम से अंकित किया है उस परिस्थिति में दया, क्षमा, आदि की चर्चा नहीं, हम स्पष्ट शब्दों में यह कह सकते हे कि अपने आप को युद्ध तथा आक्रमणों म कृत कार्य होने के अनुकूल बनाने का नाम जीवन को व्यतीत करना है।

"डार्विन की पुस्तक "उपजातियों की उत्पत्ति" -- 'उपजातिया की उत्पत्ति" में इसी बात पर विचार किया गया है कि जीवन को व्यतीत करने क कौन कौन से भिन्न प्रकार हैं, तथा उनके अनुसार जीवन को व्यतीत करते हुए प्राणिया की जातिया तथा उपजातिया किस प्रकार स्वाभाविकतया उत्पन्न होती है, अर्थात् अनुकूलन क्यों कर सार्वत्रिक हे ?

पांच मुख्य तत्व -इस प्रश्न का डार्विन ने अपनी पुस्तक में जो उत्तर दिया है वह इतना सरल हे कि वह विस्मृत सा प्रतीत होता

है। वे कहते हैं कि यदि, किसी समय परिस्थिति के विपरीत कोई प्राणी विद्यमान थे, ऐसा माना भी जावे तो इस प्रकार के मानने में कोई विरोध नहीं पड़ता, अब वे विद्यमान नहीं हैं और उनके स्थान पर अधिक योग्य प्राणी वर्तमान में विराजमान हैं, इतना ही अनुकूलन की सिद्धि के लिये पर्याप्त प्रमाण है। जिस प्रकार यन्त्रों में आवश्यकता के अनुसार नए २ परिवर्तन होते रहते हैं उसी प्रकार परिस्थिति के अनुसार प्राणियों में नये नये परिवर्तन आ जाते हैं। क्योंकि प्राणियों का सब प्रकृति के साथ सबन्ध है इस लिये इन परिवर्तनों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। प्राकृतिक चुनाव के सबंध में हम निम्न लिखित तत्वों से परिचित हैं। ये इतने सरल तथा व्यक्त हैं कि उनको देखकर आश्चर्य होता है कि ये तत्व प्राचीन समय के विचारकों के दृष्टिगोचर क्यों न हुए। वे तत्व ये हैं (१) परिवर्तनों की सार्वत्रिक विद्यमानता (२) प्राणियों की स्वाभाविक उत्पत्ति का बहुत आधिक्य (३) उत्पत्ति का बहुत आधिक्य होने के कारण जीवन को निभाने के अर्थ संग्राम (The struggle for Existence) (४) संग्राम में अयोग्य प्राणियों का नाश और योग्य प्राणियों का रक्षण तथा (५) जीवनार्थ संग्राम में जिनका रक्षण हुआ है उनकी विशेषताओं का उनकी सन्तति में संक्रमण। प्राकृतिक चुनाव के ये पाच मुख्य तत्व हैं और इनके द्वारा विकास की क्रिया ज्ञात करने में बहुत सहायता मिलती है। अब हम प्रथम तत्व पर विचार करते हैं।

१—परिवर्तनों की सार्वत्रिक विद्यमानता—यह प्रथम तत्व है और इस पर हम कुछ थोड़ा सा विचार प्रथम भी कर चुके हैं। नित्य प्रति हम देखते हैं कि किन्हीं दो प्राणियों में पूर्णतया समानता नहीं पाई जाती, इसका कारण यह है कि प्राणियों की शारीरिक रचना के बहुत से अवयव परिवर्तन शील होते हैं तथा इ

शरीर के आकार भिन्न रहते हैं। इसका कारण यह है कि भिन्न भिन्न प्राणियों की परिस्थिति समान नहीं होती और भिन्न परिस्थिति का प्राणियों पर भिन्न भिन्न प्रभाव होता है। बिल्ली के एक समय पर साथ ही पैदा हुए पिल्लों की शारीरिक अवस्था देखा जाय तो उनमें परस्पर भिन्नता स्पष्ट दिखाई देगी, यदि ध्यान पूर्वक हम देखें तो उनके आंख, नाक, कान, सिर, पूछ तथा अन्य अवयवों की भिन्नता हमको अवश्य प्रतीत होगी, इतना ही नहीं परंतु इस शारीरिक भिन्नता के साथ उनकी वाचिक भिन्नता भी प्रतीत होगी। किसी मानवी कुटुम्ब के भिन्न भिन्न बालकों की अवस्था देखी जाय तो वहां भी इसी प्रकार का दृश्य हमारे दृष्टिगोचर होगा।

इस भिन्नता का कोई नियम है वा नहीं यह ज्ञात करने के लिये डार्विन तथा डार्विन के अनन्तर के अन्य वैज्ञानिकों ने बहुत परिश्रम किया। वे इस परिणाम पर पहुचे हैं कि यह भिन्नता सार्वलिक है और इसके उत्पन्न होने के जो नियम है वे भी सार्वलिक हैं। उदाहरण द्वारा इसका तात्पर्य अच्छे प्रकार ज्ञात होगाः—मान लीजिए कि किसी ग्राम के पुरुषों की लम्बाई की भिन्नता पर हम विचार कर रहे हैं, यदि उन पुरुषों की लम्बाई इंचों में बतला दी जाय और यदि लम्बाई के अनुसार उन्हें भिन्न भिन्न समूहों में बांट दिया जाय तो हम यह नियम पावेंगे कि उनमें सबसे अधिक सख्या (लगभग आधी के) उनकी होगी जिनकी लंबाई ५ फुट ८ इंच से ५फुट ९ इंच तक * की हो, इनसे न्यून सख्या उनकी होगी जिनकी लंबाई ऊपर की लम्बाई से कुछ थोडी कम तथा कुछ थोडी अधिक हो—अर्थात् जिनकी लंबाई

* ये लंबाई के मान इंग्लैण्ड के लोगों के लिये हैं। भारतवासियों के लिये मान अन्य होंगे, परतु नियम वही होगा।

पांच फुट सात इंच से आठ इंच तक तथा पांच फुट नौ इंच से दश इंच तक होवे । इन से न्यून उनकी संख्या होगी जिनकी लंबाई पांच फुट पांच इंच से छः इंच तथा पांच फुट दश इंच से ११ इंच तक हो । इन से न्यून संख्या उनकी होगी जिनकी लंबाई और कम वा और अधिक हो। जिन मनुष्यों की लंबाई नापी गई है वे यदि संख्या में पर्याप्त हों तब हम यह भी देख सकेंगे कि जितने मनुष्यों की लंबाई औसत लंबाई (५ फु० ८ इं०) से जितने इंच न्यून होती है लगभग उतने ही मनुष्यों की लंबाई औसत लंबाई से उतने ही इंच अधिक होती है । यह भिन्नता ऐसी नियम बद्ध है कि यदि एक सहस्र मनुष्यों की लंबाई के संबंध की सब बातें गणितज्ञों को ज्ञात हो जावें तो वे यह बताने में समर्थ होंगे कि दस सहस्र मनुष्यों में कितने पुरुषों की लम्बाई औसत लंबाई होगी, कितनों की औसत लंबाई से न्यून और कितनों की अधिक होगी; इस विषय का हम अधिकतर सविस्तार वर्णन नहीं करना चाहते क्योंकि इसमें गणित की बहुत बातें सम्मिलित हैं अतः विषय भी ज़रा सा क्लिष्ट हो जावेगा । इतना कहना पर्याप्त होगा कि वैज्ञानिकों ने इस विषय में बहुत परिश्रम से सामग्री एकत्रित की है और उससे उनको ज्ञात हुआ है कि ये परिवर्तन भी किसी नियम में बद्ध हैं ।

सारांश:—अब तक की बताई हुई बातों का सारांश यह है कि परिवर्तनों की घटना जीवन सृष्टि में सार्वनिक विद्यमान है तथा प्राणियों में भिन्नता उत्पन्न करने वाली मुख्य विधि, परिस्थिति, प्राणियों के शरीर संबंधी व्यापार, तथा पैत्रिक संस्कार इन तीन बातों पर निर्भर है । नई उपजातियों की उत्पत्ति करने में इन तीन में से कौनसी अधिक कार्यकर और कौनसी कम कार्यकर है इसका अब-तक पूर्णतया निश्चय नहीं हुआ । इस विषयमें बहुत मत भेद है तथापि

सब वैज्ञानिकों का इस बात पर एक मत है कि ये तीन बातें कम वा अधिक प्रमाण में विकास की उत्पादक हैं ।

अत्युत्पादन(Over-production):—प्राकृतिक चुनाव का यह दूसरा तत्व है। अत्युत्पादन की घटना प्रकृति में इतनी प्रचुरतया दिखाई देती है कि उसको समझने के लिये विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं । सब प्रकार के प्राणियों में उत्पादन की इतनी स्वाभाविक शक्ति है कि यदि इस पर प्रतिबन्ध न हो तो थोड़ी ही अवधि में किसी एक ही जाति के प्राणियों से यह पृथ्वी पूर्णतया भर जायगी ।

इस कथन की सत्यता को बतलाने के लिये बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं । किसी प्राणी का भी उदाहरण लीजिये । प्रथम वनस्पतियों की ओर चलिए । मान लीजिये कि एक ऋतु तक रहने वाली मूली वा गाजर का हम विचार कर रहे हैं । हम जानते हैं कि मूली के एक पौदे से बहुत बीज एक ऋतु के अन्त में प्राप्त होते है, परन्तु सक्षेप करने के लिये मान-लीजिये कि मूली के एक पौदे से प्रति ऋतु के अन्त तक केवल दो ही बीज प्राप्त होते है, और यह भी मान लीजिये कि उसकी अनुसंतति की उत्पादन शक्ति पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं है, अर्थात् उन से भी प्रति ऋतु में दो ही बीज प्राप्त होते है । इस हिसाब से भी बीस ऋतुओं के अन्त में एक मूली के पौदे के दश लक्ष अनुवंशज दिखाई देंगे ।

चलिये, पौदों को छोड़ कर पक्षियों में से किसी एक पक्षी का विचार कीजिए । मान लीजिये कि चिड़ी का एक युगल है और उस की आयु की मर्यादा एक वर्ष की है और वर्ष के चार ऋतुओं में से प्रत्येक ऋतु में इस से चार बच्चे उत्पन्न होते हैं । यदि संतति अनुसन्तति का इसी प्रकार का अबाधित क्रम रहे तो

इस एक युगल से पन्द्रह वर्ष के अन्त में जितनी संतति होगी उस की संख्या को देख कर हम में से बहुत थोड़े लोग होंगे जो विस्मित न हों। पन्द्रह वर्ष के अन्त में एक चिड़ी के युगल से २,००,००,००,००० दो अर्ब से कुछ अधिक संतति उत्पन्न होगी। समुद्र की मच्छलियों की उत्पादन की शक्ति भी प्रचण्ड है और उस पर यदि कोई प्रतिबन्ध न हो तो अल्प समय में मच्छलियों से सब समुद्र पूर्णतया भर जाय।

मनुष्य के पेट में, रोग- के कारण, जो कीड़े उत्पन्न होते हैं उनकी उत्पादन शक्ति तो बहुत विस्मयजनक है; एक कीड़ा मनुष्य के पेट में रहते हुए ३०,००,००,००० तीस करोड़ अंडे देता है। सूक्ष्म जंतु शास्त्र (Bacteriology) की बातों को ज्ञात करने के लिये परिश्रम करने वाले वैज्ञानिक लिस्टर, पास्चर, आदि सूक्ष्म जंतुओं की उत्पादन शक्ति के विषय में जो परिचय कराते है वह हमारी कल्पना शक्ति के बाहिर है। वे बतलाते हैं कि इन सूक्ष्म जंतुओं में से कई जंतु ऐसे हैं कि चौबीस घंटों के भीतर जिन से १करोड़ ६० लाख से १ करोड़ ७० लाख तक की संतति निर्माण होती है; ये जंतु अत्यंत सूक्ष्म होते हैं; प्रत्येक जन्तु लम्बाई में एक इंच का पांच हज़ारवां भाग होता है परंतु ऊपर निर्दिष्ट गति से इस एक जंतुकी उत्पत्ति बिना किसी प्रतिबंध के चल पड़े तो इसके वंशज पांच दिन के अंदर अंदर जलपृष्ट से नीचे एक मील की गहराई तक सब समुद्रों को व्यापन करलें। यह कोई अनुमान ही अनुमान नहीं; यह वास्तविक बात है, क्योंकि एक जंतुकी लम्बाई हमको ज्ञात है, तथा उसकी उत्पादनशक्ति की गति भी हमको ज्ञात है, अतः केवल सरल गणित से दिये हुए समय में इसकी उत्पत्ति कितनी होगी यह हम ज्ञात कर सक्ते हैं।

अब तक तो उन प्राणियोंकी बातें हुईं जिनकी उत्पादन शक्ति बहुत है। परंतु जिनकी उत्पादनशक्ति अल्प है उनसे भी थोडे समय में सब पृथ्वी व्याप्त हो सकती है। मर्दुम शुमारी से यह बात ज्ञात होती है कि यदि किसी देश में रोग वा अन्य किसी प्रकार के उपद्रव न हों, युद्ध न चलें, व्यापार तथा उद्यम ठीक प्रकार से चलता रहे, और सर्वत्र आबादी ही आबादी हो तो पच्चीस वर्ष में वहा की मनुष्य सख्या दुगुनी होजाती है। हाथी के सदृश प्रचंड प्राणी के उत्पादन के संबंध में जो बातें ज्ञात की हुई है वे भी बहुत मनोरंजक है। हाथी की आयु मर्यादा लगभग सौ वर्ष की होती है और तीस वर्ष की आयु से वह सतति करने लगता है, यदि ९० वे वर्ष की आयु तक उसके छ बच्चे माने जाय तो हाथी के एक युगल से इस अव्याहत क्रम द्वारा ८०० वर्षों के अन्त में १,९०,००,००० एक करोड नवे लाख हाथी दिखाई देंगे और यदि यही क्रम या दो सौ वर्ष तक और चल जाय तो हाथी की सतति को इस पृथ्वी पर रहने के लिये स्थान भी न रहे। इस प्रकार की घटनाए हम अपने सामने सृष्टि में नहीं देखते, परंतु इसका यह कारण नहीं कि प्राणियों की उत्पादन शक्ति न्यून है परंतु इसका कारण यह है कि प्राणियों के अत्युत्पादन पर अन्य प्राकृतिक प्रतिबंध बहुत विद्यमान हैं।

जीवन के लिये संग्राम The Struggle for Existence— प्राकृतिक चुनाव की विधि का यह तीसरा तत्व है। बहुत अंशों में अत्युत्पादन का यह एक स्वाभाविक परिणाम है। प्रकृति में जितने प्राणियों का पोषण हो सकता है उनसे अधिक प्राणी उत्पन्न होते है, इस लिये अपने रक्षण के लिये प्रत्येक प्राणी को अन्य असंख्य प्रतिस्पर्धियों के साथ सर्वदा संग्राम करने पडते है। और यह अत्युत्पादन का स्वाभाविक परिणाम है। इन संग्रामों में जो विजयी होता है वह अंत में जीता

रहता है । जिस ओर हम देखें उस ओर इस प्रकार के अन्याहत संग्राम प्राणियों में दिखाई देते हैं; और यद्यपि प्रकृति में यह जीवन संग्राम स्पष्टतया प्रतीत नहीं होता तथापि देखने पर ज्ञात होता है कि न केवल अपवित्र स्थानों तथा वनादिकों में ही, अपितु स्वभाव सुन्दर तथा शान्त मनोहर जलाशयों तथा हरियावली से खचित और नेत्रों को आनन्दित करने वाले चित्र विचित्र पुष्पों से भरपूर सुंदर सुंदर उद्यानों में भी, इस प्रकार के भीषण युद्ध तथा दुःख मय प्राणहानि अव्याहत जारी हैं। मृत्यु के भीषण मुख में पड़ने वाले गरीब बेचारे प्राणियों के करुणायुक्त स्वरों से हमारा हृदय प्रतिक्षण विदारित होता यदि इनकी जिव्हा में बोलने की शक्ति होती ।

हम में से प्रत्येक ने चिंवटियों के बड़े बड़े समूह अवश्य देखे होंगे। कभी कभी ये समूह इतने बड़े होते हैं कि इन में चिंवटियों की संख्या लाख लाख तक की होती है । अब इन चिंवटी-- दलों की विद्यमानता केवल उनकी संघशक्ति पर निर्भर है । परस्पर के जब युद्ध होते हैं तब इन समूहों में इतनी प्राणहानि होती है कि उसका कोई ठिकाना नहीं; एकही आक्रमण में इतने सैनिक मरते है कि शायद महाभारत के कुल युद्ध में भी इतने सैनिक न मरे हों ।

मच्छलीयों में कई ऐसी मच्छलियां होती हैं कि उन में से प्रत्येक, प्रति ऋतु में १,५०,००,००० एक करोड़ पचास लाख तक बराबर अंडे देती है; परंतु इन मच्छलियों के सिरपर ऐसे शत्रु बैठे हुए हैं कि वे इन अंडों को बढ़ने नहीं देते; हजारों अंडे इस प्रकार नष्ट हो जाते है ।

एक ऋतु तक रहने वाले पौदों से २० वर्ष की अवधि में दस लक्ष अन्य पौदे निर्मित नहीं होते, इसका कारण यह है कि प्रत्येक पौदे के सब बीज अनुकूल भूमिपर नहीं पड़ते, कई पत्थरीली भूमिपर

गिरते हैं और कई अच्छी पर; जो अच्छी भूमि पर पड़ते हैं उन में से भी सवही को पर्याप्त सूर्य प्रकाश तथा जल नहीं पहुंचता; जिनको पहुंचता भी है उनमें से कईओं को पक्षी खा जाते हैं और कईओं को बीजने पर जानवर खा जाते हैं ।

जीवन संग्राम में प्राणियों को तीन प्रकार से अपनी रक्षा करनी पड़ती है:—इन तीन उदाहरणों से हम पर्याप्त रीति से देख सकते हैं कि जीवित रहने के लिये प्राणियों को तीन प्रकार की अवस्थाओं से अपनी रक्षा करनी पड़ती है । इस जीवनार्थ संग्राम में प्राणियों को (१) अपने भाई बन्धुओं से स्पर्धा करनी पड़ती है (२) अन्य जीवित प्राणियों का सामना करना पड़ता है और अन्त में अपनी निर्जीव परिस्थिति सर्दी, गर्मी, वर्षा, आदि के अनुकूल अपने आप को बनाना पड़ता है । इस निर्जीव परिस्थिति को प्राणियों का शत्रु समझना चाहे ठीक न हो, परंतु इस के प्रभाव से प्राणियों को वैसा ही बचना पड़ता है जैसा उन्हें अपने शत्रुओं से । जीवनार्थ संग्राम के ये ऊपर बताए हुए तीन विभाग शास्त्रीय दृष्टि से तथा मनुष्यों के व्यवहारों की दृष्टि से इतने महत्व के हैं कि इनपर अधिक सविस्तर विचार करना बहुत आवश्यक प्रतीत होता है । अतः इन तीन विभागों को उलटे क्रम से लेकर हम इन पर विचार करेंगे ।

(१) निर्जीव परिस्थितिः—निर्जीव परिस्थिति का प्रभाव प्राणियों पर किस प्रकार होता है इसका थोड़ा विवेचन पहले आ चुका है । यदि कई दिनों तक लगातार वर्षा होती रहे तो सैंकड़ों पक्षी मर जाते हैं । शीत ऋतु में सर्दी का यदि आधिक्य हो जाय तो कई प्राणियों की हानि हो जाती है । अत्यंत गर्मी के कारण जब नदी और नाले सूकने लगते हैं तब जल में रहने वाली मच्छलियों तथा अन्य

प्राणियों का बेहद्द नाश होता है। तालाव जब सूक जाते हैं तब उन के अन्दर के कृमि तथा अन्य सूक्ष्म जंतु लाखों की गिनती में नष्ट होते हैं। मनुष्य जाति भी इस प्रकार की परिस्थिति से मुक्त नहीं; प्रति वर्ष गर्मी के कारण बहुत लोग आतपघात (Sun Stroke) से मरते हैं और शीत ऋतु में कितने ही निर्धन लोग सर्दी के कष्ट से मृत्यु मुख होते हैं; समुद्र में तूफानों से अथवा कभी कभी वर्फ के बने पर्वतों से टक्कर खाने से बीसियों जहाज़ नष्ट होते हैं और सैंकड़ों लोग मर जाते हैं; अग्नि लगने के कारण कई मनुष्य स्वाहा होते हैं; भूचाल से बहुत लोग पृथ्वी की गोद में आराम पाते हैं और नदियों की बाढ़ से कई लोगों को जल समाधि मिलती है। एक ना एक इस प्रकार की सैंकड़ों निर्जीव उपाधियों से बहुत मनुष्यों का प्रति वर्ष नाश हो रहा है। निर्जीव परिस्थिति का प्राणियों पर वास्तव में उतना ही प्रभाव होता है जितना कि अन्य सजीव परिस्थिति का उन पर है।

अन्य जीवित प्राणियों के साथ साम्मुख्यः– जीवनार्थ संग्राम के द्वितीय विभाग में इसका संनिवेश है। एक प्राणि की उपस्थिति से जहां दूसरे की स्वार्थ सिद्धि में विघ्न पड़ता हो अथवा जहां एक प्राणी दूसरे प्राणी का भक्ष्य हो, वहां परस्पर संग्राम और प्राण-हानि अवश्य होती है। इन संग्रामों में जो जीत जाता है वही इस संसार में जीवित रहकर स्वामी बनता है। इसके प्रतिदिन हम असंख्य उदाहरण देखते हैं; भिन्न भिन्न पक्षियों की परस्पर स्पर्धा; कुत्तों और बंदरों की लड़ाई; नेवला और सांप, सांप और मंडूक, बिल्ली और मूसा, किरली और बिच्छू, कुत्ता और बिल्ली इत्यादिकों की जन्म-सिद्ध शत्रुता; ये सब उसी जीवनार्थ संग्राम के स्पष्ट उदाहरण हैं।

मनुष्य जाति इन संग्रामों से बची नहीं है। मनुष्य जाति का भी इन संग्रामों में समावेश होता ही है। असंख्य प्राणियों तथा वनस्पति-

गों का, मनुष्य के भक्षणार्थ प्रतिदिन संहार होता है; अपने प्राण रक्षणार्थ मनुष्य प्रतिवर्ष सैंकड़ों हिंस्र पशुओं का शिकार कर उनका नाश कर डालता है और मनुष्य के मनोरंजन तथा भोजनार्थ सैकड़ों निरपराधी पशुओं तथा पक्षियों को अपने प्राण शिकारी के अर्पण करने पड़ते हैं । यही नहीं अपितु मनुष्य की एक जाति जब दूसरी जाति पर वल करती है तो उसका कारण भी अपनी जीवन रक्षा ही है । वह जाति नहीं उठ सकेगी जो जीवित जातियों का मुकावला नहीं कर सकती । इन संग्रामों में मनुष्य ही सर्वदा विजय पाता है यह मिथ्या कल्पना है । क्या प्रतिवर्ष हम नहीं सुनते कि वीसियों शिकारी शिकार खेलते खेलते हिंसक पशुओं से मारे गए ? ख़ैर यह वात इतनी विचित्र नहीं परंतु प्रतिवर्ष ग्रंथिक सन्निपात वा प्लेग के कीड़ों से जो सहस्रों भारतवासियों के प्राण नष्ट होते हैं कम आश्चर्य जनक है ? इसी प्रकार मलेरिआ (Malaria), विषमज्वर(Typhoid) , तपेदिक़ (Consumption) आदि रोगों के आक्रमणों से भी बहुत मनुष्यों की हानि प्रतिवर्ष होती है । क्या यह वात भी सामान्य है । इस प्रकार का जीवन संग्राम मनुष्यों के लिये कैसी भयानक बला है ?

(३) अपने भाई बंधुओं से स्पर्धा:—जीवन संग्राम का तीसरा विभाग एक ही जाति के भिन्न भिन्न प्राणियों के आपस में जो युद्ध होते हैं तद्विषयक है । इस तीसरे विभाग के युद्धों की समानता अन्य दो विभागों के युद्ध कदाचित्त ही कर सकें । इन आक्रमणों में निष्ठुरता की सीमा हो जाती । उदाहरणार्थ, मान लीजिये कि एक सिंही के दो वच्चे उत्पन्न हुए हैं; जब ये वड़े हो जाते हैं और अपने अपने गुजारे की चिन्ता में अपनी अपनी गुफा (Den) से निकलते हैं तो इन दोनों का आपस का संग्राम अत्यन्त भयंकर

होता है। अन्य प्राणियों के संग्राम इस के आगे नितान्त फीके पः जाते हैं। चिड़ियों के आपस के संग्राम कभी कभी इतने क्रूरत पूर्ण होते हैं कि एक चिड़ी दूसरी चिड़ी का प्राण तक ले लेती है दूर जाने की क्या आवश्यकता है? क्या हम अपने में इर प्रकार के संग्राम नहीं देखते? अमरीका के मूल रहिवासियों--रेड इन्डियनों--पर वहां रहने के लिये गए हुए यूरोप के सभ्य लोगों ने किस प्रकार के अत्याचार और कापालिक आक्रमण किये सब जानते ही हैं। खैर यह तो हुई असभ्य लोग और सभ्य समाज की दशा, परन्तु सभ्य समाज की स्वयं क्या दशा है? क्या हम यह नहीं देखते कि कृषिबल, कारीगर, दुकानदार, साहूकार, वकील, डाक्टर, बैरिस्टर आदि अपनी अपनी सामाजिक परिस्थिति को स्थिर रखने के लिये अविश्रांत परिश्रम करते हैं? और क्या हम को यह नहीं मानना पड़ता कि इन भिन्न भिन्न धन्धे वालों की परस्पर स्पर्धा होती है? हम को यह अवश्य मानना पड़ता है कि इन की परस्पर स्पर्धा है और जब हम समान धन्धे करने वालों का विचार करते हैं तब तो यह स्पर्धा अधिक तेज़ क्रूरतापूर्ण तथा असह्य प्रतीत होती है; उदाहरणार्थ एक साहूकार की अन्य साहूकार के साथ, एक वकील की दूसरे वकील के साथ, एक डाक्टर की दूसरे डाक्टर के साथ। इस का कारण यह है कि समान धन्धे वालों की जब स्पर्धा होती है तो उन का कार्य क्षेत्र बहुत ही संकुचित हो जाता है; उन सब के एक ही पदार्थ की प्राप्ति के लिये प्रयत्न होते हैं; भिन्न भिन्न धन्धे वालों के भिन्न भिन्न प्राप्ति के विषय हैं इस लिये उन में उतना दुस्तर साम्मुख्य नहीं होता जितना समान धन्धे करने वालों में होता है। हां इतना अवश्य है कि जिन जातियों के प्राणी समूह बद्ध रहते हैं उन जातियों के प्राणियों में परस्पर होने वाले संग्राम इतने

तीव्र नहीं होते जितने समूह रहित प्राणियों के होते हैं; जैसे मधु मक्खियों के आपस के संग्राम बहुत तीव्र नहीं हैं क्योंकि ये प्राणी समूह में रहते हैं। समाज युक्त प्राणियों की ऐसी जाति कहीं भी नहीं पाई जाती जहां प्राणियों के आपस के लड़ाई झगड़े शान्त रहें। प्राकृतिक नियम ही ऐसा निर्दयी है कि सब प्राणियों को अपने जीवन के लिये प्रति दिन प्रतिक्षण संग्रामों के लिये सजा रहना पड़ता है, कारण यह है कि प्रकृति में असंख्यात प्राणी उत्पन्न होते हैं जिन के लिये प्रकृति में पोषण सामग्री पर्याप्त नहीं है। कोई भी प्राणी अथवा प्राणी समूह, जब तक पेट साथ है, इन संग्रामों से बच नहीं सकता और यदि किसी प्राणी में संग्राम की शक्ति न हो तो अपने शत्रु के शरण में जाना, जिस का अर्थ मर जाना है, यही एक उपाय उस के लिये विद्यमान रहता है।

जिस ओर चाहे हम अपनी दृष्टि डालें इन दुःखमय संग्रामों के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता; चारों ओर लड़ाई झगड़े दंगा फिसाद, खून और अत्याचार इन्हीं का साम्राज्य दृष्टिगोचर होता है।

(४) इस संग्राम में अयोग्य प्राणियों का नाश और योग्यों की रक्षाः—अब इन तीन विभागों–परिवर्त्तन, अत्युत्पादन तथा जीवनार्थ संग्रामों–के परिणामों पर हमको एकत्रित विचार करना चाहिए। इन तीन विभागों के सविस्तर वर्णन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृति में निर्मित प्राणियों में सब के सब जीते रह नहीं सकते क्योंकि सब के लिये पर्याप्त पोषण सामग्री नहीं; अर्थात् कईयों को इस संसार से मुक्ती पाना आवश्यक है। अतः स्वाभाविक प्रश्न यह होता है कि इन में से कौन से जीते रहेंगे, और कौन से नष्ट होंगे। इस प्रश्न का उत्तर भी वैसा ही स्वाभाविक मिलता है कि

प्रत्यक जाति के वे प्राणी जीते रहेंगे जिन की अन्यों की अपेक्षा कुछ थोड़ी सी भी विशेषता हो और शेष सब अवश्य नष्ट हो जायंगे। इस प्रश्न का इस के अतिरिक्त और कोई भी उत्तर शक्य नहीं है; प्राकृतिक चुनाव के तीन विभागों का जो ऊपर वर्णन दिया गया है उस के अनुसार यही एक उत्तर ठीक है। प्राकृतिक चुनाव की क्रिया का परिणाम दो प्रकार का है, एक उन प्राणियों की रक्षा जो इस संसार में रहने के लिये योग्य हैं और दूसरा उन प्राणियों का नाश जो इस संसार के योग्य नहीं हैं। यदि हम यह कहें कि रक्षा की अ-पेक्षा नाश करने की ओर प्राकृतिक चुनाव की अधिक प्रवृत्ति है तो प्राकृतिक चुनाव के तत्व का अधिक वास्तविक बोध होगा; क्योंकि जीवनयात्रा को व्यतीत करने, अपने शत्रुओं के साथ साम्मुख्य करने, तथा अपने आप को परिस्थिति के अनुरूप बनाने के लिये जो प्राणी अत्यन्त अयोग्य तथा अशक्त होते हैं उनका प्रथम नाश हो जाता है; इन अयोग्यों की अपेक्षा जिन में अधिक सामर्थ्य है वे एक साथ नष्ट नहीं होते; वे जीवनार्थ संग्राम का साम्मुख्य रोते पीटते कुछ समय तक करते हैं और पश्चात् विवशता से अक्षय विश्राम करने के लिये बाधित होकर अपने अधिक विशेषतायुक्त अतः अधिक योग्य भाईयों के लिये रणांगण भी छोड़ जाते हैं। यह संक्षेप में डार्विन का मत (Darwinism) है, इस से प्राणियों का प्रकृति के साथ किस प्रकार का हिसाब किताब (Adjustment) है तथा अयोग्यों के लिये प्रकृति में किस प्रकार स्थानाभाव है इसका अच्छे प्रकार बोध होता है। *

---

* नोटः- मनुष्य जाति में यह प्राकृतिक चुनाव इतना क्रूर नहीं है जितना अन्य प्राणियों में है; भूतदया, स्नेह, प्रेम, स्वार्थ-त्याग, आत्मसमर्पण आदि सात्विक विकारों से मनुष्य का पारस्परिक व्यवहार पशुओं के व्यवहार से भिन्न हो गया है।

(५) विशेषताओं का संतति में संक्रमण:--अन्त में, परंपरा प्राप्ति(Inheritance)तथा नई उपजातियों की उत्पत्ति पर प्राकृतिक चुनाव का किस प्रकार प्रभाव है ? इस पर हम विचारेंगे। जीवन यात्रा के लिये प्राणी मात्र की योग्यता वा अयोग्यता का मुख्य कारण, डार्विन के मत में, पैत्रिक सस्कारों से होने वाली परपरा प्राप्ति है। परिस्थिति अथवा कार्य करने वा न करने के संस्कारों के कारण प्राणियों में परिवर्तन उत्पन्न होते हो, परन्तु डार्विन का यह दृढ़ मत है कि इन सस्कारों से परिवर्तन प्राप्त करने के लिये प्राणियों में पैत्रिक संस्कार से प्राप्त होने वाली अनुकूलन शक्ति अवश्य होनी चाहिए। प्राणियों के शरीर पैत्रिक संस्कार द्वारा परिवर्तनों को धारण करने के लिए योग्य जब तक नहीं बन जाते तब तक प्राणियों पर परिस्थिति वा कार्याकार्य के संस्कारों से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों की धारणा नहीं होती। अर्थात् जीवन सफलता वा निष्फलता का मुख्य अंग पैत्रिक वा अनुवशिक संस्कार है। अब चूंकि पैत्रिक सस्कारों के कारण ही इस ससार में प्राणियों के अस्तित्व वा अनस्तित्व का निश्चय होता है अत पैत्रिक संस्कारों से उत्पन्न हुए हुए परिवर्तन संतति तथा अनुसतति में संक्रमण शील हैं। डार्विन के पश्चात् के वैज्ञानिकों ने इस विषय पर बहुत आन्दोलन किया है और जिन परिणामों पर वे पहुंचे हैं उन से यह ज्ञात होता है कि डार्विन का मत ठीक है। आगे चल कर इस परंपरा प्राप्ति के विषय पर हम और अधिक विचार करेंगे।

सारांश:–अब हम समझ सकते हैं कि प्राकृतिक चुनाव की विधि कैसी सर्वव्यापिनी है। जिस प्रकार जब कोई कारीगर किसी नई वस्तु को निर्माण करने में उद्यत होता है तब उसको कई बार भिन्न भिन्न प्रकार के नमूनों को बना कर तोड़ फोड़ करनी

पड़ती है वैसे ही प्रकृति में भी यही क्रिया बड़े परिमाण पर होती रहती है। एक ही जाति की भिन्न भिन्न प्रकार की हजारों लाखों व्यक्तियों को उत्पन्न करने में प्रकृति का हेतु यह प्रतीत होता है कि यदि इन में से दो चार वा दस पांच भी परिस्थिति के अनुकूल प्राप्त हो जांय तो उन से उस जाति का अस्तित्व बना रहे। प्रकृति का कार्य करने का ढंग पूर्णतया स्थिर प्रकार का है। उस में किसी के लिए पक्षपात नहीं है। उसका नियम सब के लिए एक ही है और वह यह है कि परिस्थिति के अनुकूल प्राणियों की रक्षा करना और अन्यों का नाश। शायद यह प्रश्न उठे कि क्या प्रकृति इतनी निर्दय और क्रूर है कि वह इतने असंख्य जीवों को उत्पन्न करके उनका दुःखमय अन्त करदे? हां, प्रश्न तो ठीक है परन्तु विकासवाद के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं। यह प्रश्न वेदान्त तथा तत्वज्ञान विषयक है; वैज्ञानिक नहीं। हम केवल यह दिखाना चाहते हैं कि प्राणियों की दैनिक घटनाओं में ऐसी क्रियाएं होती हैं जो उन को परिस्थिति के अनुकूल बनाने में सहायता देती हैं, तथा यह भी हम दिखाना चाहते है कि ये-क्रियाएं वास्तविक हैं न कि काल्पनिक। यह बात दूसरी है कि परिवर्तनों के उद्गमों तथा उसके संतति क्रमों का ठीक प्रकार का कार्य कारणवाद अभी निश्चित न हुआ हो। डार्विन महाशय ही यह मानते थे कि प्राकृतिक चुनाव विकास का एक मार्ग है; विकास की युक्ति युक्तता बतलाने में उस से अच्छी सहायता मिलती है।

अध्याय (३)

डार्विन के पश्चात् के इस विषयक अन्वेषण।

लामार्कमत—इस मत की एक कमी—प्राकृतिक चुनाव का अन्वेषण डार्विन को क्यों सूझा—कृत्रिम और प्राकृतिक चुनाव—आस्ट्रेलिया

के शशक में नई उत्पन्न हुई विशेषता-डार्विन के पश्चात् का कार्य –(१) प्रोफेसर गालटन और पिअरसन (Galton and Pearson) *का आनुवंशिक परम्परा का नियम* (Law of Heredity) –(२)– *आनुवंशिक परम्परा में शरीर के कौन से अंग मूलाधार हैं –(क) डार्विन की कल्पना*(Theory of Pangenesis)*–मंडेल–* (Mendel) *का कार्य –डीव्हाईज* (De Vries) *का कार्य साराश ।*

लामार्क मतः—डार्विन के पश्चात् इस विषय पर जो अन्वेषण हुए, उन पर विचार करने के पूर्व लामार्क मतवादियों की इस विषय में जो भिन्न सम्मति है उसका विवेचन करना उचित प्रतीत होता है। हम पहले बता चुके हैं कि लामार्क मत में, विशेषत वे परिवर्तन संतति में संक्रमित होते हैं जो कार्य अथवा कार्याभार के कारण प्राणियों में उद्भूत होते है, उदाहरणार्थ, जिराफ (Giraffe) नाम का, ऊंट के सदृश एक चतुष्पाद लम्बी गर्दन वाला जानवर है । वस्तुत. इस की लम्बी गर्दन अनुकूलन का परिणाम है जिस से ऊंचे वृक्षों के पत्ते भी यह खा सक्ता है । इसकी गर्दन की अस्थिया देखने से ज्ञात होता है कि संख्या में वे उतनी ही हैं जितनी कि उसी श्रेणी के अन्य चतुष्पादों की हैं, अतर केवल यह है कि इसकी प्रत्येक अस्थि अन्य चतुष्पादों की अस्थियों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती हैं, अर्थात् यह विकास का परिणाम स्पष्ट है, अब इस बात का लामार्क मतवादी निम्न प्रकार स्पष्टीकरण देते हैं : जिराफ जाति के प्रारम्भिक जानवर पत्ते खाने के समय अपनी गर्दन फैलाते थे, इस प्रकार गर्दन फैलाने का उनका स्वभाव बनता गया, इस स्वभाव का परिणाम यह हुआ कि किसी किसी प्राणी की गर्दन की अस्थिया किंचित दीर्घ होती गई और इस प्रकार जिन में जो कुछ नवीनता उत्पन्न हुई वह उनकी संतती में संक्रमित होती गई, इस अगली संतति में भी उन्हीं कारणों से गर्दन की अस्थियों

की अधिक वृद्धि होती गई और इस क्रमानुसार वर्तमान समय के जिराफों की गर्दन को लम्बाई प्राप्त हुई।

प्राकृतिक चुनाव के अनुसार इस बात का निम्न प्रकार का स्पष्टीकरण है:–जिराफों की यदि किसी भी पीढ़ी का विचार किया जाय तो उसमें जितने प्राणी होंगे उन की गर्दनें भिन्न भिन्न लंबाई की अवश्य होंगी; जिनकी गर्दनें बहुत लम्बी होंगी उनको, अपने अन्य भाईयों की अपेक्षा, पत्ते आदि खाने के लिये अधिक सुगमता रहेगी और भोजन अधिक मिलने के कारण उनका अन्यों की अपेक्षा अधिक अच्छे प्रकार पोषण होगा, अतः वे अपने शत्रु-सिंह आदि- से अन्यों की अपेक्षा अधिक अच्छे प्रकार अपना रक्षण कर सकेंगे। इस प्रकार अधिक लम्बी गर्दन वाले प्राणी, जिनकी रक्षा इस प्रकार हुई है, अपनी इस विशेषता को जो उन्हें प्राप्त हुई है, पैत्रिक संस्कारों द्वारा अपनी संतति में संक्रमित करेंगे; इस संतति में भी, गर्दन की लंबाई के संबंध में अधिक विशेषता जिनकी होगी उनका ऊपर के क्रम के अनुसार अधिक रक्षण होगा और फिर वे अपनी विशेषता को अपनी संतति में संक्रमित करेंगे; इस प्रकार होते होते वर्तमान अवस्था के जिराफों तक यह क्रम पहुंच जायगा।

लामार्क मत की एक कमी–लामार्क मत वादियों का जो स्पष्टीकरण है उस में एक बड़ी भारी कमी यह है कि उसमें कोई विधि ऐसी बतलाई नहीं जाती जिससे कि कार्य वा कार्याभाव के कारण शरीर में उत्पन्न हुई विभिन्नता संतति में संक्रमित हो जाती है; अब तक इस कठिनाई का निराकरण नहीं हुआ है तथा वैज्ञानिकों की बहुसम्मति भी इस मत के विरुद्ध ही है। पैत्रिक संस्कारों को छोड़ कर अन्य संस्कारों द्वारा संतति में परिवर्तनों का संक्रमण मानना वैज्ञानिकों को सम्मत नहीं; और यह कहना कि अन्य संस्कारों द्वारा

उत्पन्न हुए हुए परिवर्तनों का संक्रमण भविष्य में भी सिद्ध नहीं किया जा सकेगा, नितान्त मूर्खता है ।

अब तक जितने परीक्षण लामार्क के मत की सचाई देखने के लिये किए गए हैं उन से लामार्क के मत में विश्वास नहीं होता । कई चूहों और घूसों की पूछें, सौ दो सौ पीढ़ियों तक, यह देखने के लिये कटवा डाली गयीं कि उनकी संतति--अनुसंतति पर इस विच्छेदन का कोई परिणाम होता है वा नहीं; परन्तु दो सौ पीढ़िओं के पश्चात् की संतति की भी पूंछें, ज्यों की त्यों, पूर्ण रूप में ही उत्पन्न होती गई। सैंकड़ों तथा सहस्रों वर्षों से भिन्न २ देशों में जो रीति रिवाज शुरू हैं उनके कारण सन्तति में कोई प्रभाव नहीं पड़ा; इसके स्पष्ट उदाहरण हम आगे देंगे; इन से लामार्क का सिद्धान्त दृढ़ नहीं सिद्ध होता। चीन में लड़कियों के पैरों को कुरूप और छोटा करने के लिये बहुत विलक्षण बंधनों से बांध दिया जाता है, परन्तु इतनी सदियों की लगातार क्रिया से भी चीनी स्त्रियों के पैर जन्मत: छोटे नहीं उत्पन्न होते। इस क्रिया का संस्कार आनुवंशिक नहीं होता । भारत वर्ष में पुत्र तथा पुत्रियों के कान में छिद्र करने की तथा पुत्रियों के नाक में छिद्र करने की प्रथा सदियों से जारी है, परन्तु उसका भी कुछ परिणाम नहीं दिखाई देता। महम्मद मतावलंबी लोग बराबर बारासौ वर्षों से सुन्नत करते आरहे हैं तथापि प्रत्येक नई पीढ़ी में फिरसे सुन्नत करनी पड़ती है । ऐसे एक नहीं बहुत से उदाहरण दिए जा सक्ते हैं जो लामार्क के पक्ष के विरोधी हैं; अत: जब तक कोई नई अन्वेषणा न हो तब तक यही मानना पड़ेगा कि आनुवंशिक तथा पैतृक संस्कारों से उत्पन्न हुए परिवर्तनों का ही विकास में महत्व ठीक है ।

प्राकृतिक चुनाव का अन्वेषण, डार्विन को क्यों सूझा:- प्राकृतिक चुनाव के तत्व का अन्वेषण करना तीन बातों से डार्विन को

सूझ पड़ा (१) भू गर्भ शास्त्र का सिद्धान्त कि पृथ्वी के भू गर्भ में पूर्व समय में जिस शक्ति से परिवर्तन हुए थे उसीके कारण आजकल भी होते हैं (Geological Doctrine of Uniformitarianism), (२) डार्विन का अपना पच्चीस वर्षों का भिन्न भिन्न प्रदेशों के भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों का निरीक्षण और मालथस (Malthus) का अत्युत्पादन (Over-Production) संबंधि सिद्धान्त।

कृत्रिम और प्राकृतिक चुनावः— घरेलू पशुओं और पक्षियों को पालने वाले, जिस कृत्रिम चुनाव की विधि से इन प्राणियों की भिन्न भिन्न प्रकार की सन्तति पैदा करवाते हैं उस विधि का डार्विन के मन पर बहुत अधिक प्रभाव जम गया था। डार्विन ने प्रथम बतलाया कि जिस प्रकार मनुष्य कृत्रिम रीति से अपने कार्य के अनुसार प्राणियों का चुनाव करके अच्छे प्राणियों की पैदायश कराता है, उसी भांति प्रकृति में भी प्राणियों का प्राकृतिक चुनाव होकर जो परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बना लेते हैं उनका रक्षण होता है।

पशुओं को पालने वाले अपने अपने प्रयोजन के अनुसार प्राणियों की पैदायश कराते हैं; जैसे, घुड़ दौड़ के लिये यदि तैयार करना हो तो केवल उन बछेरों को चुन लिया जाता है जो फुर्तीले और चपल हों; भार ढोने, सवारी करने वा पोलो खेल खेलनेके प्रयोजन के लिये भी, इसी प्रकार कार्य के अनुसार बछेरों का चुनाव किया जाता है। घरेलू पशुओं में जो विचित्रता दीख पड़ती है वह भी इस प्रकार के कृत्रिम चुनाव का परिणाम है। भिन्न भिन्न प्रकार के कुत्ते, बिल्लियां, बकरे, तथा शशक आदि मनुष्य ने अपनी आवश्यक्तानुसार तथा अपनी चाह के अनुसार सृष्टि में इसी चुनाव की विधि को कार्य में लाकर निर्मित कर लिये हैं; मनुष्यों के पास पालने के लिये जो बहुत से प्राणी रक्खे होते हैं, उन में जो उनके कार्य के योग्य हो जाते हैं, उन को रख

कर अन्य प्राणियों को वे कम करते जाते हैं; जिस प्राकृतिक चुनाव की न्याई उन्हीं प्राणियों का रक्षण होता है जो परिस्थिति के योग्य है और अन्यों का नाश होता है । मनुष्यों की कृत्रिम रीति है, प्रकृति की स्वाभाविक है ।

इस कृत्रिम विधि से बहुत विलक्षण प्रकार की भिन्नता प्राणियों में पैदा की जा सक्ती है । बहुत मनुष्य कबूतरों के शौकीन होते है यहां तक कि इनको विधि युक्त पालने के लिये मंडलियां (Pigeon Clubs) स्थापित की गई हैं। चुनाव की विधि से कबूतरों के कैसे भिन्न भिन्न प्रकार उत्पन्न हुए हैं, इसका चित्र सं २० द्वारा अच्छा परिचय हो सकता है । चित्र में जो भिन्न भिन्न प्रकार के कबूतर हैं उनका सविस्तर वर्णन देने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार की शौकीनी के लिये भिन्न भिन्न और विचित्र प्रकार के प्राणियों को तैयार करने में जापान देश प्रसिद्ध है । जापान में ऐसे मुरगों की पैदायश की जाती है जिन के पुच्छ के पंख बीस बीस फुटों तक लंबे बढ़ते है ।

कई वैज्ञानिकों का यह विचार है कि इस प्रकार के कृत्रिम उपायों से बने हुए प्राणियों का दृष्टांत देकर प्रकृति में भी इस प्रकार के परिवर्तन चुनाव द्वारा ही होते हैं ऐसा अनुमान लगाना ठीक नहीं । परंतु इस युक्ति में बहुत अर्थ नहीं है ।

प्राकृतिक चुनाव की विधि को यदि हम पूर्णतया समझ जाय तो बहुतसी घटनाएं, जो हमको विलक्षण प्रतीत होती हैं, युक्ति युक्त प्रतीत होने लगेंगी, विशेषतया वे घटनाएं जिन में मनुष्य का सम्बन्ध है बहुत रोचक प्रतीत हो जायंगी । एक उदाहरण द्वारा हम दिखलाना चाहते है कि किस प्रकार प्रकृति की किसी विशेष अद्भुत घटना को समझना प्राकृतिक चुनाव की विधि द्वारा हम को सुगम प्रतीत होता है ।

(चित्र संख्या १४)
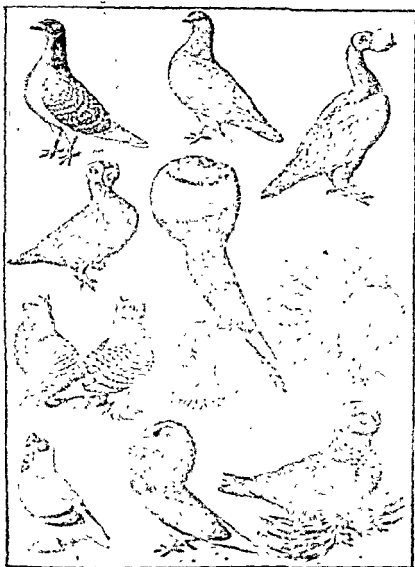
कृत्रिम चुनाव की विधि से उत्पन्न हुई हुई
कबूतरों की भिन्न भिन्न आकृतियां

आस्ट्रेलिया में जब तक युरोपियन लोग रहने नहीं गये थे तब तक वहां शशक प्राणी विद्यमान न था। जब ये लोग यूरोप शशक को वहां ले गये तब शशक के लिये वह भूमि बहुत अनुकूल प्रतीत हुई, खाने के लिये यहां विपुल था, और उस के शत्रु भी वहां विद्यमान न थे। थोड़े वर्षों में शशकों की वृद्धि इतनी होगई कि उन्हों ने कोई हरी चीज़ भी नहीं छोड़ी और थोड़े ही वर्षों में उन्हों ने खेती को इतना उपद्रव पहुँचाया कि शशकों के नाश करने के उपाय तीव्रता से प्रयोग में आने लगे। बीस ही वर्ष के पूर्व केवल क्वींसलेण्ड में ही शशकों के नाश करने के लिये २५,५०,००,००० पचीस करोड़ रुपये खर्च करने पड़े।

आस्ट्रेलिया के शशकों में नई उत्पन्न हुइ विशेषता:- शशकों के विषय में आस्ट्रेलिया में एक नई विशेषता सुनाई जाती है; कहते हैं कि कई शशकों के पंजे अधिक बड़े निकल आए हैं जिस की सहायता से वे वृक्षों पर चढ़ सकते हैं; यदि यह ठीक है तो इस में कोई आश्चर्य करने की बात नहीं ज़मीन पर रहने वालों की संख्या जब बहुत अधिक होगई और भोजन का सामान प्राप्त करने में बहुत अधिक कष्ट प्रतीत होने लगे तब कई शशकों में इस प्रकार की भिन्नता का उत्पन्न हो जाना और उन को अपने अन्य भाईयों की अपेक्षा भोजन प्राप्त करने में अधिक सुगमता प्राप्त होनी बहुत स्वाभाविक है।

प्रकृति में इसी प्रकार नई नई उपजातियां बनती जाती हैं। यदि यह बात ठीक है और इस प्रकार अधिक लंबे पंजों के उत्पन्न हो जाने से वृक्षों पर चढ़ने की शक्ति के रूप में प्राकृतिक चुनाव की यह क्रिया इस से कुछ आगे तक कार्य करती रही, तो शशकों की दो उपजातियां बनेंगी, एक ज़मीन पर रहने वाली साधारण

होगी और दूसरी वृक्षों पर रहने वाली; यह दूसरी जाति पूर्णतया उस प्रकार की बनेगी जिस प्रकार की आजकल गिलेहरी की जाति दीखती है। वृक्षों पर चढ़ने वाले शशकों के सम्बन्ध में जितनी बातें ज्ञात हुई हैं उन को देखकर हम स्पष्ट कह सकते हैं कि गिलेहरी ज़मीन पर रहने वाले तीक्ष्णदंतियों से विकास द्वारा निर्मित हुई है। आस्ट्रेलिया के शशकों सम्बन्धी ये बातें यदि ठीक हों तो हम यह कह सकते हैं कि यहां भी विकास के द्वारा एक अन्य उपजाति की उत्पत्ति हो रही है। हां, मनुष्य का हस्ताक्षेप बाह्यत: है परंच अन्तः स्थ रीति से प्रकृति ही विकास का कार्य कर रही है।

जीवन संग्राम और भिन्न भिन्न जातियों की सम तुलना:- जीवन संग्राम में जो परस्पर युद्ध और आक्रमण होते हैं उन से प्राणियों की भिन्न २जातियां किस पूकार समतुलित रहती हैं इसका एक बहुत मज़े का उदाहरण डार्विन ने दिया है। वह कहता है कि इंग्लैंड में हृष्ठ पुष्ट और निरोगी गौओं का आस्तित्व वहां की अविवाहित स्त्रियों की संख्या पर निर्भर है। देखिये, कार्य कारण सम्बन्ध की शृंखला कैसी है! क्लवर (Clover) जाति की एक वनस्पति इंग्लैड में है जिसके पत्ते गौएं वड़े पूेम से खाती हैं और उन के लिए बहुत हृठ पुष्ट करने वाली यह वस्तु है; अब क्लव्हरों की खेती जंगली मक्खियों पर निर्भर है क्योंकि जब ये मक्खियां क्लव्हरों के पुष्पों से मधु इकट्ठा करने के लिये इधर उधर घूमती है तब ही एक वृक्ष के पुष्पों से दूसरे के पुष्पों पर परागों का बटवारा हो कर पुष्पों का फलों में परिवर्तन हो कर संतति क्रम जारी रहता है। अब इन मक्खियों के छत्तों में से अंडों को और बच्चों को चूहे खा जाते हैं; अर्थात्, यदि चूहे थोड़े हों तो मक्खियों की पैदायश बहुत होगी और इसी कारण जानवरों के लिये चरागा बहुत पैदा होता जायगा; अब चूहों की संख्या कम होना बिल्लियों

पर निर्भर है: यदि अधिक बिल्लियां हों तो चूहे कम रहेंगे; अर्थात्, अन्त में बिल्ली जैसे पालतू जानवर का, ऊपर की शृंखला पर बहुत प्रभाव है । परन्तु अविवाहित स्त्रियों को बिल्लियों को पालने का बड़ा शौक रहता है; इसलिये, यदि ऐसी स्त्रियां बहुत हों तो अधिक बिल्लियां, कम चूहे, अधिक मक्खियां, हरी भरी क्लव्हर की उपजाऊ खेती, और अन्त में बहुत हृष्ट पुष्ट और सुन्दर गौएं दिखाई देंगी। इस में प्रत्येक कडी वास्तविक है और प्राणियों के परस्पर सम्बन्ध कैसे क्लिष्ट और संग्रथित है इसका एक बहुत रोचक उदाहरण इस शृंखला में प्राप्त होता है ।

भारतवर्ष में ही देखिये । कहा जाता है कि प्लेग का रोग मुसलमानों में बहुत कम फैलता है, और कार्य कारण संबन्ध से बात भी ठीक है । ये लोग बिल्लियों के बड़े शौक़ीन होते है, अर्थात् बिल्लियों के आधिक्य से इन के घरों में चूहे कम होते हैं और ये चूहे ही प्लेग को फैलाने के कारण है ।

डार्विन के पश्चात् का कार्यः—संतति में संस्कारों का संक्रमण किन किन नियमों पर होता, है अर्थात् भिन्न भिन्न जाति के प्राणियों में अपने जातीय गुण किस विधि से वंशानुवंश संक्रमित होते हैं तथा समय समय पर जो नये गुण किसी प्राणि या प्राणियों में उत्पन्न हो जाते हैं वे किस प्रकार उस प्राणी की जाति के साथ संलग्न हो जाते हैं, इत्यादि बातों पर आज कल बड़े बड़े अन्वेषण तथा आन्दोलन वैज्ञानिकों में हो रहे है । विषय मनोरंजक है परन्तु सर्वसाधारण पाठकों के लिये अग्राह्य तथा क्लिष्ट होने के कारण हम उस का विस्तार नहीं करेंगे; परन्तु उनमें से चार वा पांच अन्वेषण इतने महत्व के है कि उनका बहुत ही थोड़ा क्यों न हो, वर्णन करना आवश्यक है ।

(१) प्रोफेसर गल्टन और पिअरसन का आनुवंशिक परम्परा का नियमः–आनुवंशिक परम्परा के नियम (Laws of Heredity)का विशेपतःप्रोफेसर गाल्टन (Galton) और प्रोफेसर पिअरसन (Pearson) इन दो महाशयों ने बड़ा प्रभावशाली अन्वेषण कर के ज्ञात किया कि मनुष्य और मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य प्राणियों के लिये आनुवंशिक परम्परा के नियम एक से हैं।

(२) आनुवंशिक-परम्परा--प्राप्ति में शरीर के कौन मूलाधार हैं–आनुवंशिक परम्परा प्राप्ति में शरीर के कौन से अंग मूलाधार हैं और उनकी स्थिति कहां है, इस के सम्बन्ध में भी बड़े महत्व के तथा निश्चय कराने वाले परिणाम ज्ञात किये गये हैं:—

डार्विन की कल्पना– (Theory of Pangenesis): इस विषय की डार्विन की यह कल्पना(Theory of Pangenesis)है कि शरीर के प्रत्येक अवयव और अँग के प्रत्येक कोष्ठ से उस उस कोष्ट के गुण धारी बहुत सूक्ष्म भाग (जिसको उसने Gemmules की संज्ञा दी है) उत्पन्न होते हैं। ये सब सूक्ष्म भाग शरीर में संतति उत्पादक रजः कणों में इकठ्ठा हो जाते हैं; अर्थात् एक प्रकार से रजः कण कुल शरीर की अत्यन्त सूक्ष्म सूक्ष्म प्रतिकृतियां हैं और उन में उसी प्रकार के शरीर उत्पन्न करने की शक्ति भी है। डार्विन के पश्चात् इस विषय पर अत्यन्त प्रसिद्ध अन्वेषण जर्मनी के प्रोफेसर वाईजमान (Prof. Weismann) के हैं।

वाईजमन का उत्पादक बीज का सिद्धान्तः– वाईजमान के १८८२ में प्रसिद्ध किये हुए उत्पादक सिद्धान्त (The Germ Plasm Theory)के अनुसार शरीर के प्रत्येक कोष्ट के केन्द्र विन्दु (Nucleus)में एक प्रकार का रंगदार पदार्थ होता है जिसको क्रोमेटिन (Chromatin) संज्ञा दी जाती है, और इस क्रोमेटिन में

आनुवंशिक गुण रहते हैं। प्रोटोप्लाज्म से आवेष्टित क्रोमेटिन का एक सूक्ष्म भाग और उसके साथ लगा हुआ एक चलन चलन करने वाला अंग मिल कर रजः कण बनता है। गर्भ धारणा में मातृ और पितृ रजः कणों के कोष्ठ मिल जाते हैं; उनके केन्द्र विन्दुओं का भी मेल हो जाता है और इन दोनों कोष्ठों का एक जोड़ कोष्ट बनता है, जिसमें समान समान राशि में मातृ और पितृ तत्व मिले हुए रहते हैं। आनुवंशिक संस्कारों का शारीरिक मूलाधार, यह क्रोमेटिन है जिस में मातृक और पैतृक संस्कार समान समान संमिलित है। आगे जब एक कोष्ठ के दो, दो के चार इस प्रकार (पृ०९५) जब गर्भ की वृद्धि होती है तब कोष्ठों के साथ इस क्रोमेटिन की भी वृद्धि होती है और नए नए कोष्ठ जैसे जैसे उत्पन्न होते जाते हैं वैसे वैसे उन कोष्ठों में क्रोमेटिन के अंश भी नए नए उत्पन्न होकर संमिलित होते जाते हैं। इस प्रकार बच्चे के शरीर के सब अवयवों में यह पैत्रिक संस्कार का वीज पहुंचता है। अब क्योंकि पूर्णता को बढ़े हुए प्राणी के उत्पादक कोष्ठों द्वारा ही उनकी उत्तरोत्तर अगली संतति की निर्माण क्रिया होती है, और क्योंकि इन उत्पादक कोष्ठों के क्रोमेटिन प्रारम्भिक उत्पादक कोष्ठ के क्रोमेटिन से ही पैदा होते हैं, इस लिये हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि संतति-अनुसंतति में किस प्रकार उत्पादक वीज (Germ Plasin) की संतति धारा एक पीढ़ी से दूसरी में क्रमवार बहती है। शरीर के भिन्न भिन्न संस्थानों (पृ०२४) के साथ ही प्रसव संस्थान (Reproductive System) के तत्व उत्पन्न होते हैं, वे किन्हीं अन्य कोष्ठ समूहों से पैदा नहीं होते परन्तु सीधे अंडे से ही उत्पन्न हुए होते हैं। अब क्योंकि अगली संतति में केवल उत्पादक कोष्ठों के वीज ही संक्रमित होते हैं इस लिये प्रथम तो यह बात स्पष्ट है कि माता पिता को बच्चे के साथ सम्बन्धित

रखने वालों के इन कोष्ठों के केन्द्र विन्दु का जो उत्पादक वीज है वही केवल है । उत्पादक बीज की यह धारा उत्तरोत्तर संतति में सीधी संक्रमित होती है—गर्भ से पूर्ण वढ़े हुए प्राणी तक, उससे अगली संतति के गर्भ में, इस प्रकार यह आगे आगे चलती है । इस धारा में कहीं भी विच्छेदन नहीं है और इस लिये हम स्पष्ट समझ सकते है कि कार्य वा कार्याभाव के कारण यदि किसी प्रकार के शारीरिक परिवर्तन उद्भूत भी हो जावें तो उनका संतति में संक्रमण होना असम्भव है । लामार्क मतवादियों की कल्पना, इस सिद्धान्त के अनुसार अशुद्ध सिद्ध होती है ।

वाईजमन का यह वहुमोल अन्वेषण डार्विन के मत को वहुत पुष्ट करता है और प्राकृतिक चुनाव की कल्पना को संपूर्ण करता है क्योंकि इस से पैत्रिक संस्कारों के संक्रमण का शारीरिक आधार स्पष्ट दीखता है । इस से प्राणियों में विभिन्नता की उत्पत्ति का भी समर्थन होता है क्योंकि प्रत्येक प्राणी में उत्पादक वीज की एक ही धारा नहीं, प्रत्युत दो भिन्न भिन्न पैत्रिक धाराओं का संगम वहता है ।

वाईजमान का यह सिद्धान्त केवल कल्पना के आधार पर खड़ा नहीं है; सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की सहायता से प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा इसका प्रत्येक भाग सिद्ध किया जा सकता है । प्रथम प्रथम वाइजमान का यह सिद्धान्त वैज्ञानिकों को स्वीकृत नहीं हुआ परन्तु वर्तमान में इसी का अत्यन्त आदर है । इस प्रकार आदर को पात्र होने के कारणो में मेंडेल का नियम (Mendel's Law) तथा डी व्ह्राईस की परिवर्तन की कल्पना (Mutation Theory) ये दो बहुत बड़े कारण है ।

मेंडेल का कार्यः—डी व्ह्राइस ने अपनी कल्पना के साथ मेंडेल का नियम १९०१ में प्रसिद्ध किया । मेंडेल ओस्ट्रिया (Austria)

निवासी एक पादरी था और १८६० से लगातार कुछ वर्षों तक किये हुए वनस्पतियों पर के असंख्य परीक्षणों के पश्चात् संतति में किस प्रकार पैत्रिक गुण संक्रमित होते हैं इसका एक अनमोल नियम उसने ज्ञात किया। यह नियम बहुत रोचक रीति से उत्पादक बीज की कल्पना को पुष्ट करता है: कभी कभी बच्चों का अपने पिता की अपेक्षा प्रपिता के साथ बहुत मेल दिखाई देता है इसका तथा इस प्रकार के जो प्रति निवर्तन (Reversion) दिखाई देते हैं उनका यह नियम अच्छे प्रकार स्पष्टी करण करता है। एकान्तर संक्रमण (Alternative Inheritance) को इस नियम ने बड़ा स्पष्ट कर दिया है। *

डी व्हाइज का कार्य--यह समझा जाता है कि डी व्हाईस की जो स्थापना है वह डार्विन की प्राकृतिक चुनाव की स्थापना का विरोध करती है और नई नई जातियां कैसी उत्पन्न होती हैं इसका किसी अन्य रीति से स्पष्टीकरण करती है, परन्तु वास्तव में यह स्थापना प्राकृतिक चुनाव की कल्पना, वाइजमान की कल्पना तथा मेंडेल के नियम की सम्पूरक है। इन्हीं के सदृश उत्पादक बीज में जो आनुवंशिक गुण होते हैं उस का यह समर्थन करती है। डार्विन से केवल एक अंश में इस का भेद है, डार्विन के मत में जो नई नई जातियां पैदा होती हैं वे शनैः शनैः होने वाले परिवर्तनों से होती हैं परन्तु डी व्हाईज के मत में नई नई जातियां कभी कभी एक दम बिना किन्हीं पूर्व चिन्हों के उत्पन्न होती हैं (Spontaneous Modifications)। डार्विन के पश्चात् जो कार्य हुआ है उस के, ऊपर के दिये हुए, अति संक्षिप्त ब्योरे से हम यह कह सकते हैं कि जो नए नए तत्व ज्ञात

---

* इस विषय पर सविस्तर ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस अध्याय के अन्त में जिन ग्रन्थों के नाम दिये हैं उनका अध्ययन करना चाहिये।

किये गये हैं उन से डार्विन सम्बन्धी प्राकृतिक चुनाव की कल्पना पुष्ट होती है; लामार्क की कल्पना यदि पूर्णतया खण्डित न हुई तथापि मण्डित तो किसी अंश में सिद्ध नहीं होती । ओसबोर्न (Osborne), बाल्डविन (Baldwin) तथा लायड मार्गन यह सम्मति देते है कि डार्विन और लामार्क के मत को मिला देने से प्राणियों का विकास अधिक अच्छे प्रकार सिद्ध किया जा सकता है।' नेगेली (Naegeli) तथा ऐमर (Eimer) के सिद्धान्तों पर कईयों का अधिक विश्वास है । अज्ञात तथा अज्ञेय शक्ति, आकस्मिक घटना, तथा हेतुवाद Teleology पर भी कईयों का विश्वास होने लगा है । परन्तु इन तथा अन्य वादों पर हम यह कह सकते हैं कि चाहे वे ठीक हों वा अशुद्ध, उनकी सिद्धि वसा पूर्ण और निश्चय दिलाने वाली अब तक नहीं हुई है जैसी कि डार्विन, वाईजमन, मेंडल और डी व्राइज के सिद्धान्तों की हुई है ।

सारांशः—परीक्षणात्मक प्राणिशास्त्र में आनुवंशिक परम्परा, और भिन्नताओं की उत्पत्ति पर वर्तमान में बहुत अन्वेषण किये जा रहे हैं और बहुत सम्भव है कि **विकास की विधि** का अधिक स्पष्ट विवेचन किया जायगा । परन्तु विकास की विधि का जितना कुछ अन्वेषण किया गया है उस से हम यह स्पष्ट कह सकते हैं कि वह **वास्तविक और स्वाभाविक है** ।

इस विषय की निम्न लिखित पुस्तकें महत्व की हैं:—

1— Bateson, W.— "Materials for the Study of Variation 1894.
2— " " "The Methods and Scope of Genetics " 1908.
3— " " " Mendel's Principles of Heredity " 1909.

4– Doncaster, L. – " Heredity in the light of recent Research" 1910.

5— Morgan, C. Lloyd.—"Habit & Instinct. 1896.'

6— " " "Animal Behaviour" 1900.

7— Morgan T. H.—Experimental Zoology" 1907.

8— Pearson, Karl– The Grammar of Science 1900.

9—Thomson, J. Arthur. — " Heredity " 1909.

10—Vries, H. De.–Species and Varieties, Their Origin by Mutation. 1905

11— " " "The Mutation Theory" 1910.

12— Weismann, August.– The Germ– Plasm" 1893.

13— " " Essays on Heredity & Kindred' Subjects" 1891-92.

पंचम खंड।

मानव जाति का शारीरिक विकास।

पञ्चम खंड

अध्याय (१)

वानर जाति और उसकी उपकक्षाएँ।

प्रस्तावनात्मक्—इस कार्य की कठिनाईयां—मनुष्य प्राणी ईश्वर की कोई विशिष्ट सृष्टि नहीं है—(१) मनुष्य की शरीर रचना में कोई विशेषताएं नहीं हैं—(२)स्तनधारियों की वानर कक्षा में मनुष्य का अच्छा सन्निवेश होता है-वानर जाति की आठ विशेषताएं—वानर कक्षा के भिन्न भिन्न प्राणियों के साथ मनुष्य जाति का तुलनात्मक विचार—वानर जाति का सविस्तर वर्णन—उपकक्षा १—"अर्धवानर"—उपकक्षा २—"वानर"—"वानर" कक्षा के वंश—१—मार्मोसेट -२-पुंछ युक्त बंदर तथा लंगूर—३—"बबून"—४-"वनमानुप"—५-वनमानुषों की सर्व साधारण विशेषताएं।

प्रस्तावनात्मकः—मनुष्य का इस संसार में कब प्रादुर्भाव और तब से आज तक मनुष्य जाति का क्या इतिहास है • ये प्रश्न हम मनुष्यों के लिये बहुत महत्व के हैं। अन्य प्राणियों का विवेचन करके अब तक यह बतलाया गया कि विकास द्वारा सब भिन्न भिन्न प्रकार के प्राणियों का इस संसार में प्रादुर्भाव हुआ है और विकास की यह घटना सर्वत्र विद्यमान है। एवं इस स्थापना की सर्व साधारण सिद्धि करके अब हम मनुष्य जाति का इस संसार चक्र में कौनसा स्थान है इस पर बिना किसी संकोच के विचार कर सकते हैं और हम वैसा ही करेंगे। अब तक हमने इस प्रश्न को जान बूझ कर नहीं छेड़ा था। अब हमारा अधिकार और साथ कर्तव्य भी है कि जिन नियमों तथा तत्वों के आधार पर हम ने अन्य प्राणियों के विषय में विचार किया है उन्हीं नियमों तथा तत्वों को लगाकर मनुष्य की

उत्पत्ति तथा विस्तार, मनुष्य का भिन्न भिन्न उपजातियों में फैलाव, उसकी मानसिक तथा समाजिक उन्नति, और अन्त में उसकी आत्मिक उन्नति पर, विकार रहित तथा निष्पक्षपात की दृष्टि से हम विचार करें। ये प्रश्न वैज्ञानिक हैं और इनका आन्दोलन भी वैज्ञानिक रीति से होना चाहिये ।

इस काय की कठिनाइयां:—इस कार्य में कठिनाइयां थोड़ी नहीं हैं; प्रथम तो मानुषिक जीवन का क्षेत्र ही अति विस्तृत और क्लिष्ट है, और मनुष्य के अन्य प्राणियों के साथ संबंध भी बहुत प्रचुर है। दूसरी कठिनाई यह कि मनुष्यत्व का अभिमान छोड़ कर केवल विज्ञान की दृष्टि से मनुष्य जाति के प्रश्नों पर विचार करना बहुत अनुभव के पश्चात् होता है। कई मनुष्यों का यह कथन है कि मनुष्य जाति पर विचार करना नहीं चाहिये क्योंकि उस से मनुष्य जाति को कुछ लाघव प्राप्त होता है और मनुष्य जाति संबंधी हमारी उच्च कल्पनाओं में कुछ न्यूनता उत्पन्न होती है। इस कथन की उतनी ही कीमत है जितनी कि उस कथन की होगी यदि कोई किसी बड़े भारी पुल को देखकर यह कह दे कि इस पुल के बनाने के तत्वों पर हम को विचार नहीं करना चाहिये, ऐसा करने से कहीं यह पुल काम देने से रह न जाय। मनुष्य वैसा ही बना रहेगा जैसा कि वह है, चाहे उसकी उत्पत्ति के विषय में हम पूर्ण अज्ञानता में हों, वा उसकी उत्पत्ति तथा विकास के विषय में हम पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लें। मनुष्य ने अपने आप अपना स्थान बहुत ऊंचा रखा हुआ है इस लिये मनुष्य जाति की उत्पत्ति तथा उसका वास्तविक स्थान निश्चित करने में मनुष्यों का मन झिझकता है। कई मनुष्यों को इस बात से इस लिये भय है कि यदि यह सिद्ध हो जाय कि मनुष्य भी निचली श्रेणी के प्राणियों से विकास द्वारा निर्मित हुआ है तो मनुष्य विषयक दैवी

उत्पत्ति की हमारी उच्च कल्पनाएं तथा उसके सम्बन्ध के अन्यान्य श्रेष्ठ विचार हम को बदलने पड़ेंगे।

इस भय में कुछ सार हो वा न, विज्ञान को सत्य से मतलब है; विज्ञान को सत्यान्वेषण की लालसा है और टाले टलेगा नहीं। हमारी इच्छाएं चाहे कैसी क्यों न हों और सब प्राकृतिक नियमों से हम अपने आप को स्वतंत्र करना क्यों न चाहें, तथापि सत्य सर्वदा अटल ही रहेगा। यदि हम ठीक प्रकार से विचार करेंगे तो हम इस परिणाम पर अवश्य पहुंचेंगे कि मनुष्य की उत्पत्ति का तथा उसकी उन्नति का ज्ञान प्राप्त करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि उससे हम अपने जीवन को ठीक नियमों में चला सकेंगे और उसको अच्छे प्रकार निभा सकेंगे। वास्तविक में देखा जाय तो मनुष्य की उत्पत्ति का ज्ञान उपलब्ध करने में मनुष्यों से इतना विरोध न होना चाहिए। इस व्यापक संसार के असंख्य प्राणियों में मनुष्य एक प्राणी है और उसका विकास अन्य प्राणियों के विकास के समान एक साधारण घटना है। यदि मनुष्यों के अतिरिक्त हम कोई अन्य प्राणी होते तो हमें मनुष्य जाति की बातें यथास्वरूप प्रतीत होतीं, अर्थात् मनुष्य प्राणी भी असंख्य जीवों में एक क्षुद्र सा जीव हमको प्रतीत हो जाता। क्षुद्र, स्वार्थी, अयुक्त, और विचार रहित मनो भावना से यदि हम अपना छुटकारा करा दें तो पश्चात् मनुष्य जातिका विचार हम सुगमता से कर सक्ते हैं, क्योंकि जो नियम निचली श्रेणी के प्राणियों के लिये कार्यकर हैं वे ही मनुष्य जाति के लिये कार्य करते हैं।

यहां यह बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं कि मनुष्य के संबंध का विकास की दृष्टि से विवेचन बहुत स्थूल स्थूल बातों को लक्ष्य में रखकर होगा, क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक में मनुष्य के सं-

वातों पर सूक्ष्म विवेचन नहीं हो सकता; उसके लिये एक स्वतंत्र ग्रंथ की आवश्यकता है। इस विषय को प्रथम भिन्न भिन्न विभागों में बाट कर एक एक विभाग का क्रमशः विचार करने से सुगमता प्राप्त होगी और अगले विभागों के लिये पिछले विभागो से सहायता मिल सकेगी। पूर्व की न्याई प्रत्येक विभाग के तत्वों को सिद्ध करने के लिये परिचित पदार्थों के ही उदाहरण लिये जायगे। मनुष्य की अध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न पश्चात् लिया जायगा। मनुष्य की सामाजिक उन्नति के प्रश्न पर भी मनुष्य की मानसिक उन्नति के विचार के पश्चात् ही आन्दोलन किया जाना चाहिये। सब से प्रथम मनुष्य का शारीरिक दृष्टि से विचार होना उचित है। जिस प्रकार किसी यंत्र के कार्य करने की शक्ति पर विचार करने के पूर्व उस यन्त्र की रचना पर विचार किया जाता है, और ऐसा ही करना आवश्यक है, उसी प्रकार मनुष्य के संबंध की मानसिक तथा आत्मिक बातों पर विचार करने के पूर्व, अन्य शरीर धारी प्राणियों की न्याई, शरीर धारी मनुष्य प्राणी का, उसकी शरीर की रचना और अन्य प्राणियों के साथ उस के संबंधों का विचार करना उचित और युक्ति पूर्ण है और ऐसा ही हम करेंगे।

इस विषय के वर्णन में, प्रथम मनुष्य जाति का किस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ तथा उसका निचली श्रेणी के प्राणियों के साथ क्या संबंध है, इस पर विचार किया जायगा, और इस के बाद मनुष्य की उत्पत्ति के अनन्तर मनुष्य जाति की जो भिन्न भिन्न उपजातिया बन गई हैं उन पर विचार प्रस्तुत होगा।

मनुष्य प्राणी ईश्वर की विशिष्ठ सृष्टि नहीं है:— मनुष्य के प्रादुर्भाव के विषय का विचार प्रारंभ करते हुए पहला प्रश्न यह होता है कि क्या मनुष्य, किसी विशिष्ठ रीति से बनाया

हुआ, ईश्वर का प्राणी तो नहीं है ? क्या मनुष्य भी अन्य प्राणियों की न्याईं विकास द्वारा उत्पन्न हुआ है ? इन प्रश्नों का समाधान करने वाला उत्तर प्राप्त करने के लिये हम को उसी वैज्ञानिक विधि का अनुकरण करना चाहिए, जिस से अब तक हम को सहायता प्राप्त होती रही है। इस विधि से जो सामग्री प्राप्त हो जायगी उस की छान वीन करके, परस्पर संबंध तथा विरोध देख कर, अन्त में किसी परिणाम पर पहुंचना चाहिए।

चार मुख्य प्रश्नः— (१) मनुष्य की शरीर रचना का तुल्नात्मक दृष्टि से विचार करते हुए हम प्रत्यक्षतया क्या देखते हैं, (२) शरीर की गर्भस्थ अवस्था से अन्त तक वृद्धि होते समय कौन कौन सी घटनाएं उपस्थित होती हैं, (३) चट्टानान्तर्वर्ति पदार्थों में मनुष्य के विषय में हमको किस प्रकार के प्रमाण प्राप्त होते हैं, और (४) क्या मनुष्य को भी उन्हीं प्राकृतिक नियमों के आधीन रहना पड़ता है जिन नियमों के आधीन अन्य प्राणी हैं, ऐसे तथा इनके सदृश अन्य प्रश्नों का विवेचन करने के लिये हमें अब उद्यत होना चाहिए। अर्थात् शरीर रचना, गर्भावस्था तथा चट्टानान्तर्वर्ति प्राणियों के प्रमाणों पर क्रमशः विचार करके हम को यह देखना चाहिए कि मनुष्य के संबंध में भी कुछ विकास दर्शक प्रमाण मिलते हैं वा नहीं, और पश्चात् जिन जिन प्राकृतिक कारणों द्वारा मनुष्येतर प्राणियों का विकास द्वारा, इस संसार में प्रादुर्भाव हुआ उन उन का मनुष्य पर किस प्रकार का प्रभाव है यह विचार प्रस्तुत होना चाहिए।

अप्रत्यक्ष प्रमाण—मनुष्य प्राणी विकास का परिणाम है वा नहीं इसको ज्ञात करने के दो प्रकार हैं, एक प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा और दूसरा अप्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा। प्रत्यक्ष प्रमाणों को देने के पूर्व अप्रत्यक्ष प्रमाणों से क्या सिद्ध होता है ? अन्य प्राणियों के

विषय में अब तक जितना कुछ सिद्ध किया जा चुका है उसी से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य भी विकास द्वारा प्रादुर्भूत हुआ, क्योंकि जिस प्रकार कुल पदार्थ में खण्ड पदार्थ अन्तर्हित रहता है उसी प्रकार कुल प्राणी समूह में मनुष्य प्राणी भी अन्तर्हित है । मनुष्य के संबंध में हमें इस अनुमान को स्वीकार ही करना पड़ेगा; नहीं तो हमें उन कारणों को बतलाना पड़ेगा जिससे हम यह कह सकें कि मनुष्य प्राणी में ईश्वर की एक विशिष्ट सृष्टि है और ईश्वर से उसको ऐसी अपूर्व शक्ति और ऐसे विलक्षण गुण प्राप्त हुए हैं कि उसकी अन्य प्राणियों से पृथक् ही गिनती होनी चाहिए । यदि हम इस प्रकार की कोई विशेषताएँ मनुष्य में नहीं दिखा सकें, और प्राणीमात्र की एकता के प्रमाण हम को संमत हों तो मनुष्य के लिये भी विकास का सिलसिला सम्मत होना चाहिए; अथवा प्राणियों के विषय में जितनी विविध बातें हम अबतक देख चुके हैं उनकी युक्ति युक्त संगति किसी अन्य सहेतुक स्थापना द्वारा बतलाई जानी चाहिए । जब तक यह नहीं होता तब तक मनुष्य के संबंध में भी विकास को स्वीकार करना पड़ेगा । अतः प्रथम हम यह देखेंगे कि मनुष्य में ऐसी कोई विशेषताएं विद्यमान हैं वा नहीं जिनसे मनुष्य को ईश्वर की विशिष्ट सृष्टि के नाम से अंकित करना आवश्यक है ।

१-मनुष्य की शरीर रचना में कोई विशेषताएं नहीं हैं:-मनुष्य के शरीर तथा शरीर के व्यापारों का विचार किया जाय तो अन्य पदार्थों की न्याईं उन पर भी भौतिक नियमों का प्रभाव प्रतीत होता है। गुरुत्वाकर्षणादि सब नियम उनमें कार्य कर रहे है, अन्य प्राणियों की न्याइ जीवन के सर्व नियमों का पालन मनुष्य प्राणी भी कर रहा है, मनुष्य शरीर उन्हीं आठ मुख्य मुख्य संस्थानों के समूह से बना हुआ है जिन से अन्य प्राणी बने हैं (पृ.), और उन संस्थानों के

व्यापार भी अन्य प्राणियों के संस्थानों के व्यापारों के सदृश होते हैं। मनुष्य का प्रत्येक अवयव बीज कोष्ठों के असंख्य समूहों से बना हुआ है, इन बीज कोष्ठों का अन्तर्गत पदार्थ वही प्रोटोप्लाज्म वा चेतनोत्पादक रस है जो अन्य प्राणियों के बीज कोष्ठों में विद्यमान है, और इस प्रोटोप्लाज्म के वैसे ही गुण हैं जैसे अन्य प्राणियों के प्रोटोप्लाज्म के होते हैं। अर्थात् हम कह सकते हैं कि मनुष्य प्राणी में, जीवन शास्त्र तथा भौतिक नियमों की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं है।

मनुष्य की शरीर रचना के तत्वों को जब हम देखते हैं तब भी यह अवस्था दीखती है। जिस तत्व पर पृष्ठवंश धारी प्राणियों की शरीर रचना की गई है उसी प्रकार के तत्वों पर मनुष्य की शरीर रचना है। पृष्ठ वंश की अस्थिया अन्य प्राणियों के शरीर का आधार है; इसके एक अग्र के साथ सिर की अस्थियां जुड़ी हुई हैं और इसी के साथ हाथों और पैरों की अस्थियां संलग्न हैं; मनुष्य की भी ऐसी ही रचना है पृष्ठ वंश युक्त प्राणियों में ही मनुष्य की गणना करनी चाहिये, क्योंकि उस में कोई ऐसी खास बातें नहीं जिन से उस को पृष्ठवंशरहित तथा पृष्ठवंश युक्त प्राणियों के अतिरिक्त किसी अन्य तीसरे विभाग में डालने की आवश्यकता प्रतीत हो।

स्तनधारी श्रेणी की वानरकक्षा में मनुष्य का समावेश होता है:—रीड की हड्डी वाले प्राणियों की मत्स्य, मण्डूक, सर्प, पक्षी, तथा स्तनधारी, ये जो पांच मुख्य श्रेणियां हैं (पृ. ४१) उन में से किस में मनुष्य की गणना है यह प्रश्न होता है। क्या मनुष्य के लिये किसी नई श्रेणी की अपेक्षा है? शरीरान्तर्वर्ति रचना तथा बाह्य रचना से देखा जाय तो मनुष्य जाति के लिये किसी विशेष श्रेणी की आवश्यकता नहीं। मनुष्य जाति की स्तनधारियों (Mammalia)की श्रेणी में बड़ी अच्छी और सहज रीति से गणना हो जाती है।

भिन्न भिन्न वंश और उस की अन्य जातियो तथा उपजातियो के प्राणियो के दांत की संख्या नियत होती है, और अन्य कक्षाओं से दांत के विषय में यह कक्षा बहुत विशिष्ट है (६) प्रत्येक हाथ की पांच २ ही अंगुलियां होती है और अंगुलियो के अग्र पर प्रायः नाखून होते हैं; थोड़े से अपवादों के छोड़ कर पंजो के नाखून नहीं होते, (७)

मनुष्य का स्तनधारियो में समावेश करने के पश्चात् प्रश्न यह होता है कि स्तनधारियों में खुरवालें, मांसाहारियें, तीक्ष्ण दंतियें की जो पृथक् पृथक् कक्षाएं बनी हुई हैं उन में से किस कक्षा में उस का सामवेश होता है ? मनुष्य का समावेश उस कक्षा में होता है जिस में बंदर, तथा वन मानुष समाविष्ट है । मनुष्य का समावेश इस कक्षा में न केवल पूाणिशास्त्र वेत्ताओं अथवा विकासवादिओं ने किया है परन्तु गत तथा वर्तमान समय के बड़े बड़े विकासवाद के विरोधियें ने भी मनुष्य की शरीर रचना का अन्य पूाणियें के साथ साम्य देखकर इसी वानर श्रेणी में समावेश किया है ।

वानर कक्षा की आठ विशेषताएं:— स्तनधारी श्रेणी की वानर कक्षा में क्या क्या विशेषताएं है उनका भी यहां विचार करना अत्यावश्यक है। पूाणी शास्त्र से अनभिज्ञ लोगें को ये विशेषताएं विशेष महत्व की पूतीत नहीं होगी, परन्तु जैसा आगे हम देखेंगे, इन विशेपताओं को ज्ञात करना अत्यंत लाभकारी है, इस से वानर जाति की अन्य स्तनधारियों से अच्छे प्रकार विभिन्नता प्रतीत होती है । वानर जाति की निम्न लिखित विशेषताएं हैं। (१) गर्भावस्था में माता के साथ गर्भ का आन्वल नाल वा झिल्ली के द्वारा, संबंध रहता है; (२) हाथों और पैरों के अंगूठे अच्छे पूकार चारों दिशा में घूम सकते है और अपने साम्हने की कनिष्ट अंगुली के साथ मिल सकती हैं, जिस से उन में पदार्थों को पकड़ने की तथा ग्रहण करने की शक्ति होती है; (३) इनके हाथो और पैरों में अन्य पदार्थों को ग्रहण करने तथा पकड़ने की शक्ति होने के कारण ये प्रायः वृक्षों पर रहते हैं। (४) स्थिर रहने वाले दांत आने के पूर्व इन पूाणियों के दूध के दांत उत्पन्न होते हैं और इन दूध के दांतों के गिर जाने के पश्चात् ही स्थिर दांत आ जाते है । (५) वानर कक्षा के

भिन्न भिन्न वंश और उस की अन्य जातियें तथा उपजातियें के प्राणियें के दांत की संख्या नियत होती है, और अन्य कक्षाओं से दांत के विषय में यह कक्षा बहुत विशिष्ठ है (६) प्रत्येक हाथ की पांच २ ही अंगुलियां होती हैं और अंगुलियें के अग्र पर प्रायः नाखून होते हैं; थोड़े से अपवादों को छोड़ कर पंजों के नाखून नहीं होते, (७) हंस्ली की अस्थियां दृढ़ और ठीक प्रकार वृद्धिगत हुई होती है, और (८) प्रत्येक प्राणी के दे। स्तन होते हैं और इन के द्वारा माताएं अपने बच्चों को दूध पिलाती हैं। वानर जाति की इन विशेपताओं को पढ़ कर कौन कह सकता है कि मनुष्य में और वानर जाति के प्राणियों में सादृश्य नहीं है ?

वानर कक्षा के भिन्न भिन्न प्राणियों के साथ मनुष्य जाति का तुलनात्मक दृष्टि से विचारः—इस कक्षा के भिन्न भिन्न प्राणियों की भिन्नताएं तथा समानताएं सामने रखते हुए वैज्ञानिकों ने मनुष्य जाति को सब से श्रेष्ठ स्थान निम्न लिखित चार मुख्य कारणों से दिया है। (१) पूर्णतया सीधे खड़े होकर चलना (२) मस्तिष्क का अन्यों की अपेक्षा सब से बहुत अधिक विकास (३) वाणी द्वारा बोलने की शक्ति और (४) विचार करने की शक्ति। हम यहां तुलनात्मक दृष्टि से मनुष्य शरीर का विचार कर रहे हैं इसलिये तीसरी और चौथी विशेपता के साथ हमारा विशेप प्रयोजन नहीं है; हां, पाठकों के ध्यान में इतना अवश्य रहे कि इन विशेपताओं का सम्बन्ध द्वितीय विशेपता के साथ है, अर्थात् मस्तिष्क के अत्यधिक विकास से ही वाक् शक्ति तथा विचार करने का सामर्थ्य मनुष्य को प्राप्त हुआ है।

प्रथम की दो विशेपताओं के विषय में यह देखा गया है कि मनुष्य और अन्य प्राणियों का इस विषय का भेद तात्विक नहीं है;

केवल परिमाण या दर्जे का ही है: मनुष्य का मस्तिष्क और अन्य वानरों का मस्तिष्क एक ही प्रकार का परन्तु बहुत बड़ा है, यानी मनुष्य के मस्तिष्क की कोई विशिष्ट प्रकार की रचना नहीं है। सीधे खड़े हो कर चलने के विषय में भी ऐसा ही परिमाण का भेद है, तत्व का नहीं; और यह परिमाण का भेद भी मस्तिष्क के अधिक विकास के होने के कारण उत्पन्न हुआ है। हम समझते हैं कि वानर जाति के प्राणियों का अधिक सविस्तर रीति से वर्णन करना चाहिये; इससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि जिस प्रकार प्राणियों के मस्तिष्कों का विकाश होता गया, बराबर उसी प्रकार प्राणियों में विशेषताएं उत्पन्न होती गई।

वानर जाति का सविस्तर वर्णन:—वानर कक्षा की उपकक्षाएं, और उपकक्षाओं के कहीं कहीं वंश भी, निम्न प्रकार हैं:—

उपकक्षा १—"अर्धवानर" जिसमें "लीमर" जाति के बंदर हैं।

उपकक्षा २—"वानर" जाति

- वंश १— मार्मोसेट
- वंश २— अमरिका के पूंछ युक्त बंदर तथा लंगूर
- वंश ३— "बब्रून" जाति
- वंश ४— "बन मानुष" जाति
- वंश ५— "मनुष्य" जाति

"वानर" कक्षा की ये जितनी उपकक्षाएं तथा वंश है इन सब का वर्णन बहुत मनोरंजक है; मनोरंजकता का कारण यह है कि कुछ प्राणियों में अपनी कक्षा की विशेषताओं से अन्य विशेषताएं हैं और कुछ प्राणियों के ऐसे गुण हैं जिनके निचली और ऊपरली कक्षाओं का आपस में सम्बन्ध प्रतीत होता है।

उपकक्षा १—"अर्धवानर" जाति:—इस उपकक्षा में "लीमर" (Lemur) नाम के प्राणी सम्मिलित है। इनका विकास स्थान अफरिका के पूर्व की ओर माडागास्कर नामक (Madagasker) एक महान् द्वीप पर है। इनको "अर्धवानर" संज्ञा दी गई है; इसका कारण यह है कि इनका केवल हाथो और पावों की आकृति में ही बदरों के साथ साम्य है। ये प्राणी आकार में छोटे होते है और आकृति में गिल्हेरी के समान दीखते है। ये वृक्षों पर रहते है और सूर्य के छिप जाने के पश्चात् रात्रि में अपने भक्ष की खोज के लिये बाहिर निकलते हैं; छोटे छोटे पक्षी तथा कीट, पतग, टिड्डे आदि इनके भक्ष है। पिछले अवयवों की अपेक्षा इनके अगले अवयव छोटे होते है। इनकी अगुलियों पर साधारणत. नाखून होते हैं परन्तु पैरों के अंगूठों के पास की अंगुलियों पर पंजे के नाखून (Claws) होते है। इनके दात ३६ होते हैं तथा छाती और पेट पर दो दो स्तन होते हैं।

"वानर" कक्षा के वंश:—अर्धवानरों को छोड कर "वानर" उपकक्षा का विचार करते हुए प्रथम **मार्मोसिट वंश** है। इस वंश के प्राणी अमरिका के निवासी है। ये भी लीमरों की न्याई आकार में छोटे होते हैं। पूछ युक्त बदरों के साथ इनका बहुत साम्य है। इनकी विशेषता यह है कि इनके अंगूठे और कनिष्ट अंगुलिया परस्पर मिल नहीं सकती और पैर के अगूठों को छोड़कर इनकी अगुलियों पर नाखून नहीं होते। प्रत्युत उन पर पजे के नाखून होते हैं; इनके मस्तिष्क की वृद्धि भी अल्प है, बहुत पूतीत नहीं होती।

वंश २--पूंछ युक्त बंदर—इनके पश्चात् पूछ वाले बदरों तथा लगूरों का वंश आता है। इन प्राणियों से हम सब अच्छे प्रकार परिचित हैं। इनकी चपलता, होशियारी, तथा धूर्तता का सब को अनुभव है। लगूरों की छलांगें बहुत प्रसिद्ध हैं। इन प्राणियों

को संस्कृत में "शाखामृग" अर्थात् वृक्षों के हिरण कहते हैं; और है भी ठीक, क्योंकि जिस प्रकार ज़मीन पर हिरण कूदने फांदने में प्रवीण होते हैं उसी प्रकार वृक्षों की शाखाओं पर कूदने फांदने में ये बड़े प्रवीण होते है। इस प्रवीणता का कारण यह है कि इनके पैरों में शाखाओं को पकड़ने की शक्ति है और इन के पैर पूर्णतया हाथों का कार्य देते है। लंगूरों की पूंछ बहुत बड़ी होती है जिसकी सहायता से भी ये शाखाओ को पकड़ लेते है। बंदरों को चलते हुए सब ने देखा है। ये अपने पैरों और हाथों के तलुओं को ज़मीन पर रख रख कर चलते हैं। लीमर तथा मार्मोसेट की अपेक्षा इनके मस्तिष्क की अच्छी उन्नति प्रतीत होती है और इस उन्नति के अनुसार इन प्राणियों में बुद्धिमत्ता भी अधिक है। बंदरों की बुद्धिमत्ता से हम सब परिचित हैं, इस लिए उसका विशेष वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। मस्तिष्क की वृद्धि होने के कारण केवल इनके सिर में ही परिवर्तन नहीं आये, अपितु सिर और शरीर के शेष भागों के परस्पर सम्बन्ध में भी परिवर्तन आए हुए हैं। मस्तिष्क को ढाकने वाली सिर की अस्थि वा खोपड़ी, मुंह की अपेक्षा बड़ी होने के कारण, मुंह के आगे निकल आती है अतः निचली श्रेणी के प्राणियों की न्याई इनका मस्तिष्क पीछे की ओर हटा हुआ नहीं होता परन्तु मुंह के ऊपर आगे की ओर निकला हुआ होता है; इस लिए इनकी आंखें भी नीचे की ओर झुकी हुई होती हैं तथा दृष्टि भी दिगन्तसम अवस्था (Horizontal positoin) से नीचे की ओर झुकी होती है। बंदर जब चुप चाप स्वस्थ बैठना चाहता है तब वह कुत्ते की न्याई पेट [illegible] नहीं लेटता परन्तु सीधा मनुष्य की न्याई बैठता [illegible]
प्राप्त होती है।

वंश ३-बबून-अगला वंश "बबून" नाम के बंदरों का । इनकी आकृति कुत्ते की आकृति के समान होती है। बंदरों के मान ही लगभग इनके मस्तिष्क का आकार होता है। इस उ की बहुत सी विशेषताएं नहीं हैं, इस लिये इनको छोड़ कर आगे वन मानुषों के मनोरंजक वृत्तान्त की ओर हम चलते हैं।

अध्याय (२)

वनमानुषों का वर्णन।

प्रास्ताविक—" गिवन " Gibbon का वर्णन– २–" ओरांग औटांग" –Orang-outang ३—" चिपांझी " Chimpanze ४–"गोरिला" Gorilla.

प्रास्ताविक:—"वानर" उप कक्षा का चौथा वंश "वनमानुष है— आज लगभग २५० वर्ष हुए जब से इन वनमानुषों की खो की जा रही है; इस से पूर्व इनके सम्बन्ध में किसी को कुछ भी क ल्पना न थी। बंदरों की अपेक्षा वनमानुषों का हमारी दृष्टि में अ त्यन्त अधिक महत्व है। इन वनमानुषों की चार जातियां मुख्यतय प्रसिद्ध हैं। (१) **गिवन** (Gibbon) (२) **ओरांग औटांग** (Orang -Outang) (३) **चिंपांझी** (Chimpanzee) और (४) **गोरिला** (Gorilla) इन में से (१) तथा (२) पूर्व एशिया में, और (३) तथा (४) पश्चिम अफ्रीका में पाये जाते है।

इन वनमानुषों की सर्व साधारण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:—इन के दांत पूर्णतया मनुष्य के दांतों के स- मान होते हैं, नाक नीचे की ओर झुकी होती है, और अन्दर की ओर उसके दो विभाग पूर्णतया नहीं हुए होते जैसे कि मनुष्य के

होते हैं। इनके हाथ सर्वदा पैरों की अपेक्षा अधिक लंबे होते हैं इन प्राणियों की पूंछ विलकुल नहीं होती और न ही बंदरों के सदृश इन के गालों में पदार्थों का संचय करने के लिये गलथैलियां (Cheek Pouches) होती हैं।

इन वनमानुषों की चार जातियों में से प्रत्येक का हम थोड़ा २ वर्णन देंगे; इसका एक कारण तो यह है कि इन के जीवन का हाल बहुत मनोरंजक है और दूसरा यह कि मनुष्य प्राणी के ये अत्यन्त निकट के सम्बन्धी हैं। हम इन की अधिक उपेक्षा कर भी नहीं सकते।

१. **"गिबन" जाति का वनमानुषः**— जाव्हा, सुमात्रा, बोर्निओ मालक्का, सियाम, आराकान तथा भारतवर्ष के कुछ थोड़े विभाग में इस जाति के प्राणी निवास करते हैं। आकार में ये बहुत लम्बे नहीं होते; इन की अधिक से अधिक लम्बाई ३ फीट होती है। पहाड़ों तथा छोटे छोटे टीलों पर ये रहते हैं; इनकी बोली बहुत तीक्ष्ण होती है और ये कहीं दस पांच इकट्ठे हुए नहीं कि हल्ले गुल्ले का सीमोल्लंघन हुआ। पैरों की अपेक्षा इनके हाथ अधिक लम्बे होते है और मनुष्य सरीखे सीधे खड़े होकर ये चल भी सकते हैं; जब इस प्रकार ये चलते है तब, इनके हाथ बहुत लम्बे होने के कारण, ज़मीन पर लटकते रहते हैं। इन के मस्तिष्क की अच्छी वृद्धि हुई प्रतीत होती है, क्योंकि इनके मस्तिष्क का भाग इतना बढ़ा हुआ प्रतीत होता है कि मुंह और आंखों के आगे वह निकला हुआ होता है। जब ये सीधे खड़े होकर चलने की चेष्टा करते हैं तब ही इन की दृष्टि सामने की भूमि पर पड़ती है और आगे आने वाले वस्तु को ये सुगमतया देख सकते है। यदि अपने हाथों और पैरों को भूमि के साथ लगाकर ये चलना चाहें तो आगे की ओर देखने के लिये इनको उतना ही कष्ट होता है जितना मनुष्यों को इस अवस्था में हो सकता है। अपने सिर को बहुत

(चित्र सं० २५)

गिब्बन

(पृ. २१६ के सम्मुख)

बुरी रीति से कष्ट देकर जब तक ऊपर उठाया हुआ नहीं रक्खा जाय तब तक इनको अगला कुछ भी नहीं दीख पड़ता । अतः जहां तक हो सके ये प्राणी मनुष्य की न्याई दो पैरों पर खड़े रहते है अथवा मनुष्य के सदृश बैठ जाते हैं । इनके और मनुष्य के चलने में एक यह अन्तर है कि जब ये चलने लगते हैं तब तोल सम्हालने के लिये अपने हाथों को आगे फैला देते हैं, यद्यपि मनुष्य भी चलने के समय अपने हाथों को हिलाता रहता है । इस वर्णन को पढ़कर कौन कहेगा कि मनुष्य ही केवल एक ऐसा प्राणी है जो सीधे खड़े होकर चलता है ? सीधे मैदान पर जब ये चलने लगते है तब ये ऐसे बेडौल चलते है कि मानो ये चलने का अभ्यास कर रहे है । एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर और दूसरे से तीसरे तथा इसी प्रकार अगले वृक्षों पर इतनी फुर्ती चपलता और शीघ्र गति से दौड़ते है कि यदि कोई यह कहे कि ये उड़ते हुए, वृक्ष से वृक्षान्तर पर चले जाते हैं तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी । मनुष्य से यह बहुत भय खाते है और मनुष्य को देखते ही वृक्ष की शाखा को पकड़ कर ऊपर चढ़ जाते हैं। स्वभाव से ये साधारणतया ग़रीब होते हैं परन्तु एक वार चिड़ जाने पर ये बहुत बुरी तरह से पेश आते हैं ।

इनका भोजन कीड़े हैं, तिसपर भी मास से इनको बहुत घृणा होती है; जल पीने की तथा कोई अन्य द्रव पदार्थ सेवन करने की इनकी बड़ी विचित्र रीति है; उस पदार्थ में अपने हाथों की अंगुलियों को डुबो कर फिर उनको ये चाटते हैं । ये बैठे २ नींद लेते हैं। इस जाति की स्त्रियों में अपने बच्चों की स्वच्छता के लिये बहुत विचार होता है: मातायें बच्चों को नदी के किनारे वा किसी पानी के पास जाकर, बच्चों के रोने पीटने की पर्वाह न करते हुए, उनके मुंह धोती हैं ।

इन प्राणियों में विचार तथा विवेक शक्ति (Reason) का अस्तित्व प्रतीत होता है। नैसर्गिक बुद्धि (Instinct) निचली श्रेणियों के सब प्राणियों में होती है; मनुष्यों और वनमनुष्यों में उनसे यदि कोई अधिकता है तो वह इस विचार तथा विवेक शक्ति की है। निम्न लिखित कथा स्पष्ट प्रकार से बतला देगी कि किस रीति से ये प्राणी अपने अन्याय्य आचरण पर विचारते हैं। एक कोई बेनेट महाशय थे; उनके पास पाला हुआ एक गिबन था। गिबनों का यह स्वभाव होता है कि कमरे में ठीक प्रकार से रखी हुई वस्तुओं को वे तितर बितर कर देते हैं; वस्तुओं को बिगाड़ने में और अन्य छोटे २ उपद्रव करने में इनको बहुत प्रेम होता है; साबून की टिकिया से इस पालतू गिबन को विशेष रीति से रुचि थी और दाव लगने पर वह इसे अवश्य ही उठा ले जाता था; एक दो बार साबून की टिक्की ले जाने पर उसे उसके स्वामी ने बहुत धमकाया। बेनेट महाशय लिखते हैं कि एक दिन मैं उस कमरे में, जहां वह "गिबन" प्राणी रहा करता था, मेज और कुर्सी लगाकर लिखने के लिये बैठ गया। लिखते लिखते अकस्मात् मैंने आंख ऊपर उठाई तो देखा कि गिबन साबून की टिक्की उठाने के लिये हाथ बढ़ा रहा है। आंख बचाकर उसकी सब कार्यवाही मैं देखता रहा। गिबन भी मेरी ओर छिप छिप कर देखता था; गिबन ने मुझे लिखने में अत्यन्त व्यग्र समझा; साबून की टिक्की उठाई और उसको लेकर अपने स्थान पर जाने लगा। आधे अन्तर तक पहुंचने पर इसे घबराहट में न डालते हुए मैंने धीमी आवाज़ से प्रश्न पूछना आरंभ किया। गिबन को यह ज्ञात होने पर कि उसका चौर कर्म प्रकट हो गया है वह आधे मार्ग से लौटा, टिक्की को पूर्ववत् जहां वह थी वहां रख कर अपने स्थान पर चुपचाप जा बैठा। इस कथा से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि गिबन

(चित्र संख्या १६)

ओरांग औटांग ।

(पृ. २१९ के सम्मुख)

प्राणी में केवल स्वाभाविक बुद्धि ही नहीं, प्रत्युत विचार तथा विवेक शक्ति का भी प्रादुर्भाव हुआ हुआ है।

२—"ओरांग औटांग"

ओरांग औटांग (Orang-Outang) का सुमात्रा तथा बोर्निओ द्वीप पर निवास स्थान है। पहाड़ों पर रहना इन्हें पसंद नहीं, परंतु घने जंगलों में रहना ये अधिक सुखकर समझते हैं। आकार में साढ़े चार फुट से अधिक लंबे नहीं होते। इनकी स्त्री जाति, बंदरियों सदृश, अपने बच्चों को पेट के साथ लगाकर लेती फिरती है। यह प्राणी गिबन की न्याईं चपल नहीं प्रत्युत बहुत सुस्त और शरीर में भारी है; इसका मस्तिष्क बड़ा होता है, गला मोटा और हाथ बड़े बलवान् होते हैं, जो गिट्टे तक पहुंचते हैं। इसकी टांगें छोटी और झुकी हुई होती हैं; इसका कपाल (forehead) ऊंचा तथा नाक पर्याप्त बड़ी होती है; कान तो पूर्णतया मनुष्य के कानों के समान ही हैं; इसका मस्तिष्क भी मनुष्य के मस्तिष्क के आकार का होता है। कंधों और जंघा पर बाल एक एक फुट लंबे होते हैं जो पीले लाल वर्ण के होते हैं। ये प्राणी वृक्षों पर रहते हैं और अपने सोने के लिये पत्तों की शय्या बना लेते हैं। अपने पैरों पर सीधा खड़ा होकर यह प्राणी चल नहीं सकता परन्तु आधा झुक कर अपने हाथों की अंगुलियों के जोड़ों को (Knuckles) ज़मीन के साथ लगाकर चलता है। यह प्राणी मांसाहारी नहीं, पत्तों तथा फलों पर अपना गुज़ारा करता है। यह बहुत शीघ्र पालतू बन जाता है। मनुष्य के ऊपर यह कभी आक्रमण नहीं करता। यह बड़ा बलवान् होता है, यहां तक कि मगरमच्छ के साथ साम्मुख्य में उसे मार डालता है। स्वभाव का यह बड़ा दुष्ट और चालाक होता है।

चित्र सं० (१७)

३. चिपांजी

चिंपांजी (Chimpanzee).—इस प्राणी की आकृति देखकर और वर्णन पढ़कर यह ज्ञात हो जायगा कि बंदरों की आकृति को छोड़ कर यह तथा अन्य वनमानुष अधिकाधिक मनुष्य की आकृती के पास पहुच रहे हैं। वन मानुषों में यह प्राणी मनुष्य के साथ आकार में अधिक मिलता जुलता है। इस प्राणी की बहुत सी जातिया

(चित्र स० १८)

गजा चिंपॉन्जी

(पृ स० २२० के सम्मु

है, परन्तु मुख्य हैं एक असली चिपांझी और दूसरे गंजे चिपांझी। इसका वसति स्थान आफ्रिका खंड है। यह प्राणी शरीर का बड़ा बलवान और छाती तथा हाथों में विशेषतया बलिष्ट होता है। आकार में इसकी लम्बाई ५ फुट तक होती है, अर्थात् मनुष्य कक्षा की कुछ जाति के प्राणियों की अपेक्षा यह प्राणी लम्बाई में बड़ा होता है। उदाहरणार्थ, दक्षिण अफ्रिका में रहने वाले बुशमन (Bushman) को लीजिये; बहुत से बहुत हुआ तो इसकी लंबाई साढ़े चार फुट तक होती है, इससे अधिक कभी नहीं बढ़ती। अर्थात्, चिपांझी इनसे लंबाई में न्यून से न्यून आधा फुट अधिक है। चिपांझी के कान बहुत बड़े होते हैं, भृकुटी बहुत आगे को निकली होती है और उस पर के बाल लम्बे तथा घने होते हैं। इसके हाथों और पैरों के अंगूठे मनुष्यों के अंगूठों के समान होते हैं; इसका पैर हाथों का बहुत कुछ कार्य करता है। यह प्राणी चलने के समय हाथों और पैरों पर ही चलता है परन्तु तब अपने हाथों की अंगुलियों की मुट्ठी बांध कर उनको उलटी करके ज़मीन पर रखता है। यह पैरों पर खड़ा भी रह सकता है परन्तु तब वह अपने हाथ अपने सिरपर रखता है। इसके दांत पूर्णतया मनुष्य के दांतों के समान होते हैं। इसकी चमड़ी का रंग लाल अथवा भूरा लाल होता है और बालों का काला।

गंजे चिपांझियों के लगभग सर्व मुख पर बाल नहीं होते, कान बहुत अधिक लम्बे, ओंठ बहुत मोटे और हाथ और पांव काले अथवा भूरे रंग के होते हैं। अन्य बातों में इन दोनों उपजातियों का पर्याप्त मेल है।

इन का भोजन फल और पत्ते होते हैं; ये मांस नहीं परन्तु मांस खिलाने का अभ्यास डालने पर बड़े स्वाद से

जाते हैं। ओरांग ओटांग के सदृश ये वृक्षों पर अपनी शय्या बनाते है। गिबनों की न्याई वृक्षों पर चढ़ने में ये बड़े चपल होते हैं। प्रायः ३० से ५० तक के समूहों में ये रहते है। शिकारी जब इन का पीछा करते हैं तो अपना रक्षण करने का ये प्रयत्न नहीं करते; जब पकड़े जाने की अत्यन्त सम्भावना प्रतीत होती है तब ये एक दम मुंह फेर कर शिकारी पर आक्रमण करके उस को अपने हस्तगत करने के लिये बड़ा परिश्रम करते हैं; यदि इन से कुछ भी न बन सके तो शिकारियों के काटने के लिये अवश्य ही सिर तोड़ प्रयत्न करते हैं। ये प्राणी बहुत गलीज रहते है। इस जाति की स्त्रियों का अपने बच्चों के लिये बड़ा प्रेम होता है। शिकारी के आने पर ये बच्चों को छोड़ कर भाग नहीं जाती प्रत्युत बच्चों के रक्षणार्थ लड़ने तक को तय्यार हो जाती हैं। इस जाति में बुद्धि का भी विशेष चिन्ह पाया जाता है। जब शरीर के किसी स्थान से रक्त बहने लग जाता है तब अपने हाथों से जखम वा घाव को दबा कर खून का बाहिर निकलना बन्द कर देते है, और इतने पर भी खून यदि बन्द न हो तो जखम पर घास को तोड़ कर लगा देते है। जिस प्रकार छोटे बालकों को कपड़े पहिनने का तथा प्याले में से चम्मच द्वारा दूध चाय आदि पीने का अभ्यास कराया जाता है, वैसे ही चिंपाझी को भी कराया जा सकता है। स्तनधारियों में, इस में कोई सन्देह नहीं कि, मनुष्य के अतिरिक्त, सब से बुद्धिमान यही एक प्राणी है। एक बड़े मानस शास्त्र के वेत्ता कहते हैं कि बुद्धि सामर्थ्य में चिंपांझी ९ मास के बालक के समान होता है। जहां तक हो सके ये प्राणी मनुष्य के पास आने से बचते है परन्तु यदि इनके ऊपर आक्रमण हो तब ये बड़े ज़बरदस्त प्रतीत होते हैं।

गोरिला

(४) "गोरिला"

बन मानुषों में यह गोरिला (Gorilla) प्राणी अत्यन्त बड़े शरीर का, विलक्षण बलवान् तथा बहुत ही भयानक जंतु है। इस का भी निवास स्थान अफ्रिका है। इस भयंकर प्राणी को देख कर मनुष्य के शरीर सामर्थ्य की कितनी अवनति हुई है इस बात का अच्छा परिचय होता है। पूर्णतया वृद्धि को प्राप्त हुए हुए गोरिला की लम्बाई पांच फुट छः इन्च से लेकर छः फुट तक होती है; इस की शरीर रचना बहुत मज़बूत और भुजाएं तथा छाती विलक्षण शक्ति युक्त प्रतीत होती हैं। सचमुच राक्षसों का यह एक नमूना है। चित्र में भी इस की आकृति कैसी भयानक दीखती है। मुंह कैसा लम्बा तथा चौड़ा, जबड़ा कितना बहुत बड़ा, आंखें कैसी बड़ी बड़ी, नाक कितनी चौड़ी और चपटी, आंखों के ऊपर की भौंएं कैसी आगे निकली हुई, ओंठ कैसे बड़े बड़े, और मांस काटने के दांत तो हाथी के दांत के सदृश कितने तीक्ष्ण और बड़े दिखाई देते हैं। कानों ने ही केवल ख़राबी की है। वे ही अकेले मानवी कानों के तुल्य दिखाई देते हैं। हाथ भी लम्बे घुटनों तक पहुंचते हैं। हाथ की अंगुलियां तथा अंगूठे भी कैसे विलक्षण प्रतीत होते हैं। मस्तिष्क बड़ा परन्तु पीछे की ओर झुका होता है। अपने मस्तिष्क की ऊपर की चमड़ी यह आगे पीछे बढ़ा सकता है; जब इसको क्रोध आता है तब यह चमड़ी भौंएं के ऊपर तक फैल जाती है और शरीर के बाल खड़े हो जाते हैं, जिस से यह बहुत भयानक प्रतीत होता है। मनुष्य के समान पूर्णतया सीधा खड़ा होकर चल सकता; यह अर्ध सीधे खड़े हो आगे की ओर झुके हुए चलता है; चलते समय अपने हाथों की अंगुलियों को मोड़ कर ज़मीन पर रखता

और उन के सहारे शरीर को आगे उठाता है। चिपांझी के सदृश ही इस के चलने की क्रिया है। यह प्राणी चिपांझी के सदृश वृक्ष पर घर बनाता है। यह बहुत क्रूर होता है और मनुष्य को देख कर आक्रमण करने के लिये दौड़ता है। अतः इन का शिकार भी एक बड़ा साहस का कार्य है। पर्याप्त प्रयत्न किया गया है परन्तु यह प्राणी किसी प्रकार से पालतू नहीं हुआ। बनमानुषों का इस प्रकार का यह संक्षिप्त वर्णन है। इस के पश्चात् अब हम अगले अध्याय में मनुष्य का तुलनात्मक रीति से विचार करेंगे।

अध्याय (३)

मनुष्य प्राणी का विचार।

प्रास्ताविक-मनुष्य की दो विशेषताएं १-मस्तिष्क की उन्नति और २-सीधे खड़े होकर चलना-मनुष्य के मस्तिष्क की अन्य प्राणियों के मस्तिष्क के साथ तुलना-हस्तपादादि की तुलना-सारांश: मनुष्य का अन्य प्राणियों से कोई तात्त्विक भेद नहीं; भेद केवल परिमाण का है-मानवी शरीर में बहुत से अवशिष्टावयव हैं-विकास की स्थापना ही अवशिष्टावयवों का समर्थन कर सकती है-कुछ अन्य प्रकार के स्मारक चिन्ह-गर्भ शास्त्र के प्रमाणों से मानवी विकास की सत्यता-चट्टानान्तर्वर्ति प्रमाणों से मानवी विकास की सचाई-शरीर व्यापार शास्त्र के प्रमाण- समारोप।

प्रास्ताविक:—बन मानुषों के वर्णन के पश्चात् मनुष्य जाति का वर्णन करना एक सुगम कार्य है, क्योंकि अब मनुष्य का वर्णन करते हुए हम को केवल एक ही कदम आगे बढ़ाना है। मनुष्य और बनमानुष में यदि विशेष प्रकार की कोई भिन्नता है तो वह

मनुष्य के मस्तिष्क का विकास है, मनुष्य के मस्तिष्क की अच्छे प्रकार उन्नति हुई है और इसी उन्नति के कारण उस की बुद्धि, विचार, तथा विवेक शक्ति में भी बहुत परिवर्तन आ गए है।

मनुष्य की दो विशेषताए १—मस्तिष्क की बहुत उन्नति और २ सीधे खडे होकर चलना: हमने इस खण्ड के प्रथम अध्याय में यह दिखाया है कि मनुष्य और वनमानुष में दो मुख्य अन्तर हैं (१) मनुष्य के मस्तिष्क का बहुत अधिक विकाश और (२) उसका सीधे खडे होकर चलना, और इसी खण्ड के पिछले अध्यायों मे दिये हुये बदरों तथा वनमानुषों के वर्णन को यदि हम ध्यान पूर्वक पढेंगे तो हमको यह स्पष्टतया ज्ञात हो जायगा कि जैसे जैसे प्राणियों के मस्तिष्क की उन्नति होती गई है वैसे वैसे इस उन्नति का परिणाम उनके सीधे खडे होने पर होता गया है। देखिये, बदरों के मस्तिष्क अन्य प्राणियों के मस्तिष्कों की अपेक्षा अच्छे प्रकार उन्नत हैं और इस उन्नति के कारण एक तो उनकी बुद्धि तथा चातुर्य में उन्नति हुई है और दूसरे वे दो पावों पर सीधे खडे भी हो सकते हैं। बदर बैठ कर सोते हैं, चुपचाप रहना हो तो मनुष्य के सदृश बैठ जाते हैं, और विशेष विशेष अवस्थाओं में दो पैरों पर दस पाच कदम चल भी लेते हैं। मदारीयों के अथवा सर्कसों में सिखाए हुए बदर लकडी के सहारे दो पैरों पर अच्छे प्रकार चलते हैं, यह किस का परिणाम है? केवल उनके मस्तिष्क की उन्नति का है।

गिबन, ओराग, चिपाजी, और गोरिला में भी इसी बात का प्रमाण मिलता है। उनके मस्तिष्क की उन्नति के अनुसार उन में बदरों की अपेक्षा अपने पगों पर सीधे खडे रहने तथा चलने की भी अधिक शक्ति होती है।

मस्तिष्क की उन्नति का परिणाम सीधे खड़े रहने की ओर किस रीति से होता है इसका अनुमान लगाना कोई विशेष कठिन बात नहीं है। पूंछ वाले बंदरों की न्याईं हम अपने हाथों और घुटनों को भूमि के साथ लगा दें तो हमारी आंखें सीधी भूमि की ओर देखने लगेंगी, क्योंकि उन्नति को प्राप्त हुआ हमारा मस्तिष्क आकार में इतना बड़ा हो गया है कि वह आखों और मुंह से आगे की ओर बढ़ा हुआ है, अर्थात् हमारा मुह और आखें मस्तिष्क को ढाकने वाली खोपड़ी के आगे नहीं निकली हुई परन्तु मस्तिष्क से पीछे की ओर रहती हैं। इस प्रकार हाथों और घुटनों पर स्थित होकर यदि हम आगे की ओर चलना चाहेंगे तो क्योंकि यह आवश्यक है कि हमारी आखे भी आगे की ओर देख सकें, अतः इस क्रिया के लिये हमें अपने सिर को उठा कर पीछे झुकाना पड़ेगा; इससे मस्तिष्क पर इतना तनाव पड़ेगा कि इस अवस्था में मिन्ट वा दो मिन्ट रहना भी कठिन हो जायगा; भूमि पर से हाथों को उठा कर घुटनों पर खड़े रहते ही न केवल तनाव ही हट जाता है अपितु उसके स्थान में बहुत आराम प्रतीत होने लगता है।

प्राणियों का विकास होते होते जब उनके मस्तिष्क का विकास होकर उसका आकार बहुत बढ़ गया तब प्राणी स्वभावतः ही शनैः शनैः सीधे खड़े होने लगे। इस सीधे खड़े होने का प्रभाव अन्य अवयवों पर भी पड़ा। उदाहरणार्थ, आंतड़ियों को सहारा देने के लिये पेडु वा वस्ति देश (Pelvis) का स्थान अधिक विस्तृत हो गया है, क्योंकि आंतड़ियों का भार अब पेट की चमड़ी (Abdominal walls) पर नहीं पड़ता परन्तु वस्ति देश के अस्थियों पर पड़ता है। *

---

* हमारा यह अनुमान है कि मनुष्य को अन्तर्गल (Hernia)

मनुष्य के पृष्ठ वंश में भी अपेक्षया भिन्नता उत्पन्न हुई है। उस के पृष्ठ वंश का स्तंभ (Vertebral Column) दो स्थानों में वक्र होगया है जिससे पृष्ठ तथा सिर को समतोल रखने में अधिक सहायता प्राप्त होती है। मनुष्य के शरीर में इस प्रकार की रचनाएं बीसियों दिखाई देती हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य के शरीर की प्रारंभिक रचना चतुष्पादों के शरीर रचना के सदृश थी; अत, यह कहने मे कि मनुष्य प्राणि को जो मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है वह उसके मस्तिष्क के विकास का ही परिणाम है, किसी प्रकार का प्रत्यवाय नहीं होना चाहिये।

मनुष्य के मस्तिष्क की अन्य प्राणियों के मस्तिष्कों के साथ तुलना:—यदि मनुष्य के मस्तिष्क की अन्य प्राणियों के मस्तिष्कों के साथ तुलना की जाय तो हम देखेंगे कि बंदर वा वनमानुष के और मनुष्य के मस्तिष्क में कोई तात्विक अंतर नहीं है, मनुष्य और चिंपाझी की मस्तिष्क रचना का तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी। चित्र (सं० २० और २१) में इन दोनों के मस्तिष्कों में कितना साम्य दीखता है! क्या ही उनके बाह्याकार और क्या ही उनकी अन्दर की बनावट, एक ही तत्व पर दोनों की रचना की हुई प्रतीत होती है। चित्रों को देखकर किसी मानीस को भी इस विषयक अन्देशा नहीं हो सकता। अन्तर जो कुछ दीखता है वह परिमाण का है, तत्व का नहीं है। चिंपाझी ही अपेक्षा मनुष्य के

आदि इसी प्रकार के आंतड़ियों के जो अन्य रोग होते हैं उन का कारण आंतड़ियों का स्थान परिवर्तन ही है। जानवरों के वैद्य (Veterinary Surgeons) बतलाते हैं कि इस प्रकार के रोगों से जानवर पीड़ित नहीं होते।
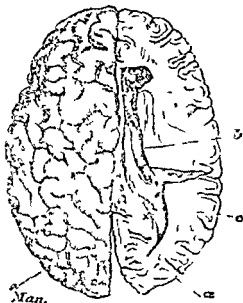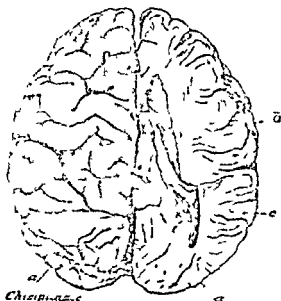
मनुष्य और चिंपांझी के मस्तिष्कों की खोपड़ियों को उतार कर उनके ऊपर के भागों के लिये हुए तुलना दर्शक चित्र, a, पिछली ओर का हिस्सा, b, Lateral Ventricle, c, Posterior cornu, x, Hippocampus minor

मस्तिष्क में क्लिष्टता अधिक है। मनुष्य के मस्तिष्क में कोई विशिष्ट, तथा अपूर्व अवयव विद्यमान नहीं हैं; अन्य प्राणियों के मस्तिष्कों में जैसे और जिस रचना के हैं वैसे और उसी रचना के ही मनुष्य में हैं। जहां एक में रक्त वाहिनी, नाड़ी, स्नायु, गर्त, मांसल भाग वा आवेष्टण हैं, दूसरे में उन्हीं स्थानों पर वैसे ही अवयव विद्यमान हैं; केवल उनके आकार और कहीं कहीं संख्या का अन्तर है। मनुष्य के मस्तिष्क के अवयव अधिक पुष्ट और संवर्धित हैं। *

हस्तपादादि की तुलना :—मनुष्य तथा वनमानुषों के हस्तपादादि की रचना भी देखिए; बिलकुल एकसी है; अस्थियों के आकार, संख्या, परस्पर संबन्ध, नाड़ियां आदि सब पूर्णतया समान हैं। रचना संबंधी कोई तात्त्विक अन्तर नहीं है। जो कुछ अन्तर है वह हाथों और पैरों की लंबाई आदि तथा अंगूठों की चलन चालन की शक्ति में है। जैसे (१) लंबाई चौड़ाई और मुटाई में मनुष्य के हाथों और पैरों का अन्य अवयवों के साथ जो अनुपात है, वही अनुपात गोरिला अथवा अन्य वनमानुषों के उन उन अवयवों में नहीं है। (२) मनुष्यों में पैरों का अंगूठा कनिष्ट अंगुली के साथ नहीं मिल सक्ता, अर्थात् मनुष्य अपने पैरों की अंगुलियों द्वारा किसी वस्तु को पकड़ वा उठा नहीं सक्ता परंतु गोरिला तथा अन्य वनमानुषों के पैरों के अंगूठे कनिष्ट अंगुलियों के साथ मिल जाने के कारण पैरों की उंगलियों द्वारा वस्तुओं को वे पकड़ वा उठा सकते हैं। इनके हाथों और पैरों के चित्रों (सं० २२; २३, २४ और २५) से यह तुलना स्पष्ट प्रतीत होती है।

---

* सूक्ष्म सूक्ष्म अवयवों का इसलिये हमने सविस्तर वर्णन नहीं दिया कि उसमें बहुत से पारिभाषिक शब्दों को प्रयुक्त करना पड़ता और विषय भी ज़रा सा क्लिष्ट होता।

पृष्ठवंश की लम्बाई का यदि विचार किया जाय तो भी उसकी रचना में कोई तात्विक भेद नहीं है; जो भेद है वह लम्बाई तथा आकार में है । मनुष्य, गौरिला, चिपांझी, ओराग यूटान, तथा गिवन के अस्थि-
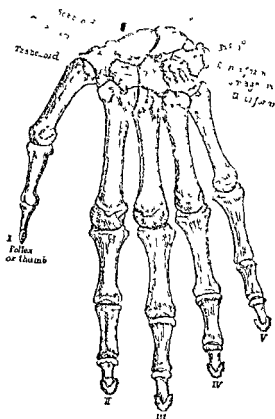
[चित्र सं० २२]

" मनुष्य का हस्त "

ंजिरों के दिये हुए चित्र (पृ० २३५ चित्र सं०२६ से मस्तिष्क, पृष्ठ ंश, हाथ और पैर तथा उंगलियां, सीधे खड़े होकर चलने की शक्ति, था बहुत सी अन्य बातें तुलनात्मक रीति से दृष्टिगोचर होती हैं ।

लेया गया, क्योंकि, बंदर और दनमानुप की न्याई, मनुष्य कच्चा रुटा

[चित्र सं० २४]
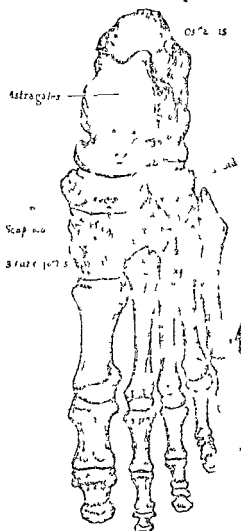
" मनुष्य का पैर "

भोजन नहीं खाता परतु पकाया हुआ मृदु भोजन
प्रकार के भोजन के लिये उसे इसकी आवश्यकता

गोरिला की यह दाढ़ बहुत बलवान और तीखी होती है और अन्य दांतों के साथ ही निकल आती है। असभ्य जाति के मनुष्यों में

[चित्र स० २५]
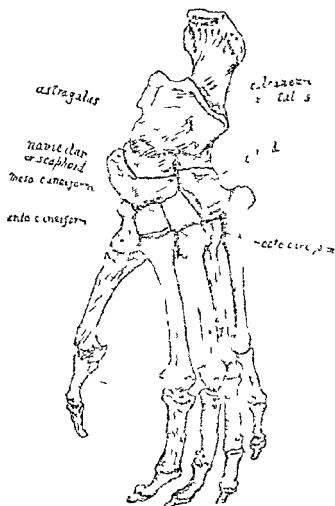
" वनमानुष का पैर "

यह बाल्यावस्था के अन्त में निकल जाती है, परन्तु सभ्य जातियों में यह तरुणावस्था में निकल आती है। कई ऐसे पुरुष हैं कि जिनकी

यह बिल्कुल निकलती ही नहीं। नीग्रो और मलायाद्वीपस्थ लोग अब तक अर्ध जंगली अवस्था में है और सभ्य लोगों की अपेक्षा उनके ये दांत भी अधिक बलवान और तीक्ष्ण हैं। उन्नति को प्राप्त हुए सभ्य मनुष्य के ये दांत बहुत छोटे होते है और इसी कारण नीग्रो की अपेक्षा इनका मुंह भी बहुत छोटा होता है। अमरिका में सभ्यता यहां तक बढ़ गई है कि शस्त्र प्रयोग से इन दांतों को निकलवाने की परिपाटी भी वहां चल पड़ी है।

केश—शरीर पर केशों का आच्छादन न होने के कारण मनुष्य की अन्य प्राणियों से एक दम भिन्नता होती है। मनुष्य के ऊपर यह आच्छादन न होने के कारण लगभग नग्न अवस्था में वह जन्म पाता है। मनुष्य के ऊपर जो कुछ बाल दिखाई देते हैं वे इस आच्छादन का शेष बचा हुआ भाग है। भिन्न भिन्न जातियों में तथा एकही जाति के भिन्न भिन्न मनुष्यों में बालों की कमोवेशी का बहुत भेद रहता है। कई कुटुम्ब ऐसे हैं कि जिन में पुरुषों की भृकुटी के बाल सिपाही की भृकुटी के बालों के सदृश बड़े लंबे होते हैं। कइयों के कन्धों पर, तो कइयों के कानों पर बड़े लंबे लंबे बाल निकल आते हैं, और इस प्रकार की विशेषताएं आनुवंशिक भी पाई जाती हैं। कभी २ ऐसे बालक जन्मते है जिन का सब शरीर बनमानुषों के सदृश लंबे लंबे बालों से आच्छादित होता है। मिस जुलिया पास्ट्राना नाम की एक स्त्री है जिसका सर्व शरीर लंबे २ बालों से ढका हुवा है।

सारांश: मनुष्य का अन्य प्राणियों से कोई तात्विक भेद नहीं है, भेद केवल परिमाण का है:— ऊपर का तुलनात्मक वर्णन देखकर संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि वानर और मनुष्य कक्षा में तात्विक रीति का कोई भेद नहीं है, जो भेद है वह परिमाण का है। नैसर्गिक अवस्था, शरीररचना और स्वभावादि में मनुष्य

[चित्र सं० २६]
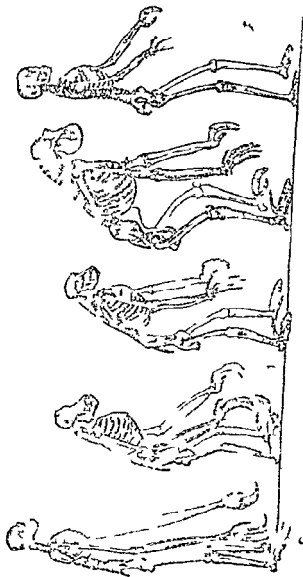
इस चित्र से इन पाञ्चों के मस्तिष्क, पृष्ठवंश, हाथ और पैर तथा अंगुलियां, सीधे खडे होकर चलने की शक्ति तथा अन्य बहुतसी बातों की तुलनात्मक कल्पना अच्छे प्रकार होती है ।

और अन्य पशुओं की बहुत समानता है; तिस पर भी इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि उनमें कोई अन्तर नहीं और मनुष्य तथा वानर सब अंशों में परस्पर सदृश हैं । यह कथन बहुत असंगत और वास्तविक अवस्था की अशुद्ध कल्पना देने वाला है । इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि इन दोनों में जो साम्य हैं वे प्रधान तथा बहुत व्यापक हैं, और इनकी जो भिन्नताएं हैं वे मनुष्य के शरीर की अधिक संकीर्णता तथा उन्नति के कारण उत्पन्न हुई हैं । मनुष्य को सब प्राणियों में जो उच्च स्थान प्राप्त हुआ है उसका कारण उसके ज्ञान-तन्तु-संस्थान का विकास है । ज्ञान तन्तु संस्थान वा मस्तिष्क की वृद्धि के कारण मनुष्य के अन्य संस्थानों की थोड़ी बहुत अवनति हुई है; तथापि इस अवनति के जो दुष्परिणाम हैं उन से बढ़कर इस मस्तिष्क की वृद्धि से मनुष्य को लाभ पहुंचे हैं । देखिये, शरीर बल में गोरिला से मनुष्य बहुत गिरी हुई अवस्था को प्राप्त हुआ है; हाथों और पैरों के बल में गोरिला के साथ मनुष्य कदापि साम्मुख्य नहीं कर सकता है; और छाती की विशालता में गोरिला मनुष्य से दुगना है । परन्तु यह ध्यान में रहे कि अपने शरीर के बल से गोरिला उस प्रकार कार्य नहीं कर सक्ता जो मनुष्य अपनी बुद्धि सामर्थ्य से तथा अपने शरीर के व्यापारों को नियन्त्रणा में रखने से कर सक्ता है । इसी लिये मनुष्य का अन्य प्राणियों पर जीवनार्थ संग्राम में विजय होता है ।

मनुष्य के शरीर में बहुत से अवशिष्टावयव हैं:— अब हम मनुष्य शरीर में विकास के जो स्मारक चिन्ह हैं उनकी ओर चलेंगे । मनुष्य शरीर का भले प्रकार निरीक्षण किया जाय तो पुरानी वस्तुओं का वह एक विलक्षण अजायबों घर प्रतीत होगा; जीवन के व्यापारों के लिये जो अवयव स्तनधारियों के लिये बहुत महत्व के हैं उनमें से कई, मनुष्य की पर्याप्त उन्नत अवस्था के कारण, उसके

लिये उतने महत्व के नहीं रहे हैं, और उसके शरीर में वे अपने स्थानों पर गिरावट की अवस्था में विद्यमान हैः कुछ अवयव तो प्रयोग में न आने के कारण लुप्त प्राय ही हो गए हैं। इन अवयवों को अवशिष्टावयव (Rudimentary Organs) कहते हैं, और ये मनुष्य की पूर्वस्थिति के सचमुच स्मारक चिन्ह हैं; । प्रत्येक प्रकार के प्राणि में ऐसे चिन्ह विद्यमान होते हैं और विकास की क्रिया की वास्तविकता के ये प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । ऐसे अवयवों की विद्यमानता एक असामान्य बात नहीं प्रत्युत एक अटल घटना है । मनुष्य के प्रत्येक संस्थान में ऐसे अवयव विद्यमान हैं और यदि इन सब का हम वर्णन करने लग जाय तो इसका एक पृथक ग्रन्थ ही बन जावगा । स्थानाभाव से हम यहा सब अवयवों का वर्णन नहीं करते, परन्तु बहुत मुख्य मुख्य अवयवों का केवल सक्षेप में निर्देश ही करेंगे।

(१) अपनी इच्छा के अनुसार अपने शरीर की त्वचा (चमड़ी) को हिलाने की शक्ति बहुत पशुओं में विद्यमान है। शरीर पर बैठ कर मक्खिया जब पशुओं को काटने लगती हैं तब अपनी त्वचा को, स्नायुओं द्वारा, हिलाकर वे उनको भगा देते हैं । जल से भीगे हुए अपने शरीर से, त्वचा को हिलाकर, पानी झाड़ने का इन स्नायुओं द्वारा किस प्रकार पशु काम लेते हैं यह प्राय सब का देखा होगा । मनुष्य के शरीर में भी ऐसे स्नायु आज विद्यमान हैं, परन्तु इस प्रकार का कार्य करने की उनकी शक्ति अब नष्ट हुई है, मानो कि ये स्नायू अवशिष्टावयवों की अवस्था में अब पेन्शन पा रहे हैं ।

(२) भृकुटियों को ऊपर और नीचे करना, कपाल को सल्वट डालना, ओंठ और गालों को हिलाना, नाक को ऊपर चढ़ाना, इत्यादि कार्य भी स्नायुओं की शक्ति पर निर्भर है, और क्योंकि मनुष्य अब भी इस प्रकार के कार्य इन स्नायुओं द्वारा कर रहा है अत इन स्नायु-

ओं की शक्ति नष्ट नहीं हुई । आंखों की त्वचा कभी कभी अपने आप हिलने लग जाती है, जब हम चाहें हम उसको हिला नहीं सकते; इसका अर्थ यह है कि आखों के स्नायुओं की यह शक्ति नष्ट प्राय होगई है ।

(३) सिर के चाद की चमडी को हिलाने के लिये जो स्नायु विद्यमान हैं उनमें अब यह शक्ति नहीं है कि मनुष्य जब चाहे तब उनसे काम लिया जा सके। ये स्नायू तो केवल नाम धारी ही रह गये हैं; संसार में बहुत ही थोड़े लोग हैं जो इन स्नायुओं से काम ले सकते हैं । कडोल (Candolle) नाम के एक प्रसिद्ध फ्रान्सीसी अन्वेषक ने अपना जो इस विषय का अनुभव लिख रखा है वह अवश्य मनोरंजक है। वह लिखता है कि एक वार उसका एक ऐसे पुरुष के साथ परिचय हुआ कि जिसमें अपने सिर के चाद को हिलाने की शक्ति थी । सिर पर रखी हुई पुस्तकें चमड़ी को हिलाकर वहां से वह गिरा सकता था । उसी में केवल ऐसी शक्ति न थी परंतु उसके वंश के कई पुरुषो में यह शक्ति विद्यमान थी; उसका दादा, पिता, चाचा, और उसके तीन लड़के भी इस प्रकार का कार्य कर सकते थे । इतना ही नहीं परंतु सात पीढियों के पूर्व विभक्त हुए हुए इस वंश के कुछ पुरुषों में भी, जो अन्य देश में रहने के लिये गये थे, कडोल ने इस शक्ति की विद्यमानता का अनुभव किया । आनुवंशिक संस्कारों से इस प्रकार की अनावश्यक बातें भी कैसी संक्रमित होती हैं इस का यह एक बड़ा अच्छा उदाहरण है। बंदरो में इस प्रकार की शक्ति विद्यमान है, और कभी कभी इससे वे कार्य भी लेते है । मनुष्य की यह शक्ति इस लिये नष्ट हुई कि अब उस को इसका प्रयोजन न रहा । अभ्यास करने पर यह शक्ति मनुष्य में पुनरुद्भूत होती है और

हो सकती है, जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि मनुष्य प्राणी में पहले यह शक्ति विद्यमान थी।

(४) अपने कान फड़फड़ाने की शक्ति प्राय. सब प्राणियों में है, मनुष्य के कानों में भी यह क्रिया कराने वाले स्नायू आज विद्यमान हैं, परन्तु कानों को फड़फड़ा कर मिट्टी वा पानी झाड़ने का अथवा मक्खियों को उड़ाने का कार्य अब वह अपने हाथों से क्योंकि भले प्रकार कर सकता है इस लिये सदियों से इन स्नायुओं को कार्य रहित रहना पड़ा है और उनमें अब वह शक्ति नहीं रही। बहुत ही थोड़े मनुष्य होंगे जो अपने कानों को आगे, पीछे, ऊपर, वा नीचे कर सकते हैं। मनुष्य का ही क्या कहना है। कुछ बंदर और वनमानुष, जिनके कान पूर्णतया मनुष्यों के सदृश होते हैं, इस शक्ति से अब वंचित हो गए हैं और इसका कारण भी स्पष्ट है, मक्खियों को उड़ाने का काम वे अपने हाथों से कर लेते हैं।

(५) अपने घ्राणेन्द्रिय से लगभग सब प्राणी बहुत कुछ अपना काम करा लेते है। भक्ष्य की खोज और शत्रु की पहिचान करने में उनको इस से बहुत सहायता प्राप्त होती है। मनुष्य का भी घ्राणेन्द्रिय है, परन्तु क्योंकि अन्य प्राणियों के सदृश मनुष्य को इस इन्द्रिय से उतना कार्य नहीं पड़ता, अत मनुष्य का घ्राणेन्द्रिय तीक्ष्ण नहीं है। मनुष्यों और स्थानों की पहिचान कुत्ते अपने घ्राणेन्द्रिय द्वारा किस विलक्षण रीति से रखते हे इसका सबको अनुभव है। कुत्ते जब अपरिचित मनुष्य वा स्थान के पास जाते हैं तब सब ने देखा होगा कि उस मनुष्य वा स्थान को सूंघने लगते हैं, इस लिये कि शायद उस मनुष्य वा स्थान की ठीक पहिचान रहे। डार्विन के पास एक उनका बहुत परिचय का कुत्ता था, पांच वर्ष के लिये उस कुत्ते को डार्विन ने कहीं दूर भेज दिया था, इस अवधि के पश्चात् जब अपने पूर्व

स्थान पर वह कुत्ता आ गया तब अपने पूर्व स्वामी को उसने अपने घ्राणेन्द्रिय द्वारा एक दम पहिचान लिया । बिल्ली, गौ, घोड़ा, आदि अन्य जानवर भी गंध से ही मनुष्यों तथा स्थानों की पहिचान रखते है । बिल्ली को घर से निकालना कितना कठिन है ! मीलों की दूरी पर छोड़ देने से भी सूंघती सूंघती फिर पहले स्थान पर वह लौट कर आती है । मनुष्यों में भी घ्राणेन्द्रिय की शक्ति में भेद है । वहिषी वा असभ्य लोगों के घ्राणेन्द्रिय सभ्य जातियों की अपेक्षा बहुत तीव्र होते हैं: नीग्रो जाति के लोगों में कई ऐसे हैं कि वे केवल गंध से ही अंधेरे में मनुष्यों की पहिचान कर सकते हैं ।

ऊपर वर्णित अवशिष्टावयवों को देखने से यह अनुमान होता है कि अब ये लुप्त प्राय होने के रास्ते पर हैं और कुछ पीढ़ियों के पश्चात् पूरं पूरे नष्ट हो जायंगे । इन स्नायुओं की शक्ति क्यों नष्ट हुई इसका उत्तर बहुत स्पष्ट है: इनका कार्य मनुष्य प्राणी अपने हाथों द्वारा तथा अन्य रीति से बहुत अच्छे प्रकार करने लगा है । इसका परिणाम इन स्नायुओं पर यह हुआ कि किसी प्रकार का कार्य करने की आवश्यकता न रहने के कारण उनकी शक्ति शनैः शनैः कम होती गई और सदियों के पश्चात्, वैरागियों के खड़े रक्खे हाथ के सदृश, ये स्नायु और त्वचाएं शक्तिहीन और कार्य करने में असमर्थ हो गई ।

विकास की स्थापना ही अवशिष्ट अवयवों का समर्थन कर सकती है:—विशिष्टोत्पत्ति वाद से इन कार्य रहित निर्बल अवयवों का समर्थन नहीं होता; मनुष्य की पृथक् उत्पत्ति मानने वाले इन अवयवों का प्रयोजन नहीं बता सकते; सर्व शक्तिमान ईश्वर की लीला अतर्क्य है, क्षुद्र मानव जंतु की बुद्धि पूर्णतया कार्य कारण भाव तक नहीं पहुंच सकती,

इत्यादि निस्सार बातों से वे अपने मन का सन्तोष करते हैं। विकासवाद के अन्य विरोधी भी इन निकम्मे अवयवों के प्रयोजन नहीं बता सकते। ईश्वर ने जिस हेतु से ये अवयव मनुष्य को दिये हैं उस का यदि हमें आज ज्ञान नहीं है तथापि भविष्य में हो जायगा इस प्रकार की वितण्डा करके वे सन्तुष्ट होते है, यद्यपि यह कोई युक्ति नहीं है। विकासवाद की स्थापना ही इन अवयवो का युक्ति युक्त स्पष्टी करण दे सकती है।

कुछ अन्य स्मारक चिन्ह—अब हम मानवी शरीर रचना में से कुछ अन्य प्रकार के स्मारक चिन्हो का वर्णन करेंगे।

१—अन्ननालिका -स्तनधारियों की अन्ननालिका (Alimentary Canal) को आदि से अन्त तक देखा जाय तो उसके गला, उदर, आतड़ी, आदि भिन्न २ भाग दीख पड़ेंगे। आतड़ी के दो भाग हैं एक छोटी आतड़ी का, और दूसरा बड़ी आतड़ी का, जहा छोटी आतड़ी समाप्त होकर बड़ी आतड़ी शुरू होती है वहा एक ओर से बंद मुह वाली थैली स्थित है, जिसको अंग्रेजी में (Vermiform Appendix) व्हर्मिफार्म अपेंडिक्स कहते हैं, मनुष्य को छोड़ कर अन्य स्तनधारियों में यह अवयव बड़ा और बहुत कार्यकारी होता है, मनुष्य के शरीर में इसकी बहुत हीन अवस्था दीखती है; यह आकार में सुकड़ा हुआ और छोटा हो गया है और मनुष्य के शरीर में, सिवा रोग उत्पन्न करने के, इसका कोई अन्य कार्य प्रतीत नहीं होता, बेर वा इस प्रकार के अन्य फलों की गुठली यदि अकस्मात् पेट में चली जाय तो उसकी इस थैली में अटक जाने की बहुत सम्भावना होती है, और यदि ऐसा हो जाय तो उस स्थान में सूजन तथा सडाद का प्रारम्भ होकर प्राय रोगी की मृत्यु हो जाती है। पाठकों की स्मृति से यह बात नहीं चली गई होगी कि स्वर्गीय सप्तम एडवर्ड

वादशाह के ऊपर १९०६ में इसी अवयव के रोग ने आक्रमण किया था और बड़ी कठिनता से इस से उन का छुटकारा हुआ ।

(२) मनुष्य की वाल्यावस्था तथा गर्भावस्था में ऐसे स्मारक चिन्ह अधिक स्पष्टतया प्रतीत होते हैं। मानवी गर्भ का प्रथम मास से नववें मास तक निरीक्षण किया जाय तो उस में असंख्य परिवर्तन दिखाई देंगे। इन परिवर्तनों में से छठे मास के परिवर्तनों का ही यहां विचार कर्तव्य है। छठे मास में गर्भस्थ वालक के हाथों और पैरों के तलें तथा मुंह को छोड़ कर वाकी सव भाग पूर्णतया ऊपर से नीचे तक वालों से ढका रहता है। इसी प्रकार का वालें का आच्छादन हाथ और पैरों के तलें तथा मुंह के अतिरिक्त वनमानुषों तथा बंदरों के शरीर पर सर्वदा रहता है। यह आच्छादन प्रसूति के कुछ पूर्व अथवा प्रसूति होते ही विलुप्त होता है, और उस के स्थान पर सर्वदा स्थित रहने वाले विरल वालों का आच्छादन आ जाता है। गर्भावस्था में उत्पन्न होने वाले इस आच्छादन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मनुष्य जाति का विकास वनमानुषों से हुआ है। यदि कोई यह कह दे कि वालों का आच्छादन वानरों को छोड़ कर अन्य प्राणियों तथा वृक्षों पर भी होता है तो इसका यह उत्तर है कि वालों वालों में भेद है। निचली श्रेणियों के प्राणियों तथा वृक्षों के वाल वास्तव में वाल नहीं होते हैं, वे उन के शरीर के अत्यन्त वाहरले पृष्ट के साथ संलग्न परिशिष्ट (Appendages) अवयव होते हैं। वानर, वनमानुष, तथा अन्य स्तनधारियों के वालों की रचना अत्यन्त भिन्न है; इनके वाल शरीर के पृष्ट से नहीं निकले हुये होते हैं।

वा वनमानुषों के सदृश प्राणी थे, अपितु, वे वृक्षों पर रहने वाले भी थे। देखिये, हम अपने शरीर पर के बालों की रचना तथा आकार को सूक्ष्मतया देखें तो हम यह पायेंगे कि यह हूबहू वनमानुषों के बालों की रचना के सदृश होती है। उदाहरणार्थ, भुजा पर के बालों के अग्रों का विचार किया जाय तो हम यह देखेंगे कि कंधों से कोहनी तक के बालों के अग्र कोहनी की ओर झुके हुए होते हैं, और पोंहचा और कोनी के अन्तर्गत के बालों के अग्र भी कोनी की ओर झुके हुए होते हैं। अब स्तनधारियों में केवल बंदरों तथा वनमानुषों के बालों की ही ऐसी अवस्था है। अब विचार किया जाय तो बालों की ऐसी रचना वृक्षों पर रहने वालों को वर्षा से बचाने के लिये बहुत लाभदयक है। वर्षा में भीगते हुये बन्दर अपने दोनों हाथों को अपने सिर पर वा सिर के पास आई हुई किसी शाखा पर रख कर अपना बचाव करते हैं। यदि हाथों पर के बालों के अग्र कोहनी की ओर नहीं परन्तु तल हस्त की ओर झुके हुवे हों तो कंधों और कोहनी के मध्यवर्ती भाग पर गिरने वाले वर्षा के बिन्दु तो इकट्ठे होकर वह जायंगे परन्तु पहुंचे और कोहनी के मध्यवर्ती भाग पर पड़ने वाले वर्षा के बिन्दु वह नहीं सकेंगे, प्रत्युत बालों के अन्दर इक्ट्ठे होकर शरीर को भिगो देंगे। भुजा के सब बाल कोहनी की ओर झुके हुए होने के कारण ही वर्षा का जल शरीर के साथ लगने विना वह कर निकल जा सक्ता है, और वर्षा से इन प्राणियों का बचाव होता है। इस प्रकार की रचना ही वर्षा से बचाने के लिये इन वृक्षों पर रहने वाले बंदरों और वनमानुषों के लिये लाभकारी है।

(२) प्रसूति के पश्चात् ही मनुष्य प्राणी के बच्चे को देखा जाय तो उसके पाओं धनुष्याकार वक्र होते हैं और उस के हाथों और पैरों की स्वाभाविक आकृति गोरिला के हाथों और पैरों की आकृति के समान

दिखाई देती है। गोरिला के समान इस के पैरों के तले परस्पर सम्मुख हो जाते हैं। इस के पैरों के अंगूठों में, हाथों के अंगूठों के समान, कनिष्ट अंगुली की ओर घूमने की शक्ति होती है। इन बातों को देखकर निःशंक होकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मनुष्य जाति के पूर्वजों के पैर उसी प्रकार का कार्य करते थे जिस प्रकार का कार्य उनके हाथों से होता था। वर्तमान समय के असभ्य जाति के मनुष्यों के पैरों में यह शक्ति अवतक विद्यमान है; वे पैरों द्वारा वस्तुओं को उठा सकते हैं। किसी वहिषी स्त्री के सम्बन्ध में तीन वर्षों के पूर्व यह विश्वसनीय समाचार प्रसिद्ध हुआ है कि उसके पैरों में हाथों के समान वस्तुओं को उठाने, रखने, आदि की शक्ति है, यहां तक कि वह अपना भोजन भी पैरों से ही पका लेती है।

(४) पूर्व अवस्था का सूचक एक अत्यन्त मनोरंजक प्रमाण, जन्म होते ही मनुष्य प्राणी के बच्चे में वस्तुओं के साथ चिमटने की जो शक्ति रहती है, उस से मिलता है। जन्म होते ही यदि उसके हाथ में कोई बारीक लठिया पकड़ा दी जाय तो बच्चा उस को ऐसी दृढ़ता से पकड़ रखता है, और उस के हाथ के स्नायुओं में इतनी शक्ति होती है कि उस से लटक कर अपने सारे शरीर का भार कुछ मिन्टों तक वह सम्हालता है। बंदरी के छोटे छोटे बच्चों को अपनी माता के पेट के साथ लटकते हुए जिसने देखा होगा वह इस प्रकार की मानवी बच्चे की शक्ति को देखकर अवश्य ही इस परिणाम पर पहुंचेगा कि मनुष्य के पूर्वज बंदर वा बंदर के सदृश प्राणी अवश्य थे। वृक्षों पर जीवन व्यतीत करने वाले प्राणियों के बच्चों में ऐसी शक्ति न हो तो उनका गुज़ारा होना बहुत ही कठिन, बल्कि असम्भव है। बंदरों से विकास पाकर मनुष्य की अवस्था को प्राप्त हुए प्राणियों के हाथों के स्नायुओं में इस प्रकार की शक्ति अनावश्यक है, अतः ये

(चित्र संख्या २७)
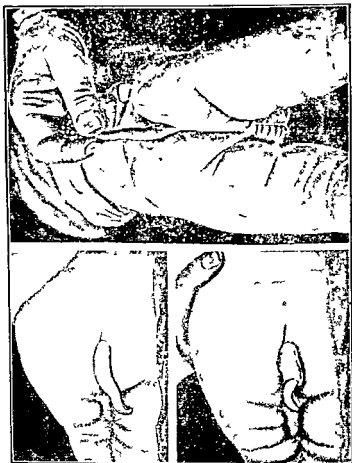
पूंछ वाले मनुष्य

(पृ. सं० २४५ के सम्मुख)

(चित्र संख्या २७)

पूंछ वाले मनुष्य

(पृ स० २४५ के सम्मुख)

स्नायू नष्ट होने के रास्ते पर हैं। हाथों के ये स्नायू जन्म होने के पश्चात् धीरे २ नष्ट होने लगते हैं, और दो वर्षों की अवधि में उन का इतना ह्रास होता है कि जो बच्चा जन्म पाते ही अपने शरीर का सारा भार लकड़ी को पकड़ कर कुछ मिनटों तक सहार सकता है वही बच्चा दो वर्षों के पश्चात् कुछ सिकन्डों तक भी नहीं सहार सकता। ये स्नायू इस बात का स्मारक चिन्ह हैं कि मनुष्य के पूर्वज वानर वा वनमानुष थे।

पूंछ वाले मनुष्यः—मनुष्य की पूंछ वन्ध्या पुत्र अथवा शश-शृंग के समान कोई कल्पित बात नहीं है। कभी कभी ऐसे बालक जन्मते हैं कि जिनकी पूंछ होती है। इस प्रकार के बच्चों के विषय में विश्वसनीय पुरुषों के लेख विद्यमान हैं। ग्रीस के एक विख्यात डाक्टर सर्जन जनरल बर्नर्ड आर्नस्टाईन (Surgeon General Bernhard Ornstein) ने इस विषय पर एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की है, और नेक्स बार्टेल्स ने पूंछ वाले मनुष्य (Tailed men) पर एक अच्छा निबन्ध लिखा है, जिस में उन्हों ने ऐसे पुरुषों का रोचक वर्णन दिया है। पूंछ वाले जन्तुओं की शरीर रचना का निरीक्षण किया जाय तो यह दिखाई देगा कि पृष्ठ वंश की अन्तिम गुरियें से पूंछ का प्रारम्भ होता है; इस अन्तिम गुरिया नाम (Os Coccyx) आस काक्सिक्स है। यदि मनुष्य की विशिष्ट उत्पत्ति (Special creation) होती और निचली श्रेणी के प्राणियों से वह विकास द्वारा निर्माण न हुआ होता तो मनुष्य के पृष्ठ वंश के अन्त में इस आस काक्सिक्स की विद्यमानता न होनी चाहिये थी। परन्तु मनुष्य के पृष्ट वंश के अन्त में यह अस्थि विद्यमान होती है; इतना ही नहीं परन्तु पूंछ को हिलाने वाले स्नायू भी इस अस्थि के साथ उपस्थित हैं। यदि यह आस काक्सिक्स मनुष्यों की पूंछ नहीं तो क्या है? इस अस्थि को देख कर

(चित्र संख्या २७)

पूंछ वाले मनुष्य

(पृ स० २४५ के सम्मुख)

स्नायू नष्ट होने के रास्ते पर हैं। हाथों के ये स्नायू जन्म होने के पश्चात् धीरे २ नष्ट होने लगते हैं, और दो वर्षों की अवधि में उन का इतना ह्रास होता है कि जो बच्चा जन्म पाते ही अपने शरीर का सारा भार लकड़ी को पकड़ कर कुछ मिनटों तक सहार सकता है वही बच्चा दो वर्षों के पश्चात् कुछ सिकन्डों तक भी नहीं सहार सकता। ये स्नायू इस बात का स्मारक चिन्ह हैं कि मनुष्य के पूर्वज वानर या वनमानुष थे।

पूंछ वाले मनुष्यः—मनुष्य की पूंछ वन्ध्या पुत्र अथवा शश-शृंग के समान कोई कल्पित बात नहीं है। कभी कभी ऐसे बालक जन्मते हैं कि जिनकी पूंछ होती है। इस प्रकार के बच्चों के विषय में विश्वसनीय पुरुषों के लेख विद्यमान हैं। ग्रीस के एक विख्यात डाक्टर सर्जन जनरल बर्नर्ड आर्नस्टाईन (Surgeon General Bernhard Ornstein) ने इस विषय पर एक सचित्र पुस्तक प्रकाशित की है, और मेक्स बार्टेल्स ने पूंछ वाले मनुष्य (Tailed men) पर एक अच्छा निबन्ध लिखा है, जिस में उन्हों ने ऐसे पुरुषों का रोचक वर्णन दिया है। पूंछ वाले जन्तुओं की शरीर रचना का निरीक्षण किया जाय तो यह दिखाई देगा कि पृष्ठ वंश की अन्तिम गुरियें से पूंछ का प्रारम्भ होता है; इस अन्तिम गुरिया नाम (Os Coccyx) आस काक्सिक्स है। यदि मनुष्य की विशिष्ट उत्पत्ति (Special creation) होती और निचली श्रेणी के प्राणियों से वह विकास द्वारा निर्माण न हुआ होता तो मनुष्य के पृष्ठ वंश के अन्त में इस आस काक्सिक्स की विद्यमानता न होनी चाहिये थी। परन्तु मनुष्य के पृष्ठ वंश के अन्त में यह अस्थि विद्यमान होती है; इतना ही नहीं परन्तु पूंछ को हिलाने वाले स्नायू भी इस अस्थि के साथ उपस्थित हैं। यदि यह आस काक्सिक्स मनुष्यों की पूंछ नहीं तो क्या है? इस अस्थि को देख कर

हम को निडर होकर कहना पड़ता है कि पूंछ वाले प्राणियों से ही मनुष्य निर्माण हुआ है । यद्यपि मनुष्य में, शरीर से बाहिर निकली हुई पूंछ विद्यमान नहीं तथापि शरीर के अन्दर पूंछ की आधार भूत अस्थि अपने स्नायु सहित उपस्थित है । पूंछ वाले मनुष्यों को अन्य जन्तुओं के समान अपनी पूंछ हिलाने की भी शक्ति होती है; मनुष्यों की यह पूंछ प्रायः केवल मांस तथा स्नायू युक्त होती है, परन्तु कभी कभी इस में आस काक्सिक्स का भी कुछ भाग विद्यमान रहता है; यह पूंछ लम्बाई में ८ से १० इन्चों तक होती है (चित्र सं० २८)। डा० ग्रैन व्हील हरिसन ने शस्त्रप्रयोग से १९०१ में छः महीने के एक बालक की इस प्रकार की पूंछ काट डाली थी; यह बालक जब रोने लगता था अथवा किसी वस्तु से डर जाता था तब उसकी पूंछ, पशुओं की पूंछ की न्याई, इधर से उधर घूमने लगती थी और बच्चे के चुप चाप होकर खेलने में निमग्न होने पर यह उठ खड़ी होती थी । बहुत से देशाटन करने वालों तथा मनुष्य शास्त्र (Anthropology) का परि-शीलन करने वालों की यह सम्मति है कि आर्चिपेलेगो तथा एशिया खण्ड के नैर्ऋत्य भाग में ऐसी मनुष्य जातियां अब तक विद्यमान हैं जिन में बराबर वंश परम्परा से इस प्रकार की पूंछ शरीर का एक नित्य स्थित अवयव होता है । वार्टेल्स एक बड़ा प्रसिद्ध वैज्ञानिक है और उस को निश्चय है कि भूगर्भ शास्त्र तथा भिन्न भिन्न देश निवासी–मनुष्य–शास्त्र (Ethnography) की पर्याप्त उन्नति होने पर इस प्रकार के पूंछ वाले मनुष्यों का आविष्कार अवश्य होगा ।

इस प्रकार के और अन्य स्मारक चिन्हों का भी वर्णन दिया जा सकता है । इन स्मारक चिन्हों को यह समझना कि मनुष्य शरीर में ये अपूर्व तथा अकल्पनीय अंग हैं, युक्तिवाद के विरुद्ध है; यदि विकास द्वारा प्राणियों की उन्नति नहीं है तो इन स्मारकों की हस्ति का

कोई भी अन्य युक्ति युक्त प्रमाण हमारे पास नहीं है। विकासवाद के अनुसार इन का जो स्पष्टी करण दिया जाता है वह हेतु बद्ध प्रतीत होता है; प्राणियों के सम्बन्ध में जितनी बातें ज्ञात हैं उन सब की विकासवाद से ही ठीक प्रकार संगति लगती है।

गर्भ शास्त्र के प्रमाणों से मानवी विकास की सत्यता:- अब आगे हम गर्भ शास्त्र के प्रमाणों की ओर जाना चाहते हैं, परन्तु उस के पूर्व मनुष्य और गोरिला की शरीर रचना में कितना साम्य है उस सम्बन्ध की एक बड़ी रोचक कथा हम यहां सुनावेंगे। केम्ब्रिज के विश्वविद्यालय में दो सहाध्यायी रहते थे। उन में से एक डार्विन का अनुयायी और दूसरा डार्विन का विरोधी था। एक दिन वे दोनों भ्रमण करते करते अपने वहां के अजायब घर में चले गये, और वहां की रखी हुई वस्तुओं का निरीक्षण करने लगे। देखते २ वे उस स्थान पर पहुंच गये जहां मनुष्य तथा गोरिला के अस्थि पंजर पास पास खड़े करके रखे हुए थे। उनमें से जो डार्विन का विरोधी था वह थोड़ा लघु दृष्टि का (Short Sighted) था, अर्थात् उस को दूर की रखी हुई वस्तु स्पष्टतया नहीं दीखती थी। वह अपने सम्मुख रखे हुए मनुष्य के अस्थि पंजर को देखकर गोरिला के अस्थि पंजर की ओर अंगुली दिखा कर कहने लगा, कि ऐसा कभी हो नहीं सकता और यह नितान्त असंभव है कि इस प्रकार का मानव शरीर (गोरिला के अस्थि पंजर की ओर अंगुली को दिखा कर) उस प्रकार के गोरिले के शरीर से विकासद्वारा निर्माण हो जाय, यह कितना उच्च और वह कितना हीन है; इस प्रकार प्रलाप करते करते अन्त में वह इस परिणाम पर पहुंच गया कि जिस डार्विन ने विकासवाद को चलाया है वह या *तो मूर्ख था या धूर्त था। उसका मित्र इस प्रकार की

* "Darwin was either a fool or a knave"

बातें कुछ समय तक शान्ति से सुनता रहा और पश्चात् बड़ी गंभीरता से अपने मित्र से कहने लगा कि "भाई, ज़रा ध्यान पूर्वक तो पढ़ो चिटों पर क्या लिखा हुआ है"। चिटों पर यह लिखा हुआ था कि ये चिट बदल गए हुए हैं; गोरिला का चिट मनुष्य का है और मनुष्य का चिट गोरिला का है । यह सुन कर उसे बड़ी लज्जा हुई ।

प्राणियों में होने वाले प्राकृतिक परिवर्तनों के प्रमाणों को देने में गर्भ शास्त्र से हम को बहुत समाग्री प्राप्त हुई और हम को उस समय यह भी ज्ञात हुआ कि शरीर-रचना-शास्त्र के प्रमाणों की अपेक्षा गर्भ-शास्त्र के प्रमाण बहुत अंशों में अधिक विश्वसनीय और संतोष जनक होते है । मनुष्य के संबंध में भी हम को इस शास्त्र से सामग्री संगृहित करनी चाहिए और गर्भ के प्रारम्भ से उसकी पूर्ण वृद्धि होने तक उस में जो जो परिवर्तन होते हैं उन से अच्छे प्रकार परिचित रहना चाहिए ।

मानव गर्भ के परिवर्तनों को ठीक प्रकार देखा जाय और भिन्न भिन्न समय पर उसका ठीकठीक निरीक्षण किया जाय तो कितनी ही बड़ी महत्व की बातें दृष्टिगोचर होती हैं । अन्य स्तनधारियों के गर्भ में जो जो परिवर्तन, प्रारम्भ से अन्त तक, दिखाई देते हैं वैसेही परिवर्तन मनुष्य गर्भ में भी प्रारम्भ से अन्त तक दिखाई देते हैं । अन्य प्राणियों की न्याईं मानव गर्भ का प्रारम्भ भी केवल $\frac{१}{१२०}$ इंच परिमाण के बीज कोष्ट से होता है और इसी की वृद्धि होतेहोते मनुष्य रूपी मन्दिर इसके आधार पर खड़ा होता है । अन्य प्राणियों के सदृश इस के गर्भ में एक समय पर मछलियों जैसे सर्व अवयव दिखाई देते हैं: गले के पास के गलफड और उन की दर्जे स्पष्टतया बनी हुई प्रतीत होती हैं, और इस समय पृष्ठवंश की अस्थियां, अन्न नालिका,

चित्र सं० (२७).
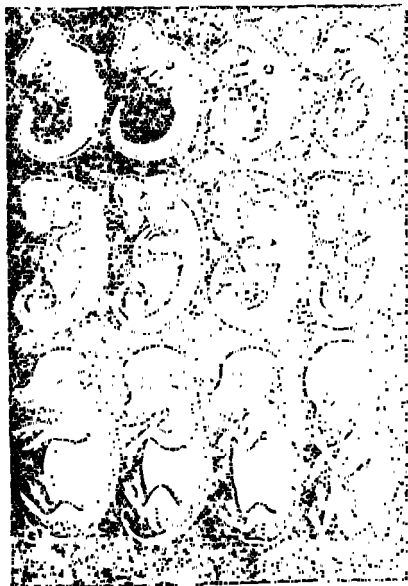
सूकर, गौ, शशक, और मनुष्य की गर्भस्थ अव-
स्था की भिन्न भिन्न समय की शरीर रचना।

हृदय, और मस्तिष्क पूर्णतया मछलियों के समान होते है; आगे मण्डूक, सर्प, तथा पक्षियों, की अवस्था में से गुज़र कर मानव गर्भ की अवस्था स्तनधारियों की निचली श्रेणी के सदृश होती है, और प्रसूति होने के कुछ समय पहले मानव गर्भ नितान्त अन्य स्तनधारियों के गर्भ के सदृश होता है । प्रसूति होने के अत्यन्त समीप आने पर ही उस में मानुपता की विशिष्टताएं आ जाती है। चित्र संख्या (२७) को तुलनात्मक दृष्टि से विचारा जाय तो यह बात बहुत स्पष्ट हो जायगी।

अब प्रश्न यह है कि मानव गर्भ में इस प्रकार की जो घटनाएं दीख-ती हैं उनका क्या अर्थ है ? मनुष्य के पूर्वजों के विषय में इन से कुछ अनुमान निकल सक्ते है या नहीं ? इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह है कि जिन जिन प्राणियों के सदृश मानव गर्भ की समानता दीख पड़ती है उन के साथ मनुष्य के वंशपरम्परा के संबंध हैं और किसी भी अन्य रीति से इन घटनाओं की संगति नहीं लगती । मनुष्य तथा अन्य प्राणियों के गर्भ की अत्यन्त मारम्भिक अवस्था पूर्णतया अमीवा (पृ० ७३) के सदृश है, अतः गर्भ—शास्त्र के सिद्धान्तानुसार म-नुष्य तथा अन्य प्राणियों की उत्पत्ति एककोष्ठमय अमीबा से हुई है । सैकड़ों, हज़ारों, वा लाखों वर्ष की अवधि इस प्रकार की उन्नति के लिये क्यों न लगी हो, विज्ञान की यही स्थापना है और विज्ञान अपने प्रतिस्पर्धियों से पूछता है कि क्या इनका कोई अन्य अर्थ हो सकता है ? प्रथम ही प्रथम जब तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र द्वारा विज्ञान यह समझाने का प्रयत्न करता है कि इस संसार के जितने प्राणी हैं वे सब मनुष्य के रिश्तेदार वा संबंधी हैं, क्योंकि थोड़ी सी भिन्नताओं के अतिरिक्त शरीर रचना के संबंध में उन में बहुत सी समानताएं हैं, तो इस स्थापना को स्वीकार करने के लिए हमारा मन सर्वथा उद्यत नहीं होता; परन्तु जब हम मानव

गर्भ का इस प्रकार का प्रारम्भ तथा उसकी पूर्ण वृद्धि होने तक के इस प्रकार के भिन्न २ रूप देखते हैं, तब इस स्थापना के स्वीकार करने में हमारे मन में क्या एक क्षण का भी विलंब होना चाहिए ? मध्यवर्ति कुछ कड़ियों का लोप होने के कारण तुलनात्मक शरीर रचना शास्त्र अमीबा से मनुष्य तक के प्राणियों की किस प्रकार उन्नति हुई है यह ठीक प्रकार सिलसिले वार नहीं बता सकता, परन्तु गर्भ शास्त्र द्वारा यह कमी पूर्ण होती है। गर्भ शास्त्र द्वारा यह इतिहास संपूर्ण रीति से क्रम बद्ध दिखाई पड़ता है। हम इस से अधिक स्पष्ट तथा संगतियुक्त कौन से प्रमाण प्रकृति (Nature) से पा सकेंगे ? एक कोष्ट धारी अमीबा से विकास द्वारा मनुष्य तथा अन्य प्राणियों की उन्नति हुई है इस बात के ये स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यहां किसी प्रकार के अनुमान प्रमाण की आवश्यकता नहीं है।

केवल विज्ञान की दृष्टि से अथवा विकासवाद का विरोध करने की प्रबल जिज्ञासा से जिन्हों ने गर्भ शास्त्र का आन्दोलन किया है उन में से भी देखिये कि दो वा तीन महाशयों की क्या सम्मति है।

विशोफ (Bischoff) नाम के एक बहुत प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, जिन्हों ने मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं के शरीर संस्थान की विद्या को अच्छे प्रकार अवगत किया था। डार्विन की स्थापना का ये बड़ा विरोध करते थे; तथापि शरीर संस्थान के विषय में इन को डार्विन के अनुयायी, हक्सले महाशय, के साथ सहमत होना पड़ा। विशोफ महाशय लिखते हैं कि मनुष्यों तथा वनमानुषों के मस्तिष्क में प्रत्येक तंतु तंतु समान है, अंतर इतना ही है कि एक की अधिक वृद्धि और पुष्टि हुई है और दूसरे में उसका अभाव है, और मानव गर्भ के मस्तिष्क की सातवें मास में वह अवस्था होती है जो बबून नाम

के बन्दरों के मस्तिष्क की पूर्णावस्था को प्राप्त होने पर होती है। रिचर्डओवेन (Richard Owen) महाशय विकासवाद के बड़े विरोधी थे, परन्तु उन को भी मानना पड़ा कि मनुष्य प्राणी के पैर का अंगूठा, जिस से खड़े रहने और चलने में उसे बड़ा आधार मिलता है, एक बड़ी विचित्र विशेषता है। प्रोफ़ेसर वायमन कहते हैं कि यदि एक इंच के मानवी गर्भ का अच्छे प्रकार निरीक्षण किया जाय तो यह ज्ञात होगा कि उस समय मानवी गर्भपिंड के पैर का अंगूठा अन्य अंगुलियों से छोटा होता है, वह उन के साथ समानान्तर नहीं होता है परन्तु जिस प्रकार बंदरों के अंगूठे होते हैं उस प्रकार वह एक ओर आगे निकल कर टेढ़ा रहता है ”

चट्टानान्तर्वर्ति प्रमाणों से मानवी विकास की सचाईः— गर्भ-शास्त्र के प्रमाणों को छोड़ कर यदि हम चट्टानों की ओर चले जांय तो वहां भी विकास के पोषक प्रमाण मिलते हैं। इन प्रमाणों में से प्रथम प्रमाण तो यह है कि धरातल के निचली तहों में मनुष्य की खोपड़ी कहीं भी प्राप्त नहीं होती। विकास के सिलसिले के अनुसार यदि मनुष्य प्राणी अन्य प्राणियों के पश्चात् ही उद्भूत हुआ हो तो यह आवश्यक है कि अत्यंत निचली तहों में मनुष्य प्राणी के अस्थि पंजर वा खोपड़ियों का अभाव होना चाहिये। प्राथमिक तथा माध्यमिक चट्टानों में यही दृश्य पाया जाता है। ये चट्टान मनुष्य जाति की अस्थियों से शून्य हैं। केवल तृतीय कोटिस्थ चट्टानों में इस जाति की हस्ति के चिन्ह प्राप्त होते हैं। विकासवाद का यह एक बहुत भारी पोषक प्रमाण है जिस से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य प्राणी सृष्टि के प्रारम्भ में न था और उसकी विद्यमानता बहुत पीछे हुई। चट्टानों में मनुष्य की ऐसी ऐसी भिन्न जातियां

दृष्टिगोचर होती हैं जो अत्यंत प्राचीन समय में इस संसार में विद्यमान थीं और जिनका नामो निशान तक अब अवशिष्ट नहीं है।

पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टसः—१८९४ में जाव्हा में डूबोईस नाम के एक वैज्ञानिक को ऐसा अस्थि पंजर प्राप्त हुआ जो मनुष्य और वनमानुष के मध्यवर्ति प्रतीत होता है। मनुष्य और वनमानुष के मध्य की लुप्त कडी के संबंध में हेकल ने जो कल्पना की है और ऐसे मनुष्य का जिस प्रकार का काल्पनिक वर्णन किया है, ठीक उसी प्रकार का यह अस्थि पंजर है। हेकल*के काल्पनिक मनुष्य का नाम पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस (Pithecanthropus Erectus) है और जाव्हा में प्राप्त हुए अस्थि पंजर के लिये यह नाम बहुत अन्वर्थक है। खोपड़ी का आकार वनमानुष और मनुष्य के खोपड़ियों के बीच का है, गोरिला के सदृश आगे निकला हुआ उसका भृकुटी का प्रदेश है; मस्तिष्क का परिमाण एक हज़ार घन सेंटिमिटर के लगभग है, जो बड़े से बड़े वनमानुषीय मस्तिष्क के आयतन से ४०० घन सेंटिमिटर अधिक है और अत्यन्त निचले दर्जे के मानुषीय मस्तिष्क से बहुत कम है। और अधिक बातों का विचार न भी किया जाय तो भी इतनी विशेषताओं से जाव्हा के अस्थिपंजर को "लुप्तकडी" के नाम से अंकित करना योग्य होगा। अर्थात् इस अस्थिपंजर धारी मनुष्य को वर्तमान के मनुष्य और वनमानुषों को अपने सामान्य पूर्वजों से मिलाने वाली कडी समझना उचित होगा। यह आवश्यक नहीं कि लुप्त कडी के प्रत्येक अवयव की रचना दो श्रेणियों के बीच बीच में चाहिये। वर्तमान मनुष्य और वनमानुषों के पूर्णतया

---

* वर्तमान समय के विद्यमान प्राणि–शास्त्रज्ञों में जर्मनी के हेकल महाशय बहुत प्रसिद्ध हैं।

बीच की कड़ी के अन्वेषण की आशा रखना व्यर्थ है । लुप्त कडी का वास्तविक अर्थ पूर्व और उत्तर वस्तु का सम्बन्ध जोड़ने वाला खण्ड है । १८९४ से आज तक पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस के समान और भी अनेक लुप्त कड़ियां कोर्नवाल (Cornwall), निआन्डर्थल [Neanderhtal],इप्स्विच [Ipswich], तथा ससेक्स प्रान्त के पिल्टडौन (१९१२) में अन्वेषकों को प्राप्त हुई हैं । स्थानाभाव के कारण हम इन का सविस्तर वर्णन नहीं कर सकते और न ही ऐसे वर्णन की कोई अपेक्षा है । जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं चट्टानान्तर्वर्ति अस्थिपंजरों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि अन्य प्राणियों के अस्तित्व के पश्चात् ही मनुष्य प्राणी का इस संसार में अस्तित्व हुआ ।

अन्य प्राणियों के साथ मनुष्य की समानता दिखाने वाले शरीर-व्यापार-शास्त्र के प्रमाणः—अब हम शरीर व्यापार शास्त्र (Physiology) से कुछ ऐसे प्रमाण देना चाहते हैं जिनसे मनुष्य की अन्य प्राणियों के साथ जो शारीरिक समानताएं हैं उनका अधिक रोचक रीति से परिचय होगा ।

(१) परसत्वोपजीवी (Parasites) और प्राणियों के शरीरः—"परसत्वोपजीवी" उस प्राणी का नाम है जो अपना

विशिष्ट जातियों का ही मनुष्य शरीर पर गुजारा है; परन्तु मनुष्य शरीर में जो प्राणी मिलते हैं वे अन्य अन्य प्राणियों के शरीर में भी मिलते हैं; उदाहरणार्थ, खुजली का कृमि; यह न केवल मनुष्यों पर, अपितु वनमानुषों पर भी गुजारा करने वाला है। "दद्रु"का कृमि भी इसी प्रकार दोनों पर अपनी उपजीविका करता है ।

(२)**मनुष्य शरीर का सादृश्य नीचे किस श्रेणी तक है**–इसके सम्बन्ध में हम एक अत्यन्त विश्वसनीय कथा यहां देते है। किसी घर में कुछ चूहे रहते थे; एक बार यह देखा गया कि किसी रोग से वे पीड़ित हुए है। उस रोग ने उन पर इतना आक्रमण किया कि उनके शरीर पर पीले रंग के धब्बे पड़ गये । उसी घर में एक बिल्ली रहती थी; उसने उन में से एक दो चूहों को मार खा लिया। कुछ दिनों केपश्चात् उस बिल्ली के शरीर पर भी पीले पीले धब्बे पड़ गये। अब उस घर में जो परिवार रहता था और उस में जो लड़के लड़कियां थीं उनको उस बिल्ली से बहुत प्यार था; बिल्ली पास आई नहीं कि उस के साथ उनका खेल शुरू होता था। कुछ दिनों के पश्चात् यह देखने में आया कि उन लड़कों लड़कियों में से भी कइयों के शरीर उन्हीं पीले धब्बों के शिकार हुए हैं । इस से स्पष्ट है कि मनुष्य का, चूहे तक शारीरिक तत्व में साम्य है ।इस प्रकार के बहुत से अन्य प्रमाणों द्वारा हम बतला सकते हैं कि मनुष्य और अन्य प्राणियों का शारीरिक सम्बन्ध कहां तक फैला हुआ है ।

(३) रोगों के संबंध में भी हम देखते हैं कि ऐसा कोई रोग नहीं है जो केवल मनुष्य को ही पीड़ित करता हो और अन्य प्राणियों को नहीं । हम सब जानते हैं कि ग्रन्थिक सन्निपात का रोग [illegible] तथा अन्य प्राणियों को होता है । हृदय और गलगन्ड

बीच की कड़ी के अन्वेषण की आशा रखना व्यर्थ है । लुप्त कड़ी का वास्तविक अर्थ पूर्व और उत्तर वस्तु का सम्बन्ध जोड़ने वाला खण्ड है । १८९४ से आज तक पिथेकेन्थ्रोपस इरेक्टस के समान और भी अनेक लुप्त कड़ियां कोर्नवाल (Cornwall), निआन्डर्थल [Neanderhtal],इप्स्विच [Ipswich], तथा ससेक्स प्रान्त के पिल्टडौन (१९१२) में अन्वेषकों को प्राप्त हुई है । स्थानाभाव के कारण हम इन का सविस्तर वर्णन नहीं कर सकते और न ही ऐसे वर्णन की कोई अपेक्षा है । जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं चट्टानान्तर्वर्ति अस्थिपंजरों से यह स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि अन्य प्राणियों के अस्तित्व के पश्चात् ही मनुष्य प्राणी का इस संसार में अस्तित्व हुआ ।

अन्य प्राणियों के साथ मनुष्य की समानता दिखाने वाले शरीर-व्यापार-शास्त्र के प्रमाण:—अब हम शरीर व्यापार शास्त्र (Physiology) से कुछ ऐसे प्रमाण देना चाहते हैं जिनसे मनुष्य की अन्य प्राणियों के साथ जो शारीरिक समानताएं हैं उनका अधिक रोचक रीति से परिचय होगा ।

(१) परसत्वोपजीवी (Parasites) **और प्राणियों के शरीर:**—"परसत्वोपजीवी" उस प्राणी का नाम है जो अपना गुजारा अन्य प्राणियों के शरीर पर करते हैं । हम जानते हैं कि मनुष्य के शरीर में ऐसे बहुत प्रकार के परसत्वोपजीवी निवास करते हैं; और केवल मनुष्य के शरीर में ही नहीं परन्तु अन्य प्राणीयों में भी इनकी वस्तियां विद्यमान हैं । इन परसत्वोपजीवियों की भिन्न भिन्न जातियां और उपजातियां बहुत हैं, और मनुष्य की यदि अन्य प्राणियों की अपेक्षा भिन्नता होती तो यह दिखाई देता कि इन में से केवल विशिष्ट

विशिष्ट जातियों का ही मनुष्य शरीर पर गुजारा है; परन्तु मनुष्य शरीर में जो प्राणी मिलते हैं वे अन्य अन्य प्राणियों के शरीर में भी मिलते हैं; उदाहरणार्थ, खुजली का कृमि; यह न केवल मनुष्यों पर, अपितु वनमानुषों पर भी गुजारा करने वाला है। "दद्रु" का कृमि भी इसी प्रकार दोनों पर अपनी उपजीविका करता है ।

(२) मनुष्य शरीर का सादृश्य नीचे किस श्रेणी तक है—इसके सम्बन्ध में हम एक अत्यन्त विश्वसनीय कथा यहां देते हैं। किसी घर में कुछ चूहे रहते थे; एक बार यह देखा गया कि किसी रोग से वे पीड़ित हुए हैं। उस रोग ने उन पर इतना आक्रमण किया कि उनके शरीर पर पीले रंग के धब्बे पड़ गये । उसी घर में एक बिल्ली रहती थी; उसने उन में से एक दो चूहों को मार खा लिया। कुछ दिनों के पश्चात् उस बिल्ली के शरीर पर भी पीले पीले धब्बे पड़ गये। अब उस घर में जो परिवार रहता था और उस में जो लड़के लड़कियां थीं उनको उस बिल्ली से बहुत प्यार था; बिल्ली पास आई नहीं कि उस के साथ उनका खेल शुरू होता था। कुछ दिनों के पश्चात् यह देखने में आया कि उन लड़कों लड़कियों में से भी कइयों के शरीर उन्हीं पीले धब्बों के शिकार हुए हैं । इस से स्पष्ट है कि मनुष्य का, चूहे तक शारीरिक तत्व में साम्य है । इस प्रकार के बहुत से अन्य प्रमाणों द्वारा हम बतला सकते हैं कि मनुष्य और अन्य प्राणियों का शारीरिक सम्बन्ध कहां तक फैला हुआ है ।

(२) रोगों के संबंध में भी हम देखते हैं कि ऐसा कोई रोग नहीं है जो केवल मनुष्य को ही पीड़ित करता हो और अन्य प्राणियों को नहीं । हम सब जानते हैं कि ग्रन्थिक सन्निपात का रोग चूहों, कुत्तों, तथा अन्य प्राणियों को होता है । हृदय और गलगन्ड का रोग पालतू जानवरों को भी होता है । खसरा (Small Pox)

और माता (Chicken Pox) गौ, बैल, आदि जानवरों को भी होता है; हैज़ा Cholera) केवल मनुष्यों को ही नहीं परन्तु कुत्तों तथा बिल्लियों को भी होता है; स्तनधारियों को ही नहीं, परन्तु पक्षियों के ऊपर भी इस रोग का आक्रमण होता है। कराची में एक वार सिपाहियों में यह रोग बहुत फैल गया था; उस समय यह देखने में आया कि गिध तथा अन्य मांस भक्षक पक्षी कराची से भाग गये और समुद्र के किनारे पर मरी हुई मच्छलियों के समूह के समूह पड़े रहे। येलो फीवर (Yellow Fever) तथा टायफाईड(Typhoid) की भी यही कहानी है। रोग के कृमियों से दूषित हुई हवा मनुष्य तथा अन्य प्राणियों पर एक सा प्रभाव करती है; इस हवा से निचली श्रेणियों के प्राणी रोगग्रस्त होते हैं; उन के द्वारा मनुष्यों में रोग संक्रमित होता है, और पश्चात् एक मनुष्य से दूसरे, दूसरे से तीसरे, इस प्रकार जंगल की अग्नि के समान, चारों ओर रोग का फैलाव होता है। कभी कभी इस के विपरीत भी प्रकार होता है। मनुष्य से पशुओं में, पशुओं से और निचली श्रेणियों में, इस प्रकार बहुत दूर तक रोग संक्रमित होते है।

जिन वैज्ञानिकों ने अफ्रीका तथा अन्य अन्य स्थानों में जाकर वनमानुषों का जीवन अच्छे प्रकार ज्ञात किया है, वे कहते हैं कि इनकी और मनुष्यों की बहुत समानताएं प्रतीत होती है। बचपन में मानवी बालकों के जब नये नये ही दात निकलने लगते है तब उन को जिस प्रकार ज्वर होकर वे बहुत दु:खी व कष्टित होते हैं उसी प्रकार वन मानुषों के बच्चों की अवस्था है: उनको भी दांत निकलने के समय ज्वर होता है और वैसा ही बहुत दु:ख उठाना पड़ता है। उदर, हृदय, फेंफडे, गुर्दा, आदि की जो बीमारियां मनुष्य को होती हैं वैसी ही बीमारियां वनमानुषों को होती है, जिस प्रकार मस्तिष्क

के कमज़ोर होने से मनुष्य को भ्रम, चित्त विक्षेप, अपस्मार आदि रोग होते हैं वैसे ही रोग मनुष्य के इन संबंधियों को होते हैं। प्रसूति के समय जिस प्रकार मानवी स्त्री की दुःखमय अवस्था हो जाती है और उन्माद आदि रोगों का डर रहता है, उसी प्रकार इन प्राणियों की स्त्री जाति की दशा है।

(४) वैद्यकीय इलाज और वनस्पतियों का शरीर पर प्रभावः—मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों की ऊपर जिस प्रकार समानता बतलाई हुई है उससे यह अनुमान लगाना कि मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के शरीरों पर औषधियों के एक ही प्रकार के प्रभाव होते होंगे, अनुचित न होगा, और अन्वेषणों से यह ज्ञात हुआ है कि यह अनुमान बिलकुल ठीक है। वनस्पति सेवन से लगभग एक ही प्रकार का परिणाम मनुष्यों और अन्य प्राणियों पर होता है, और यही कारण है कि जो नई औषधियां प्रथम तैयार की जाती हैं उनको पहले मनुष्यों पर नहीं आज़माते; प्रथम अन्य प्राणियों पर आज़मा कर पश्चात् मनुष्यों को सेवन करने के लिये ये दी जाती हैं। बालकों को टीका लगाने (Vaccination) की जो विधि है उससे तो मनुष्य और अन्य प्राणियों के बहुत निकट संबन्ध प्रत्यक्ष प्रमाणित होते हैं: गौओं के बछड़ों के फोड़ों में से सीरम (Serum) निकाल कर वह मानव शरीर में प्रविष्ट कराई जाती है; मनुष्य के अन्य प्राणियों के साथ के शरीर संबंधों को व्यक्त करने का कैसा स्पष्ट प्रमाण है! इस विषयक एक और प्रमाण लीजिये; मनुष्य की यदि कोई हड्डी आघात अथवा अन्य कारण से टूट जाय तो डाक्टर लोग उस स्थान पर अन्य [illegible] कर लगा देते हैं।

मादक पदार्थः— अब हम विशेषतः उन पदार्थों पर विचार करेंगे जिनका प्रभाव प्राणियों के ज्ञानतन्तु संस्थान (Nervous System) पर होता है।

चित्र सं० (२६)
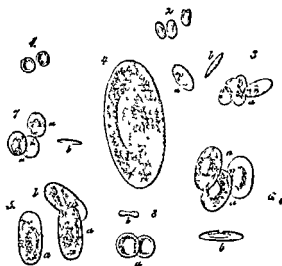
सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा दिखाई देने वाले भिन्न भिन्न प्राणियों के गोल, चपटे, दीर्घ वर्तुलाकार, रुधिर बिन्दु ।

चाय, तमाखू, मद्य, कोफी आदि नशा लाने वाले पदार्थों से मनुष्य पर जैसा प्रभाव होता है वैसा ही प्रभाव अन्य प्राणियों पर होता है। मद्य से जैसा नशा मनुष्यों को आता है वैसा ही वनमानुषों को आता

(५) रुधिर—रुधिर क्या है? रुधिर शरीरान्तर्वर्ति एक स्वच्छ द्रव पदार्थ है। इसको सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखा जाय तो भिन्न भिन्न प्राणियों के रुधिर के कोष्ट भिन्न भिन्न आकार के दिखाई देते हैं; कइयों के गोल, कइयों के दीर्घ वर्तुलाकर (Elliptical), कइयों के चपटे। यदि मनुष्य की विशिष्टोत्पत्ति होती तो मनुष्य के रुधिर का मेल किसी अन्य प्राणी के रुधिर के साथ होना नहीं चाहिए था, परन्तु हम क्या देखते है? मनुष्य और अन्य चतुष्पाद प्राणियों के रुधिर के कोष्ठों में कुछ भी भिन्नता नहीं है; दोनों के रुधिर कोष्ठ पूर्णतया एक प्रकार के होते हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्र को छोड़ कर चाहे रश्मिदर्शन यंत्र (Spectroscope) द्वारा देखिए, चाहें रसायन शास्त्र की सहायता से उनका विश्लेषण (Analysis) कर देखिये, अथवा शरीर संस्थान विद्या (Anatomy) वा शरीर-व्यापार-विद्या (Physiology) की शरण ले लीजिए, कहीं भी ऐसे प्रमाण प्राप्त नहीं होंगे जिनसे यह सिद्ध होगा कि मनुष्य का रुधिर अन्य प्राणियों के रुधिर से ज़रा भी भिन्न है। मनुष्य को अन्य प्राणियों के साथ संग्रथित करने का यह कैसा स्पष्ट और हृदयाकर्षक प्रमाण है?

(६) **स्तनः** मनुष्य, वनमानुषों, तथा अत्यंत ऊपर की कक्षाओं के प्राणियों को छोड़कर अन्य स्तन धारियों की यदि हम पड़ताल करें तो हमें यह ज्ञात होगा कि उन प्राणियों की स्त्री जाति के, विशेष कर उनके कि जिन से एक ही समय एक से अधिक बच्चे प्रसूत होते हैं, स्तनों की संख्या केवल दो नहीं होती; दो से अधिक होती है; जैसे, सेह या शल्यकी के दस, चूही के दस वा आठ, कुतिया और गिलहरी के आठ, बिल्ली और रीछ के छः, और लगभग सब तृण भोजियों या ताक्ष्णदंतियों (Rodents) के चार स्तन होते हैं। मनुष्य तथा वनमानुषों में यह संख्या दो रह जाती है। तुलनात्मक

शरीर रचना शास्त्र की दृष्टि से इस स्तन संवन्धी भिन्नता से बहुत कुछ अर्थ निकलता है । अन्वेषकों ने इस बात को ज्ञात किया है कि मनुष्य तथा वनमानुषों में स्तनों की संख्या कभी २ अधिक पाई जाती है· कभी ४, कभी ६, कभी ८, तक भी यह संख्या होती है। बर्लिन (जर्मनी) में एक स्त्री के, जो सतरा बार प्रसूत हुई थीं, चार स्तन थे, जिनमें से दो ठीक स्थान पर थे और शेष दो ठीक स्थान से थोड़े ऊपर की ओर हटे हुए थे । जापान देश की एक स्त्री के छः स्तन हैं; दो ठीक स्थान पर, दो उनके ऊपर, और शेष दो उनके और ऊपर । पोलंड की एक स्त्री जिसके बहुत लड़के हैं, दस स्तन हैं, और प्रत्येक स्तन से दूध निकलता है; इन स्तनों में दो सबसे बड़े हैं जो ठीक स्थान पर हैं, और शेष आठ में छः इन के ऊपर और दो नीचे की ओर है । यदि मनुष्य का अन्य प्राणियों के साथ किसी प्रकार का संबंध न हो और मनुष्य ईश्वर की एक विशिष्ट रीति से निर्माण की हुई सृष्टि हो, तो ऊपरोक्त घटनाओं का किस प्रकार से स्पष्टी करण दिया जायगा ? मनुष्य का अन्य प्राणियों के साथ संबंध दर्शाने वाला विकासवाद ही इस प्रकार की घटनाओं का ठीक २ और पूर्ण रीति से हेतु युक्त प्रमाण देकर संतोष कारक संगति लगा सकता है ।

अन्त में, पृथ्वी के किस स्थान पर वनमानुष से हमारी मनुष्य जाति का आद्य प्राणी विकसित हुआ यह प्रश्न उपस्थित होता है । इस विषय पर भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों की अपनी अपनी निराली सम्मत्तियां हैं। (१) कईयों की सम्मति है कि एशिया में प्रथम मनुष्य जाति उद्भूत हुई (२) कई विचारक, जिन में बहुत प्रसिद्ध प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं, यह मानते है कि उसका स्थान वर्तमान एशिया और आफ्रिका के मध्य वर्ति–पोलिनिशिया और जाव्हा के समीप–कहीं

था, जो आजकल जल से ढका हुआ है और डाक्टर चर्चवर्ड आदि अन्य वैज्ञानिकों की यह सम्मति है कि आफ्रिका के व्हिक्टोरिया निआन्झा और टॅंगेनिका (Victoria Niyanza and Tanganyka) सरोवर (झील) के पास मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ और वहा से फिर मनुष्य का अन्यत्र फैलाव हुआ। उस समय ये दोनों सरोवर एकही थे। इस विषयक जो नयेनये प्रमाण मिलते जाते हैं उनसे भी आफ्रिका खण्ड को ही मनुष्य की जन्म भूमि मानने की ओर वैज्ञानिकों का अधिकाधिक झुकाव हो रहा है। आगे ही ग्रन्थ बहुत बढ गया है अत इन सम्मतियों का विस्तार पूर्वक विचार नहीं हो सकता।

मनुष्येत्तर प्राणियों की विकास द्वारा उत्पत्ति सिद्ध करने के पश्चात् हमने चतुर्थ खण्ड में विकास की विधि पर भी थोड़ा सा विचार किया था। उसी प्रकार अब मनुष्य के शारीरिक विकास की सिद्धि के पश्चात् हमें उसके विकास की विधि पर विचार करना चाहिये। मनुष्यों के परस्पर के व्यवहारों पर अच्छे प्रकार दृष्टी डाली जाय तो यह प्रतीत होगा कि जिन प्राकृतिक नियमों से अन्य प्राणियों में विकास की शृखला बनती है उसी से मनुष्य भी बद्ध है। मनुष्य जाति की परिवर्तन शीलता स्वय स्पष्ट है, उसे सिद्ध करने की कोई आवश्यक्ता नहीं है। मनुष्यो का जीवनार्थ सग्राम तो प्रतिदिन हमारे दृष्टिगोचर होता है, प्रति वर्ष सैंकडों लोग भूख के मारे मरते हैं, शीत तथा वर्षा ऋतु में पर्याप्त वस्त्र न मिलने के कारण हजारों लोग मृत्यु की भेंट होते हैं, ओर प्रथिक सन्निपात, टाइफाईड, क्षय, आदि रोगों के कीड़ों के आक्रमणों से लाखों लोग अक्षय्य सुख प्राप्ति के लिये मर्त्य संसार को तिलाञ्जली देकर चले जाते हैं। जहा कहीं हम देखें, अयोग्यों का नाश और योग्यों की रक्षा इस प्राकृतिक चुनाव के नियम की विद्यमानता मनुष्यों में स्पष्ट दिखाई देती है। व्यापारियों

अथवा दुकानदारों में, वकील डाक्टर वा वैरिस्टरों में, अथवा जिधर भी हम अपनी दृष्टि फेरें उधर यही नियम हम प्रचलित पाते हैं। हां, इसमें कोई संशय नहीं कि जीवन-रक्षार्थ-संग्राम की तीक्ष्णता, सामाजिक और परस्पर सहाय्यकारी प्रबंधों से कम होगई है, और परोपकार के उद्देश्य से चलाई हुई संस्थाओं ने अशक्त तथा अयोग्य प्राणियों की जीवन यात्रा अधिक सुखकारक कर दी है। आनुवंशिक संस्कारों के परिणामों का मनुष्य जाती पर उसी प्रकार का प्रभाव होता है जिस प्रकार उन का अन्य प्राणियों पर है।

मनुष्य की अन्य प्राणियों के साथ तुलना करके अब तक हमने यह देखा कि (१) मनुष्य की शरीर रचना अन्य प्राणियों की शरीर रचना से भिन्न नहीं है, और इस रचना के साधारण तत्व सब प्राणियों में एक से ही हैं, (२) मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं की, विशेषतया वनमानुषों तथा बंदरों की, तत्तत्स्थान की अस्थियां, प्रत्येक अस्थि के साथ लगी हुई नाड़ियां और धमनियां तथा अन्य स्नायू, शिराएं, और मज्जा तन्तु आदि सब समान है। मनुष्य के शरीर में लगभग २०० स्नायू (Muscles) है, परन्तु उन में एक भी ऐसी नहीं है जो केवल उस ही के शरीर में विद्यमान हो और अन्यत्र कहीं भी न हो, (३) मस्तिष्क की रचना के नियम भी मनुष्यों और वनमानुषों के एक ही प्रकार के हैं, और (४) मनुष्य और अन्य प्राणियों की गर्भस्थ अवस्था बहुत समय तक एक सा होती है।

मनुष्य विकास के विषय में अबतक जितनी बातें बतलाई गई है उनसे निश्चित रूप से यह सिद्ध होता है कि, यदि और कुछ न हो तो, मनुष्य की शारीरिक अवस्था विकास का ही फल है। यदि हम यह चाहें कि किसी अन्य स्थापना द्वारा

मनुष्य की शारीरिक उत्पत्ति बतलाई जाय तो भी यह बहुत कठिन हैं; क्योंकि शरीररचना तथा गर्भ वृद्धि शास्त्र के प्रमाण ऐसे बलवान हैं कि हम उन की उपेक्षा कर उनको टाल नहीं सकते। प्राणियों की शरीर रचना, गर्भस्थ अवस्था से पूर्ण वृद्धि होने तक के परिवर्तन, भूगर्भ में मिलने वाले अस्थिपञ्जर, तथा परिस्थिति और अन्य प्राकृतिक शक्तियों का शरीर पर कैसा प्रभाव रहता है, इत्यादि बातों की चर्चा हुई, और क्षुद्र अमीबा से उच्च कोटि के मनुष्य तक विकास की मनोहर शृंखला सप्रमाण सिद्ध हुई। मनुष्य ईश्वर की कोई विशिष्ट सृष्टि नहीं है, उसका तथा अन्य प्राणियों का एक ही उद्गम स्थान है, इस के साधार तथा युक्ति पूर्ण प्रमाण देकर अन्त में, एक ही प्रकार के पूर्वजों से अन्य प्राणियों के साथ वर्तमान के बन्दर, वनमानुष, और मनुष्य विकसित हुए हैं इस की सिलसिलेवार सिद्धि हुई।

फिर से यदि उस बात पर विचारा जाय कि वनमानुषों से मनुष्य जाति की भिन्नता होने में कौन कौन से कारण उद्भूत हुए, तो इस बात का अनुमान लगाने में कोई काठिन्य नहीं है। मस्तिष्क की वृद्धि के कारण वनमानुषों को जिस प्रकार अन्य प्राणियों की अपेक्षा उच्चता प्राप्त हुई, उसी प्रकार मनुष्य भी अपने मस्तिष्क की अत्यधिक वृद्धि के कारण अत्यन्त उच्चता को प्राप्त हुआ। इसी मस्तिष्क की उन्नति ने उसे शारीरिक बल के स्थान पर यान्त्रिक बल प्रयुक्त करना सिखा दिया। धीरे धीरे उसे अग्नि, जल, भोजन के पदार्थों और आच्छादन के वस्त्रों का ज्ञान हुआ। पत्थर फेंकना, बराबर निशाना लगाना, पत्थरों के बाण आदि अस्त्र बनाना इत्यादि प्रारम्भिक कार्यों के पश्चात् शनैः शनैः मकान बनाने और बीज बोकर खेती करने का ज्ञान उसने प्राप्त किया और क्रमशः वन्य जीवन से सभ्य जीवन में उसकी परिणति हुई। प्रथम अंगविक्षेपों, फिर चित्रमय संकेतों, और पश्चात्

विकास का चक्र आगे बराबर जारी रहा और अब भी जारी है, और इस के फेरे से जो जो भिन्न भिन्न उपजातियां और राष्ट्र निर्माण हुए थे और हुए हैं, उन पर विचार करने का अब अवसर आया है। यहूदी, मंगोल, जापानी, चीनी, फ्रांसीसी, ब्रिटन, इटालियन रूसी, आफ्रिका के नीग्रो झुल हार्टेंटाट तथा बुशमेन, अमेरीका के रेड इण्डियन, एशिया के टोड, मुंद; वेदूदा, नांगा आदि सभ्य और असभ्य जातियां जो इस संसार में दिखाई देती हैं, वे इसी चक्र की अव्याहत गति के परिणाम हैं। इन के शरीर के भिन्न भिन्न रूप और रंग, मस्तिष्क की भिन्न भिन्न उन्नति और बालों के भिन्न भिन्न आकार, इनके पारस्परिक सम्बन्ध और भेद, इन की उन्नति और अवनति का इतिहास, इत्यादि सैंकड़ों बातों पर अब विचार करना चाहिये। यह विषय बहुत कठिन है और इस के सविस्तर विचार के लिये एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की अपेक्षा है। इस मनुष्य-जाति शास्त्र (Anthropology) की इतनी उन्नति हुई है कि विज्ञान में उस का एक पृथक् विभाग बना है। इस विषय में जितना कुछ आन्दोलन हुआ है उस से जो दो चार महत्त्व की बातें ज्ञात हुई हैं वे निम्न लिखित हैं। (१) मनुष्य की भिन्न भिन्न उप जातियों में विकास का क्रम स्पष्ट दीखता है, (२) जिस प्रकार वन-मानुष और मनुष्य में तात्त्विक भेद नहीं है परन्तु केवल परिमाण का है, वैसा ही इन उप जातियों का आपस का है, (३) अत्यन्त उन्नत अवस्था के वनमानुष और अत्यन्त निचली अवस्था के मनुष्य में बहुत थोड़ा भेद है--जितना हम समझा करते हैं उस से बहुत ही कम है, और (४) यह कि मनुष्य जाति में से कुछ उपजातियों ें की अपेक्षा इतनी अधिक उन्नति हुई है,-और उन्हों ने

अपने भाइयों को इतना पीछे छोड दिया है कि मनुष्य और वन-मानुष का जो अन्तर है उस से भी अधिक उन में हुआ है।

अब तक के विवेचन में मनुष्य की शारीरिक अवस्था पर ही विचार हुआ ओर इसी को दर्शाने का इस पुस्तक का उद्देश्य है। हमारी इस पुस्तक की सीमा यहा समाप्त होती है। मनुष्य की मानसिक अवस्था भी विकास का परिणाम है। माना कि जिनकी भाषा म चार से अधिक सख्या का निर्देश करने के लिय शब्द विद्यमान नहीं और नहीं सामान्य मनोविकारों को दर्शाने के जिसमें शब्द हैं, ऐसा वन्य मनुष्य, बन्दर और वनमानुषों से बहुत श्रेष्ठ हे, और यह भी माना कि सभ्य नागरिक के थोडे से परिचय से ही वन्य मनुष्य अपने गुजारे लायक सब कुछ सीख जाता हे और बन्दर और वन-मानुप के पल्ले बहुत परिचय से भी कुछ नहीं पडता, तथापि, मनुष्य की मानसिक शक्ति को ईश्वर की दी हुई विशेष सम्पत्ति हम मान नहीं सकते। मनुष्य के सिवा यदि अन्य किसी भी प्राणी में मानसिक सामर्थ्य वा उसके कोई भी चिन्ह न होते और मनुष्य की यह शक्ति नितान्त भिन्न प्रकार की होती तो विकासवाद की सत्यता पर बडा सन्देह उत्पन्न होता। मनुष्य और मनुष्येतर प्राणियों की मानसिक शक्ति में तात्विक भद नहीं है जो कुछ भद है वह केवल परिमाण का है। अत्यन्त सूक्ष्म प्राणियों में मानसिक सामर्थ्य की उत्पत्ति केस हुई यह प्रश्न, जीवन की प्रारम्भिक उत्पत्ति के सदृश, गहन है। इसे न छडते हुए प्राणियों के मानसिक बल को उत्तरोत्तर का विकास सिद्ध किया जा सकता है। मनुष्येतर प्राणी के सदृश मनुष्य की भी इन्द्रिया हैं और दोनों में उन इन्द्रियों की इच्छा पूर्ण करने की एक ही प्रकार की जिज्ञासा रहती है। आत्मरक्षण, सततिप्रेम आदि

भाव जिस प्रकार मनुष्य में हैं उसी प्रकार अन्य प्राणियों में भी विद्यमान रहते हैं, और ये भाव मनुष्य में अन्यों की अपेक्षा कम हैं। कदाचित् मानसिक बल की अत्यधिक वृद्धि के कारण यह नैसर्गिक वृद्धि उसमें कम तीव्र होती होगी। सुख, दुःख, भय, शोक, संशय, मत्सर, बदला लेने के वुद्धि, आश्चर्य, जिज्ञासा, कृतज्ञता, हंसी, ठठ्ठा, नकल उतारना, एकाग्रता, स्मृति, इत्यादि विकार भिन्न प्राणियों में, मनुष्य के समान, कमोवेशी से रहते हैं। मच्छली, चूहा, कुत्ता, घोड़ा, रीछ, हाथी, और बन्दर, इनकी इस विषय की एक न एक कहानी वहुत प्रसिद्ध है। कल्पनाशक्ति, कार्य्यकारण का विचार और विचार की शक्ति, विशेषतया मनुष्य की ही सम्पत्ति समझी जाती है; परन्तु अन्य प्राणियों में यह भी थोड़ी बहुत दृष्टिगोचर होती है। इसमें कोई विवाद नहीं हो सकता कि कार्यकारण भाव का ज्ञान और सदसद्विवेक बुद्धि (Conscience) का विकास मनुष्य में बहुत ही हुआ है। मनुष्य की सामाजिक और आत्मिक उन्नति भी विकास के परिणाम हैं। यह विषय बड़ा मनोरंजक है परन्तु स्थानाभाव के कारण इसका विस्तार पूर्वक विवेचन नहीं हो सकता। अवसर मिलने पर हम इस पर लिखने की आशा रखते हैं।

शारीरिक विकास के सम्बन्ध में अन्तिम वक्तव्य यह है कि इसका क्षेत्र जितना स्पष्ट और अखण्डनीय है, उतना अब तक मानसिक और आत्मिक विकास का नहीं हुआ है, और प्रायः वैज्ञानिकों को शारीरिक विकास सम्मत है; इसे न मानने वाला वैज्ञानिक विरला ही होगा।

विषय सूची।

विषय सूची ।